# विषय-सूची



—:०:—

# सूर का कथा-संगठन

'भागवत' और 'सूरसागर' की तुलना से पता चलता है कि सूरदास ने कई नई कथाएँ गढ़ी हैं। इन मौलिक कथाओं की सूची इस प्रकार होगी—(१) ढाढ़ी की कथा, (२) महराने के पांडे की कथा, (३) बरसाने के बामन की कथा, (४) राधा-कृष्ण के प्रथम मिलन और प्रेम-विकास की कथा, (६) राधा के श्याम-भुजङ्ग से डसे जाने और कृष्ण के गारुडी बनने की कथा, (७) दानलीला, (८) पनघट-लीला, (९) कृष्ण के बहुनायकत्व की कथा जिसके अंतर्गत मान की अनेक कथाएँ हैं और मान-मोचन के कई मौलिक ढङ्ग हैं, (१०) बसंत, होली, फाग, हिंडोला—एक शब्द में, संयोग शृङ्गार की मौलिक योजना, (११) नंद का व्रज लौट आना और यशोदा के दुःख की कथा, (१२) कृष्ण-राधा-मिलन। राधा और गोपियों का सारा प्रेमप्रसंग ही मौलिक है और जिस प्रकार बाल-कृष्ण में ही शृङ्गार की कल्पना कर डाली गई है, उसके पीछे भी परंपरा नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त भागवत की कथाओं के रूप में परिवर्तन कर दिया गया है और कितनी ही कथाएँ दो-तीन बार कही गई हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर का संगठन विचित्र ढङ्ग से हुआ है। नीचे हम इस पर विशद रूप से विचार करेंगे।

पहली बात भागवत की कथाओं के संबंध में है। सूर ने भागवत दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध की सभी कथाएँ ले ली हैं, यद्यपि एक-दो को छोड़ कर सब में कुछ परिवर्तन कर दिया है। परिवर्तन

इतना थोड़ा है, इतना सूक्ष्म है कि ध्यान से तुलना करने पर ही दिखलाई पड़ता है। फल- यह हुआ है कि साधारण पाठक सूर के कथा-संगठन और भागवत के कथा-संगठन में भेद नहीं करता। इस पर जब सूर पद-पद पर शुकदेव और व्यास की दुहाई देते जाते हैं, तब उसे इसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। सूर की मौलिकता कहाँ है, कितनी है, यह जानने के लिये वह उत्सुक नहीं होता। इसके अतिरिक्त सूर ने भागवत के कृष्ण के कुछ संस्कार दिये हैं; सूर ने अपनी ओर से भी कुछ बढ़ा दिये हैं; परंतु इस परिवर्तन का आभास सहसा नहीं मिलता क्योंकि इनका विस्तार अधिक नहीं है।

अतः साधारण ढङ्ग से कथा का ढाँचा भागवत के आधार पर ही खड़ा किया गया है। जो घटनाएँ दोनों में समान हैं उनके क्रम में अंतर नहीं है यद्यपि उनके बीच में सूरदास मौलिक लीलाओं का समावेश कर देते हैं।

कथा के आरंभ में सूरदास स्वयं ढाढ़ी के रूप में उपस्थित होते हैं। कदाचित् सूर ने ढाढ़ी की कल्पना उस समय की जब वल्लभाचार्य ने उनकी प्रशंसा की। इसके बाद ढाढ़ी वल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों का एक प्रमुख विषय हो गया, क्योंकि जन्मोत्सव के समय ढाढ़ी के पद गाये जाने लगे। परन्तु इन पदों में किसी भी कवि ने सूर की तरह अपने को ढाढ़ी चित्रित नहीं किया है। इससे स्पष्ट है कि कम से कम जिस रूप में ढाढ़ी सूरसागर में आता है वह सूर की उपज है। कागासुर की कथा अन्य असुरवध की कथाओं के ढंग पर ही खड़ी की गई है। बरसाने और महराने के व्यक्तियों से संबंधित कथाएँ कृष्ण-कथा को स्थानीय रंग प्रदान करती हैं। इनमें दो विरोधी प्रवृत्तियों के ब्राह्मणों का चित्रण है; एक कृष्ण को मारने आता है, दूसरा उनका भक्त हो जाता है। भक्तों की प्रेमभावना भगवान् के

चमत्कार से दृढ़ होती है और बाल्यावस्था इन चमत्कारों के प्रवेश के लिये सबसे उपयुक्त है।

बाललीला में भी कितने ही प्रसंगों का समावेश हुआ है, परन्तु उनके सूत्र भागवत में मिल जाते हैं, जैसे माखनचोरी, गौचारण, वन से लौटने आदि के स्पष्ट उल्लेख भागवत में हैं। सूर की प्रतिभा ने इन पर बड़े-बड़े महल खड़े कर दिये हैं। सारी बाललीला में वल्लभाचार्य के नवनीत-प्रिय के संबंध के दृष्टिकोण का ही विकास हुआ है और शुद्धाद्वैत के पाप-पुण्य निर्लिप्त कृष्ण (ब्रह्म) की ही प्रतिष्ठा हुई है। वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित सेवापद्धति ने इस अंश को विशिष्ट रूप देने में सहायता की है। साथ ही वल्लभाचार्य की प्रेमभक्ति यशोदा-गोपियों के सुख-दुःख को लेकर खड़ी की गई थी—बाललीला में उस सुख, उत्कंठा, उल्लास, प्रियविषयक-चिंतन, प्रिय-सेवा के आह्लाद आदि का चित्रण हो जाता है जो वात्सल्य-भक्ति के अंग हैं। इस भक्ति का दूसरा भाग कृष्ण-कथा के उत्तरार्द्ध में मिलता है जब यशोदा, नंद और गोपों के कृष्ण-वियोग दुःख को चित्रित किया गया है। सूर इन दोनों स्थलों पर मनोविज्ञान का सहारा लेकर खंड-काव्य की सृष्टि कर डालते हैं। इन दोनों छोरों के बीच की सारी कथा ( केवल कुछ प्रसंगों जैसे कालियदमन, गोवर्धनलीला, चीरहरण, रास, अक्रूर का आगमन और कृष्ण का मथुरागमन, गोपिका-विरह और भ्रमरगीत को छोड़ कर ) सूर की अपनी उपज है। इसे हम तीन भागों में उपस्थित कर सकते हैं :—

( १ ) राधा-कृष्ण के प्रेमस्फुरण और प्रेमविकास की कथा। भागवत में इसका इंगित भी नहीं है; अतः इसका बहुत श्रेय सूर को है यद्यपि राधा-कृष्ण की प्रेमकथा पहले भी उपस्थित की जा चुकी थी। इसमें सूर को ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, जयदेव, गर्गसंहिता, चंडीदास और विद्यापति से सहारा अवश्य मिल सकता था।

इतना थोड़ा है, इतना सूक्ष्म है कि ध्यान से तुलना करने पर ही दिखलाई पड़ता है। फल यह हुआ है कि साधारण पाठक सूर के कथा-संगठन और भागवत के कथा-संगठन में भेद नहीं करता। इस पर जब सूर पद-पद पर शुकदेव और व्यास की दुहाई देते जाते हैं, तब उसे इसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। सूर की मौलिकता कहाँ है, कितनी है, यह जानने के लिये वह उत्सुक नहीं होता। इसके अतिरिक्त सूर ने भागवत के कृष्ण के कुछ संस्कार दिये हैं; सूर ने अपनी ओर से भी कुछ बढ़ा दिये हैं; परंतु इस परिवर्तन का आभास सहसा नहीं मिलता क्योंकि इनका विस्तार अधिक नहीं है।

अतः साधारण ढङ्ग से कथा का ढाँचा भागवत के आधार पर ही खड़ा किया गया है। जो घटनाएँ दोनों में समान हैं उनके क्रम में अंतर नहीं है यद्यपि उनके बीच में सूरदास मौलिक लीलाओं का समावेश कर देते हैं।

कथा के आरंभ में सूरदास स्वयं ढाढ़ी के रूप में उपस्थित होते हैं। कदाचित् सूर ने ढाढ़ी की कल्पना उस समय की जब वल्लभाचार्य ने उनकी प्रशंसा की। इसके बाद ढाढ़ी वल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों का एक प्रमुख विषय हो गया, क्योंकि जन्मोत्सव के समय ढाढ़ी के पद गाये जाने लगे। परन्तु इन पदों में किसी भी कवि ने सूर की तरह अपने को ढाढ़ी चित्रित नहीं किया है। इससे स्पष्ट है कि कम से कम जिस रूप में ढाढ़ी सूरसागर में आता है वह सूर की उपज है। कागासुर की कथा अन्य असुरवध की कथाओं के ढंग पर ही खड़ी की गई है। बरसाने और महराने के व्यक्तियों से संबंधित कथाएँ कृष्ण-कथा को स्थानीय रंग प्रदान करती हैं। इनमें दो विरोधी प्रवृत्तियों के ब्राह्मणों का चित्रण है; एक कृष्ण को मारने आता है, दूसरा उनका भक्त हो जाता है। भक्तों की प्रेमभावना भगवान् के

चमत्कार से दृढ़ होती है और बाल्यावस्था इन चमत्कारों के प्रवेश के लिये सबसे उपयुक्त है।

बाललीला में भी कितने ही प्रसंगों का समावेश हुआ है, परन्तु उनके सूत्र भागवत में मिल जाते हैं, जैसे माखनचोरी, गौचारण, वन से लौटने आदि के स्पष्ट उल्लेख भागवत में हैं। सूर की प्रतिभा ने इन पर बड़े-बड़े महल खड़े कर दिये हैं। सारी बाललीला में वल्लभाचार्य के नवनीत-प्रिय के संबंध के दृष्टिकोण का ही विकास हुआ है और शुद्धाद्वैत के पाप-पुण्य निर्लिप्त कृष्ण (ब्रह्म) की ही प्रतिष्ठा हुई है। वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित सेवापद्धति ने इस अंश को विशिष्ट रूप देने में सहायता की है। साथ ही वल्लभाचार्य की प्रेमभक्ति यशोदा-गोपियों के सुख-दुःख को लेकर खड़ी की गई थी—बाललीला में उस सुख, उत्कंठा, उल्लास, प्रियविषयक-चिंतन, प्रिय-सेवा के आह्लाद आदि का चित्रण हो जाता है जो वात्सल्य-भक्ति के अंग हैं। इस भक्ति का दूसरा भाग कृष्ण-कथा के उत्तरार्द्ध में मिलता है जब यशोदा, नंद और गोपों के कृष्ण-वियोग दुःख को चित्रित किया गया है। सूर इन दोनों स्थलों पर मनोविज्ञान का सहारा लेकर खंड-काव्य की सृष्टि कर डालते हैं। इन दोनों छोरों के बीच की सारी कथा ( केवल कुछ प्रसंगों जैसे कालियदमन, गोवर्धनलीला, चीरहरण, रास, अक्रूर का आगमन और कृष्ण का मथुरागमन, गोपिका-विरह और भ्रमरगीत को छोड़ कर ) सूर की अपनी उपज है। इसे हम तीन भागों में उपस्थित कर सकते हैं :—

( १ ) राधा-कृष्ण के प्रेमस्फुरण और प्रेमविकास की कथा। भागवत में इसका इंगित भी नहीं है; अतः इसका बहुत श्रेय सूर को है यद्यपि राधा-कृष्ण की प्रेमकथा पहले भी उपस्थित की जा चुकी थी। इसमें सूर को ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, जयदेव, गर्गसंहिता, चंडीदास और विद्यापति से सहारा अवश्य मिल सकता था।

मुख-मुख जोरि आलिङ्गन दीन्हों। बार-बार भुज भरि भरि लीन्हों
वृन्दावन घनकुंज लतातर। श्यामा श्याम नवल नवला वर
मनमोहन मोहिनि सुखकारी। कोककला गुण प्रगटे भारी
छूटे बंद अलक सिर छूटे। मोतिन हार टूटि सुख लूटे
सूर श्याम विपरीत बढ़ाई। नागरि सकुचि रही लपटाई

फिर पनघट-लीला में भी राधा है, परन्तु वहाँ उसका विशेष महत्त्व नहीं है, मान में वह प्रधान है। बहुनायकत्व लीला में भी वह प्रधान है परन्तु सूर की दृष्टि अन्य गोपियों और कथा की ओर एक दूसरे उद्देश्य से लगी है। सूर ने राधा को लेकर कई मौलिक कल्पनाएँ की हैं—

( १ ) राधा के हार का खो जाना और उसका उस बहाने कृष्ण से मिलना।

( २ ) रास के अवसर पर राधाकृष्ण का विवाह।

( ३ ) सखियों का राधा को शरमाना, परन्तु राधा का कहना कि वह कृष्ण को पूरी तरह देख ही नहीं पाती। ( अनुराग-समय के पद )

कृष्ण और राधा का क्या संबंध है, इस विषय में सूर स्पष्ट हैं। राधा कृष्ण को उलाहना देती है—

ब्रज बसि काके बोल सहौं
तुम बिन श्याम और नहिं जानौ सकुचनि तुम्हें कहौं
कुल की कानि कहाँ लौं करिहौं तुमको कहाँ लहौं
धिग माता धिग पिता विमुख तुव भावैं तहाँ रहौं

कृष्ण उत्तर देते हैं—

ब्रजहिं बसे आपुहि बिसरायो
प्रकृति पुरुष एकै करि जानहु बातनि भेद करायो
जल-थल जहाँ रहौं तुम बिनु नहिं वेद-उपनिषद गायो
द्वै तनु जीव एक हम दोऊ सुख-कारन उपजायो

ब्रह्म रूप द्वितीय नहिं कोऊ तब मन त्रिया जनायो
सूर श्याम मुख देखि अलप हँसि आनँदपुञ्ज बढ़ायो

तब राधा परिस्थिति समझ जाती है—

तब नागरि मन हरष भई
नेह पुरातन जानि श्याम को अति आनंद भई
प्रकृति-पुरुष नारी मैं वे पति काहे भूलि गई
को माता को पिता बंधु को यह तो भेंट नई
जन्म-जन्म युग युग यह लीला प्यारी जानि लई
सूरदास प्रभु की यह महिमा या ते विवश भई

सुनहु श्याम मेरी इक बिनती
तुम हरता तुम करता प्रभु जू मात पिता कौने गिनती
गैवर मेति चटावत रासभ प्रभुता मेटि करत हिनती
अब लौं करी लोक मर्यादा मानहु थोरहि दिनती
बहुरि-बहुरि ब्रज जन्म लेत हौं इहलीला जानी किनती
सूर श्याम चरणनि ते मोको राखत है कहा मिनती

राधा कृष्ण की प्रकृति हैं। वे वास्तव में एक ही हैं। एक ब्रह्म ही "सुख-कारन" दो रूप धारण करता है—एक कृष्ण है, दूसरा राधा। राधा-कृष्ण या ब्रह्म के खेलों में भक्त आनंद लेता है। राधा-कृष्ण की कथा कहने में मुख्यतः लीलावर्णन का ही भाव है। गारुडी की कथा और हार खोने की कथा लीला-मात्र हैं। अनुराग के पदों में राधा के रहस्यमय, अलौकिक प्रेम का चित्रण है। मान के एक प्रसंग में उसी प्रकार "गर्व" से भगवान् के अंतर्धान होने की कल्पना है जिस प्रकार भागवत में रास के प्रसंग में। दूसरे प्रसंग में राधा के रहस्यात्मक प्रेम की व्यंजना है जो प्रिय के हृदय में अन्य स्त्री की छाया भी नहीं देख सकता। वल्लभ-सम्प्रदाय में भक्त का लक्ष्य है कृष्ण को समर्पित हो जाना, आत्मभाव भूल कर अनन्य प्रेम। गर्व ही

आत्मभाव का कारण है। इस गर्व का परिहार होना चाहिये। थोड़ा भी गर्व, थोड़ी भी अहंता भगवान् को असह्य है। इसी प्रकार भक्त भगवान् को अत्यन्त आनन्द भाव से प्रेम करता है। राधा के उपर्युक्त प्रसंगों में यही रूपक रूप से रखा गया है।

( २ ) गोपियों का प्रेम :—

भागवत में गोपियों को कृष्ण से संबंधित करने वाले केवल दो प्रसंग हैं—चीरहरण और रास। जैसा व्यास ने स्पष्ट कहा है, ये रूपक मात्र हैं। सूर इस बात को समझते हैं। इसी-से उन्होंने उसी तरह के नए रूपकों का सृष्टि की है। ये रूपक हैं दानलीला, पनघटलीला, वहुनायक-कथा। इन तीनों के भीतर क्या संदेश है ?

दानलीला में स्पष्ट ही आत्मसमर्पण का संदेश है—"दान लेहुँ हौं सब अंगन को"। यही वल्लभ-सम्प्रदाय का मूलमंत्र है। चीरहरण में भी यही संदेश है—कि भगवान् से गोप्य क्या है, आत्मसमर्पण भाव है, तो लाज क्या ? यहाँ भी वही संदेश है, परन्तु अधिक स्पष्ट रूप में। रूपक ने कथा को स्थूल कर दिया है, परन्तु साथ ही संदेश अत्यंत स्पष्टता से सामने आया है। पनघटलीला में कवि कहना चाहता है कि भगवान् भी भक्त की बाट जोहता है, उसे "संसार" से विरत कर स्वनिष्ठ करना चाहता है। "गागरी में काँकर" मारने का अर्थ ही यह है कि भगवान् की ओर से बार-बार इस प्रकार की चेष्टा होती है। जब भक्त भगवान-निष्ठ हो जाता है तो उसकी दशा उस गोपी की-सी हो जाती है जो दूध बेचने निकलती है तो "कृष्ण ले लो" कहने लगती है। यह आत्मविस्मृति भावभक्ति का चरम विकास है। इस रूपक में भगवान् की "पुष्टि" का रूप और उसकी प्रबलता का चित्रण है। पुष्टि द्वारा भगवान् भक्त को संसार-विमुख

और स्वमुख करता है। जब अंत में भक्त भगवान् के रूप पर मोहित ही हो जाता है तो भगवान् को कुछ करना नहीं रह जाता। भक्त स्वयं अग्रसर होने लगता है। पुष्टिमार्ग के भक्तों का मुख्य आधार है भगवान् का सौन्दर्य। इस प्रसंग में उस रूप की सुन्दर प्रतिष्ठा है और भगवान्-भक्त के बराबरी के संबंध की भी व्यञ्जना है।

अब रह जाती है बहुनायकत्व कथा—उसका अर्थ है कि एक ही भगवान् अनेक भक्तों को एक ही समान, एक ही समय प्राप्य है परन्तु उसकी प्राप्ति के लिये प्रतीक्षा और विरह की साधना की आवश्यकता है। वह तो अंतर्यामी है—गर्व, ईर्ष्या, द्वेष, इनके होने पर उसका मिलना ही असंभव है।

गोपियों में जीव का ही सामूहिक चित्रण है। वास्तव में उन्हें रूपक के सहारे खड़ा किया गया है। जो कृष्ण की लीलाएँ हैं, वे ही रूपक भी हैं। इसलिये उनमें जहाँ एक ओर लीला भाव की सुस्पष्टता नहीं; वहाँ दूसरी ओर गोपियों के प्रेमविकास के संबंध में विशेष उद्योग नहीं। वल्लभाचार्य ने गोपियों को "श्रुति" कहा है। सूर भी एक स्थान पर ऐसा कहते हैं। दूसरे स्थान पर वे भागवत का आधार लेकर उन्हें देवताओं का अवतार बताते हैं। परन्तु वास्तव में सूर गोपियों को एक अभिनव दृष्टि से उपस्थित करते हैं। गोपियाँ सामान्य जीव हैं। वे सहज ही कृष्ण पर आसक्त हो तन्मयतावस्था को प्राप्त होती हैं। सारे रूपकों में भगवान् और जीव के सम्बन्ध को ही चित्रत किया गया है। साधारण रूप से लीलामात्र गढ़ने की भावना नहीं है। व्यास का जो उद्देश्य रहा है, वही यहाँ भी सुस्पष्ट है।

वल्लभाचार्य ने गोपियों के संयोग-सुख और वियोग-दुःख को भी आदर्श माना है। परन्तु उनका उद्देश्य स्पष्ट नहीं है।

वह वात्सल्य रति को प्रधानता देते थे। अतः इस विषय में उनका स्पष्ट मंतव्य भी नहीं मिल सकता था। परन्तु वे यह अवश्य जानते थे कि यहाँ गोपियों का प्रेम शृङ्गार-रति से भिन्न है जैसा उन्होंने कहा भी है।

वस्तुतस्तु ग्रामसिंहस्य सिंहस्वरूपत्वेऽपि न तादृग्रूपं वक्तुं शक्यं तथा लौकिकपुंसि नार्य्यां वा तदाभासो रसशास्त्रे निरूप्यते तद्दृष्टान्तेन भगवद्भाववद् भगवद्भक्तरीति भावनार्थं न त्वपीणां लौकिके तात्पर्यं भवितुमर्हति।

स्पष्ट है कि सूर ने गोपियों के मिलन-वियोग सुख-दुख को खड़ा किया तो वल्लभाचार्य के सिद्धांत को ही आगे बढ़ाया। परन्तु उन्होंने रूपकों की सृष्टि कर कथाओं को और भी ऊँची आध्यात्मिक भूमि पर रखने की चेष्टा की। आलोचकों की दृष्टि से वे असफल हैं, परन्तु आलोचक उनके काव्य को शास्त्र के भीतर से देखते हैं, नैतिकता के भीतर से देखते हैं, काव्य और धर्मानुभूति के भीतर से नहीं। इसीसे वे सूर को लांछित समझते हैं।

(३) संयोगचित्रण (हिंडोला, जलविहार, वसन्त, फाग, होली)—इन सबमें रास के ढंग पर ही संयोगचित्रण है, सूर ने इन प्रसंगों में जयदेव के काव्य से सहारा लिया है और केवल विषय-तन्मयता के द्वारा इन्हें अलौकिक भूमि पर उठाने की चेष्टा की है। रूपक इनमें नहीं है। परन्तु आध्यात्मिकता उसी ढंग से व्यक्त है जिस ढंग से जयदेव के गीतगोविंद में व्यक्त हुई है; यद्यपि जयदेव जैसे स्थूल संभोग के प्रसंग यहाँ नहीं हैं। राधा-कृष्ण के निकुञ्जविहार में सूर ने जयदेव को ही आदर्श माना है—उन्हीं की तरह सुरति, सुरतारंभ, सुरतांत, विपरीत के वर्णन किये हैं। विद्यापति भी उनके सामने

है। अनेक स्थलों पर यह भ्रम हो सकता है कि कथा असंगठित है, परन्तु ऐसा नहीं है। कथा विशृङ्खलित मालूम देती है, इसके कई कारण हैं—

(१) कथा प्रबंधात्मक रूप में छंदबद्ध नहीं है। वह खंडात्मक रूप में पद-बद्ध चलती है। भिन्न-भिन्न खंडों में एक स्वाभाविक विकास की शृङ्खला है, परन्तु प्रत्येक खंड स्वतंत्र रूप से भी रखा जा सकता है यद्यपि इससे कितने ही ऐसे छंद बेकार हो जायेंगे जो "कड़ी" के रूप में सामने आते हैं।

(२) एक ही कथा दो रूपों में लगभग बराबर चलती है—एक वर्णनात्मक छंद में, दूसरी पद में। कभी-कभी तीन या चार रूप भी हैं। भ्रमरगीत तीन हैं। कई कथाओं के एक-एक पद में कई वर्णन हैं।

(३) अन्य अष्टछाप के कवियों के तत्संबन्धी पद फुटकर हैं। अतः सूर के सम्बन्ध में भी यही धारणा हो सकती है कि उन्होंने फुटकर पद ही संग्रह कर दिये हैं। परन्तु यह ठीक नहीं है। अन्य कवि सम्प्रदाय की नित्य और नैमित्तिक सेवाओं से प्रभावित थे; सूर इस तरह प्रभावित नहीं थे। अन्य कवियों ने "खंड" कथाओं की उतनी सृष्टि नहीं की जितनी फुटकर पदों की। सूर ने कथा के रूप में भी पद लिखे हैं।

(४) सूर के बाद "दानलीला" "मानलीला" जैसे खंडात्मक पद-बद्ध कथाकाव्यों की परंपरा चल पड़ी। इससे सूर के इन कथा-प्रसंगों को भी खंडकाव्य ही समझा जाने लगा जिससे यह अनुमान लगा कि सूरसागर कई खंडकाव्यों का संग्रह है। यह इससे और भी पुष्ट हो गया कि सूर के कितने ही ऐसे प्रसंग सूरसागर से अलग खंडकाव्य नाम से चल रहे हैं ("नैमित्तिक कीर्तन-संग्रह" में एक मानकथा को "सूरसागर" नाम से संग्रहीत किया गया है

और गोवर्धनधारण की छन्दबद्ध कथा को भी खंड-काव्य के रूप में स्थान दिया है )।

कथा के स्वाभाविक विकास की दृष्टि से यह स्पष्ट है कि उसका एक निश्चित रूप आरंभ से ही सूर के सामने था परन्तु कठिनाई विशेषतः वर्णनात्मक छन्दों में कही कथा के कारण है। प्रश्न कई उपस्थित होते हैं :

(१) जब पदबद्ध कथा लिखी गई तो वर्णनात्मक छंद में कथा लिखने की क्या आवश्यकता थी ?

(२) क्या दोनों की कथाओं में कोई भेद है ?

(३) जब दोनों प्रकार को कथाएँ लिख ली गईं तो उन्हें अलग-अलग संग्रहों का रूप क्यों नहीं दिया गया ?

(४) कौन-सी कथा पहले लिखी गई ? क्या दोनों साथ लिखी गईं ?

(५) क्या सूर दोनों में एक ही प्रकार सफल हैं ?

(६) क्या वर्णनात्मक छंदों और कथाओं की सृष्टि 'कड़ी' के रूप में हुई ?

(७) पदों की कथा का क्या रूप है ? उसका विकास कहाँ तक समुचित हो सका है ?

वास्तव में ये प्रश्न चिन्त्य हैं। सभी का समीचीन उत्तर देना कठिन है। पहले हमें दशमस्कंध की वर्णनात्मक छंदों की कथा और भागवत दशमस्कंध की तुलना करना चाहिये। तुलना से स्पष्ट होगा कि लगभग सारी कथा वर्णनात्मक छंदों में मिल जाती है। अध्याय ५ (कृष्णजन्मोत्सव), १७-१९ (दावानल), २० (वर्षा-शरद), २१ (गोपीकागीत), ३४ (सुदर्शन मोचन, शंखचूड़वध), ३५ (गोपिकाविरह), ३९ (अक्रूर का लौटना), ४० (स्तुति), ४१ (मथुराप्रवेश), ४२ (धनुर्भंग), ४३ (मल्लयुद्ध), ४६ (उद्धव की

व्रजयात्रा )—ये कथायें वर्णनात्मक छंदों में नहीं हैं। परन्तु इनमें से कुछ कथायें (१८वें अध्याय की दावानलकथा, वर्षाशरद्) गोपिकागीत, नंदगोपवार्तालाप और कृष्णाभिषेक) पदों में भी नहीं है। इन कथाओं के न होने से कथा-विकास में बाधा अवश्य पड़ती है। अक्रूर-प्रसंग के बाद एकदम कंसवध आ जाता है—बीच का क्रम नहीं मिलता। परन्तु इस एक को छोड़ कर कथा समान रेखा पर चलती है। इस प्रकार एक ही कथा दो रूपों में (कुछ स्थलों को छोड़ कर) बराबर चलती है। दोनों की तुलना करने पर पता चलेगा कि—

(१) दानलीला और मानलीला को छोड़ कर सूर की नई सामग्री वर्णनात्मक छंद में नहीं है। इनका छंद भी वही नहीं है जो शेष वर्णनात्मक कथा का छंद है। इसलिये इसको खंडकाव्य के रूप में जोड़ा मान कर हम कह सकते हैं कि सूर की मौलिक सामग्री वर्णनात्मक छंदों में नहीं है।

(२) कुछ सामग्री ऐसी है जो मौलिक है, परन्तु वर्णनात्मक छंद में है जैसे सिद्धर ब्राह्मण की कथा और ब्राह्मण का प्रस्ताव (महराने से बाभन आयो)।

(३) पदबद्ध कथा में जो मौलिक उद्भावनायें सूर ने की हैं, वही मौलिक उद्भावनायें छंदबद्ध कथा में उसी प्रकार मिलती हैं। (इन्द्रयज्ञभंग, कालियदमन आदि की तुलना कीजिये)।

(४) छंदबद्ध कथा विशेष रसपूर्ण नहीं है। उसमें इतिवृत्तात्मकता और वर्णनात्मकता का प्राधान्य है। सूर का महत्त्व पदों में ही है।

(५) कुछ वर्णनात्मक छंद कड़ी के रूप में भी आये हैं। संभव यह है कि वर्णनात्मक छंद में कही कथा बाद की उपज है। उसकी आवश्यकता उस समय पड़ी जब सूर पदों को भागवत

के रूप में संग्रहीत करने लगे तो उन्होंने अत्यंत क्षिप्र गति से सब पूर्वस्कन्ध लिख डाले। इनमें भी कथा का मूल रूप देकर बहुत कम सामग्री अपनी रखी। जब दशमस्कंध में पहुँचे तो उनके सामने एक विषम समस्या उठ खड़ी हुई—

(१) या तो वे उसमें केवल पद रहने दें,

(२) या श्रृङ्खला बनाये रखने के लिये छंदकथा लिख दें!

उन्होंने दूसरा मार्ग ही अच्छा समझा। परन्तु भागवत के अतिरिक्त जो रसपूर्ण नवीन योजनाएँ उन्होंने उपस्थित की थीं, वे इस प्रकार के वर्णनात्मक छंद में नहीं आ सकती थीं, अतः उन्होंने उन पर लेखनी नहीं चलाई। केवल एकाध स्थल के लिये उनके पास खंडकाव्य के रूप में कुछ सामग्री थी, उसका समावेश कर दिया। दानलीला, मानलीला और भ्रमरगीत में यही सामग्री संग्रहीत है।

दोनों प्रकार से लिखी कथाएँ दो भिन्न ग्रंथों में संग्रहीत क्यों नहीं की गई; इसका उत्तर स्पष्ट है। दूसरी छंदबद्ध कथा केवल ग्रंथ को भागवत का रूप देने के लिये लिखी गई है और पदबद्ध ग्रंथ से अलग उसकी कोई महत्ता ही नहीं थी। इसलिये उसे अलग नहीं रखा जा सका। सूरदास ने ग्रंथ को भाषा भागवत का रूप देना चाहा, यह साफ़ पता चलता है :

श्रीमुख चारि श्लोक दिये ब्रह्मा को समुझाइ
ब्रह्मा नारद सों कहे नारद व्यास सुनाइ
व्यास कहे सुकदेव सों द्वादश स्कंध बनाइ
सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाइ

( प्रथम स्कंध )

इन बारह स्कन्धों की कथा में सूर बराबर—"सूरदास कह्यो भागवत अनुसार"; "जैसे सुक को व्यास पढ़ायो। सूरदास वैसे कहि गायो।" आदि कहकर भागवत की दुहाई देते चलते हैं।

सूर ने दशमस्कंध को सामने रखकर ही सुगठित रूप से अपनी सामग्री उपस्थित की थी। जब उन्हें भागवत के रूप में उसे उपस्थित करना पड़ा, तब उन्हें सारे स्कंध लिखना आवश्यक थे। परन्तु इन स्कंधों की सामग्री उनके लिये महत्त्वपूर्ण नहीं है :

(१) उनकी रुचि कृष्ण में ही विशेष थी।

(२) इन स्कंधों में ज्ञानविज्ञान-सम्बंधी नीरस सामग्री भरी पड़ी थी। उसका बहुत-सा भाग सूर के आध्यात्मिक सिद्धान्तों से मेल नहीं पा सकता था। इसी से हम देखते हैं कि सूर ने भागवत के महत्त्वपूर्ण ११ वें स्कंध की सारी सामग्री ही हड़प ली। जहाँ-जहाँ अन्य स्थलों पर उन्होंने आध्यात्मिक भाव रखे हैं, वहाँ-वहाँ उन्होंने अपने मत को ही रखा है। उत्तरार्द्ध कृष्णकथा भी उनके लिये महत्त्वपूर्ण नहीं थी। अतः उसे भी अत्यंत संक्षेप में लिखा गया है। अन्य स्कंधों में भा बड़ी-बड़ी कथाओं को एक दो छंदों में कह कर काम चलाया। इस अत्यंत संक्षेप से कहने की प्रवृत्ति में नीरसता, काव्यगुणहीनता, इतिवृत्तात्मकता का आः जाना आवश्यक था। फिर भी जहाँ-जहाँ उनके मन के प्रसंग मिलते गये, वहाँ-वहाँ सूर ने पद के रूप में कथा लिखी जैसे भीष्मप्रतिज्ञा, रामकथा आदि।

(३) सारे भागवत का अनुवाद महत् कार्य था और ढलती उम्र में सूरदास उसे नहीं कर सकते थे। वह अपनी अक्षमता जानते थे। उनकी रुचि भी उस ओर नहीं थी। वे पौराणिक नहीं थे। भक्त थे। कवि थे। अतः इतिवृत्तात्मक पौराणिक कथाओं को विस्तार-पूर्वक लिखना उनका उद्देश्य नहीं रहा।

(४) भागवत के एकादश स्कंध पर सुबोधिनी टीका भी है। इसी से सूर ने इस स्कंध की सामग्री नहीं ली। वे अपनी सीमाएँ जानते थे। सुबोधिनी के दशमस्कंध की टीका में जिन सिद्धान्तों

का उल्लेख किया गया है, वह उन्होंने काव्य के रूप में उपस्थित किये। उन्हें भी वह सैद्धान्तिक रूप उन्होंने नहीं दिया जो नंददास के काव्य में मिलता है। नंददास ने रासपंचाध्यायी के समझाने के लिये सिद्धान्तपंचाध्यायी की रचना की। सूर न ज्ञान का प्रदर्शन चाहते थे, न प्रचार ही उनका उद्देश्य था। वे वल्लभाचार्य के पूरक थे, उनका स्थान छीनना नहीं चाहते थे, उन जैसे मौलिकताग्र ही को अनुच्छृष्ट वस्तु उपस्थित करने से ही संतोष हो सकता था। अतः इस प्रकार की सामग्री का सूरसागर में अभाव है।

अब प्रश्न रह गये—पदों में कथा का क्या रूप है ? उसका विकास कहाँ तक समुचित हो सका है ? इस संबंध में हमें यह कहना है कि सूर के काव्य की परिस्थिति अभूतपूर्व है संसार के साहित्य में उसका जोड़ नहीं मिलेगा। कथात्मक गीतिकाव्य या गीतात्मक कथाकाव्य—हम इसे दोनों नाम दे सकते हैं। वास्तव में सूर के काव्य में गीतिकाव्य की भावप्रधानता के साथ कथा का विकास भी होता गया है या यों कहिये कि कथा बढ़ती जाती है, यद्यपि हमें इसका पता ही नहीं लगता और जहाँ भावना घनीभूत हो जाती है वहाँ कथा रुक जाती है और अनेक पद केवल भावमात्र या परिस्थिति मात्र या हृदयानुभूति का चित्रण-मात्र करते हैं। हम उनमें इतने तन्मय हो जाते हैं कि कथा का अभाव या उसके विकास में बाधा हमें अखरती नहीं। जब वह भावोत्कर्ष समाप्त होने को आता है तो कथा भी विश्राम लेकर आगे बढ़ जाती है। कथा भावना को बढ़ाती है, भावोत्कर्ष कथा के विकास में सहायक होता है। इस प्रकार के काव्य में नाटकीयता के लिये काफ़ी स्थान है, क्योंकि

(१) एक ही पद में कहीं-कहीं बड़ा भावपूर्ण कथोपकथन भर दिया गया है ( जैसे कृष्ण और यशोदा के कथोपकथन )।

(२) कथा के बीच की कड़ियाँ पूरी नहीं हैं, परन्तु नाटक की भाँति वीथिका सब जगह है जिससे कथासूत्र जोड़ने में कठिनाई नहीं होती।

(३) कहीं-कहीं खंडकाव्य ही कथोपकथनात्मक है (जैसे दानलीला) इस प्रकार हमें सूर के गीतों में वे गुण भी मिल जाते हैं जो प्रबंधकाव्य के गुण हैं। सच तो यह है कि सूर-सागर किसी बँधी हुई काव्य-श्रेणी में नहीं आता। उसे हम न महाकाव्य कह सकते हैं न प्रबन्धकाव्य, न खंडकाव्य, न गीति-काव्य, न दृश्यकाव्य। वह एक साथ ही यह सब है—परन्तु शास्त्रीय ढंग से नहीं, अपने ढंग से। हम दूसरे स्थान पर सूर की संवादों को निबाहने की कुशलता का परिचय दे रहे हैं। भागवत वर्णनात्मक है, कहीं-कहीं भक्तिपूर्ण भावोन्मेष के कारण गीतात्मक भी हो उठी है, परन्तु उसमें सरस कथोपकथन नहीं हैं, काव्य का पुट भी अधिक नहीं है। सूर ने अपनी कृष्णकथा में जिस बालक और प्रेमी रूप का विस्तार किया है, उसमें कथोप-कथन ने प्राण डाल दिये हैं। जैसा हमने देखा है उन्होंने भागवत से अनुप्राणित होकर कितने ही रूपक खड़े किये हैं। सूर ने कृष्णकथा को जिस रूप में सोचा, उनमें प्रबन्धकाव्य लिखा ही नहीं जा सकता था। माता के प्रतिदिन के वात्सल्य व्यवहार और पुत्र की दैनिक क्रीड़ाएँ कथा का विषय नहीं हो सकतीं। इस प्रकार उस ढंग के प्रेम के विकास पर जो सूरसागर में हैं कथा खड़ी नहीं की जा सकती। कारण कि उसकी रंगभूमि बाहर नहीं है, यशोदा, राधा और गोपियों का हृदय ही इस कथा की रंगभूमि है। इनके हृदय पर कृष्ण की कैसी छाप पड़ती है, कृष्ण का रूप, व्यवहार और प्रेम कैसे धीरे-धीरे उनके हृदय में पैठता है; कैसे वह अगाध जलधि-सा गंभीर, सुनिश्चित और रहस्यमय हो उठता है, यह प्रबंधकाव्य का विषय नहीं है।

यह हृदय के समझने का विषय है। हृदय की भाषा है गीत। इसी से सूर का हृदय गीतों में फूट पड़ा है। सूर की कथा जहाँ एक ओर बाहर ब्रज के रंगमंच पर चलती है, देश-काल में आगे बढ़ती है, वहाँ दूसरी ओर वह भावभूमि में उत्तरोत्तर नीचे उतरती है; भ्रमरगीत तक आते-आते भावना ने ही कथा का रूप धारण कर लिया है। भ्रमरगीत गोपियों के हृदय की कथा है।

अतः सूरसागर के संबंध में हम यह कह सकते हैं कि उसकी कथा के संबंध में सूर निश्चित हैं; वह मौलिक प्रसंगों के साथ उपस्थित की गई है, उसमें गीतात्मकता है और कथा भी है। उसकी पृष्ठभूमि बाहर ब्रज है और भीतर नंद-यशोदा, गोप-गोपियों, राधा और उद्धव का हृदय। उसमें अध्यात्म, शृङ्गार, भक्ति—सभी का सुन्दर मिश्रण है। परन्तु दशमस्कंध उत्तरार्द्ध और अन्य स्कंधों की सामग्री में न मौलिकता है, न हृदय-ग्राहिता। सूरसागर को भागवत का रूप देकर पौराणिक भक्त कवि के ऊपर विजयी हुआ है। वल्लभसंप्रदाय में भागवत की जितनी मान्यता थी, वह सब जानते हैं। उसी से प्रभावित होकर या विशेष आग्रह से सूर ने दशमस्कंध के आगे-पीछे की सामग्री जोड़ने की चेष्टा की, परन्तु वे उस सामग्री को ठीक ढंग से नहीं दे सके। उनकी सहृदयता, प्रतिभा और प्रकृति इस कार्य में बाधक हुई। फिर भी हमें सूरसागर के वर्तमान रूप के लिये भागवत का ही ऋणी होना होगा, यद्यपि भागवत के अनुकरण से विशेष लाभ नहीं हुआ। सूरसागर भाषा भागवत का स्थान नहीं ले सका परन्तु उसकी कृष्णकथा पदों के सौन्दर्य के कारण ही भागवत की कथा को उत्तर भारत से हटाकर उसके स्थान पर प्रतिष्ठित हो गई।

एक प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि सारे दशमस्कंध की सामग्री परंपरा की रक्षा करते हुए भी मौलिक है। पिछले

पृष्ठोंमें हम सूर की मौलिकता पर विचार कर चुके हैं। वर्णनात्मक छन्द और पदों दोनों में एक सी मौलिकता है। यह मौलिकता उसी समय आ सकती थी जब सारे दशमस्कंध की कल्पना एक साथ हुई हो और कथा-सामग्री के संबंध में सूर निश्चित सिद्धान्तों से परिचालित हों। इस मौलिकता के कई रूप हैं :

(१) भागवत की कथाओं में मौलिकता की स्थापना;

(२) भागवत के संकेतों का मौलिक विस्तार, जैसे बाललीला, गोचारण, गोपीप्रेम आदि के संबंध में;

(३) राधा की कथा का आरम्भ, मध्य और अंत;

(४) गोपियों और राधा को लेकर कई रूपक-प्रसंगों की सृष्टि;

(५) भ्रमरगीत की कथा को भागवत के विपरीत धारा में बहाकर नवीन उद्देश्यों की सृष्टि और पुष्टि;

(६) संयोग-चित्रण के मौलिक प्रसंग;

(७) राधा-कृष्ण प्रेम की रहस्यात्मकता की व्यंजना के लिये

(क) युगलदम्पति का सौन्दर्य
(ख) ” ” ” केलिविलास
(ग) दृष्टिकूट के पद

(८) गोपीकृष्ण की प्रेमव्यंजना के लिये मुरली के प्रति पदों, नयन के प्रति पदों, मन के प्रति पदों और भ्रमरगीत के पदों की मौलिक सामग्री।

यही स्थल सूर के काव्य के प्रधान अंग हैं। शेष भाग महत्त्व-पूर्ण नहीं हैं। यह स्पष्ट है कि सूर ने मौलिकता का विशेष आग्रह रख कर कृष्णकथा को अभिनव रूप दे दिया है।

—:o:—

२

# सूरसागर और भागवत की कृष्णलीलाएँ

## १ अलौकिक लीलाएँ

अलौकिक लीलाओं में, जिनमें अधिकांश असुरवध से सम्बंध रखती हैं, जहाँ तक हो सका है, सूर ने भागवत की कथाओं का पालन किया है, परन्तु जैसा हम कह चुके हैं, उन्होंने कभी भी भागवत का शब्दशः अनुवाद नहीं किया। वे कथा का सार लेकर जहाँ-तहाँ कवित्व का पुट देते हुए चलते हैं और भागवत के विस्तार—स्तुति आदि—एवं जटिल भावों को छोड़ देते हैं। इस प्रकार उसमें कुछ अधिक मानवता आ जाती है। जहाँ भागवत में ये लीलाएँ कृष्ण के ऐश्वर्य, अलौकिकता आदि को प्रकट करती हैं, वहाँ सूरसागर में केवल लीलाएँ मात्र हैं। फल यह हुआ है कि वे अधिक सरस हो गई हैं।

दूसरी बात यह है कि सूर प्रत्येक असुरलीला को कंस से संबन्धित कर देते हैं। इस प्रकार उनकी सारी कथा में वह एक सूत्रता आ जाती है जो भागवत में भी नहीं है।

तीसरे, वे कुछ लीलाएँ अपनी ओर से बढ़ा देते हैं। भागवत में उनका अभाव है ( जैसे सिद्धर बाभन की कथा )॥

चौथे, जैसा आगे स्पष्ट हो सकेगा, लगभग प्रत्येक लीला में उन्होंने मौलिक होने के प्रयत्न में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य कर दिया है। यह परिवर्तन किस ढंग का है, इस पर हम आगे विचार करेंगे।

नीचे हम लीला को भागवत में कही गई लीला से तुलना करते हैं।

## १—पूतनावध ( भाग० स्कंध १०, ६ )

सूरसागर में यह लीला केवल पदों में है। भागवत में भी इसका संवंध कंस से स्थापित किया हुआ है (श्लोक २)। परन्तु सूर ने उस श्लोक के इंगित मात्र को विस्तार देकर पाठक के लिए अधिक ग्राह्य वना दिया है।

कंसराय जिय सोच पड़ी  
कहा करौं काको व्रज पठऊँ विधना कहा करी  
वारम्वार विचारत मन में भूप नींद विसरी  
सूर वुलाई पूतना सों कह्यो करु न विलंब घरी  
आजु हौं राजकाज करि आऊँ  
वेगि सम्हारौ सकल घोक शिशु जो मुख आयसु पाऊँ  
तौ मोहन मूर्छन वशीकरन पढ़ि अमित देह वठाऊँ  
अग सुभग सभी के मधु मूरति नयननि माँह समाऊँ  
घसिकै गरल चढ़ाइ उरोजनि लै रुचि सों पय प्याऊँ  
सूरदास प्रभु जीवित ल्याऊँ तो पूतना कहाऊँ

इसके अतिरिक्त काव्य का थोड़ा सा स्पर्श देकर सूर कथा को सुन्दर वना देते हैं। भागवत की भाँति यहाँ भी पूतना-सुन्दर स्त्री का रूप धर के नंद के घर गई है—

अहो महरि पालागन मेरो हौं तुम्हारे सुत देखन आई

सूरसागर के एक पद में जहाँ सूर ने भागवत का अनुकरण कर के कृष्ण को पलने पर पोढ़ाया,×[1] वहाँ दूसरे पदों में पूतना के कृष्ण को यशोदा की गोद से लेने का उल्लेख किया है×[2]।

---

×१ पौढ़ाये हरि सुभग पालने नंद महरि कछु काज सिधाई  
वालक लिये उछंग दुष्टमति हर्षित अस्तन पान कराई  
×२ कान्हे ले यशुमति कोरा तें रुचि कर लेठ लगाई

पहले पद में भागवत का पालन करते हुए भी सूर ने विभिन्नता रखी है। भागवत में यशोदा के सामने ही पूतना ने कृष्ण को पलंग से उठाया है, यहाँ "नंद महरि" काम से भीतर चली गई है। एक पद में कृष्ण यशोदा की गोदी में वज्र जैसे भारी पड़ जाते हैं, इससे माता को कष्ट होता है और पूतना के माँगने पर वह उसे तुरन्त बालक सौंप देती है।×[३] यह बालक के भारी पड़ने की बात भी मौलिक रही। इस प्रकार की छोटी-छोटी नवीन उद्भावनाएँ सूरदास प्रत्येक कथा में उपस्थित किया करते हैं। वास्तव में उनका उद्देश्य लीला-गान था, पौराणिक या परम्परागत कथा की रक्षा नहीं।

## २—सिद्धर ( श्रीधर ) ब्राह्मण की कथा

यह कथा भागवत में नहीं है। सूरदास ने इसे कहाँ से लिया यह नहीं कहा जा सकता। कदाचित् यह कथा स्वयं उनके मस्तिष्क की उपज हो। कथा इस प्रकार है—

श्रीधर ब्राभन परम कसाई
कह्यो कंस सों वचन सुनाई
प्रभु मैं तुम्हरो आज्ञाकारी
नंदसुवन को आवों मारी
कंस कह्यो तुमते इहु होई
तुरइ जाहु कर विलंब न कोई
श्रीधर नंदभवन चलि आयो
यशुदा उठि कै माथो नायो
करो रसोई मैं चलि जावों
तुम्हरे हेत गंगजल लावों

---

×३ नंदसुवन तबहीं पहिचानी असुरधरनि असुरन की जाई
आपुन वज्र समान भए हरि माता दुखित भई भरपाई

इहि कहि यशुदा यमुना गई
सिद्धर कही भली यह भई
उन अपने मन मारन ठान्यो
हरिजी ताको तब ही जान्यो
ब्राह्मण मारे नहीं भलाई
अँग याको मैं देऊँ नसाई
जब ही ब्राह्मण हरिढिग आयो
हाथ पकर हरि ताहि गिरायो
जोड़ चाप लै जीभ मरोरी
दधि ढरकायो भाजन फोरी
राख्यो कछु तेहि मुख लपटाई
आपु रहे पलना पर आई
रोवन लागे कृष्ण वितानी
यशुमति आई गई लै पानी
रोवत देख कह्यो अकुलाई
कहा कर्‌यौ तैं विप्र अन्याई
ब्राह्मण के मुख बात न आवै
जीभ होई तो कहि समुझावै
ब्राह्मण को घर बाहर कीन्हो
गोद उठाइ कृष्ण को लीन्हो
पुरवासी सब देखन आए
सूरदास हरि के गुन गाए (पृ १०, छंद ५१)

## २—कागासुर-वध

कागासुर की कथा भागवत में नहीं है। पता नहीं, सूरदास के पास इसका क्या आधार है। कदाचित् श्रीधर ब्राह्मण की भाँति यह कथा भी मौलिक हो—

कागरूप एक दनुज धर्‌यो
नृप आयसु लेकर माथे पर हर्षवंते उर गर्व भर्‌यो
कितिक बात प्रभु तुम आयसु लै यह जानो मो जात भर्‌यो
इतनी कहि गोकुल उठि धायो आइ नंदघर छाज्र रह्यो
पलना पर पौढ़े हरि देखे तुरत आइ नैननि सों अर्‌यो
कंठ चापि बहु बार फिरायो गहि पटक्यो नृप पास पर्‌यो
तुरत कंस तेहि पूछन लाग्यो क्यों आयो नहिं काज सरो
बीत्यो जाम ज्वाब जब आयो सुनतु कंस तेरो आयु सर्‌यो
धरि अवतार बहाबल कोऊ एकहि कर मेरो गर्व हर्‌यो
सूरदास प्रभु कंस निकंदन भक्त हेतु अवतार धर्‌यो

## ४—शकटासुर-बध

भागवत में शकटभंजन (१०, ६) की कथा इस प्रकार है—"···इधर दूध के लिए रोते-रोते कृष्णचंद्र ने दोनों पैर उछाले ॥६॥ पालने में श्रीकृष्ण जी लेटे थे और ऊपर शकट (छकड़ा) धरा था। कृष्ण के नवपल्लव-सम कोमल-कोमल पैरों के प्रहार से वह छकड़ा उलट पड़ा और उसमें धरे हुए दही, दूध आदि, अनेक रसों के भरे हुए काँसे आदि के विविध बर्तन गिरकर चूर-चूर हो गए एवं छकड़े के भी चक्र, अक्ष और कबर आदि अंग टूट-फूट गए ॥७॥ उत्सव में आई हुई गोपियों सहित यशोदा, नंद और अन्यान्य गोप-गण इस अद्‌भुत व्यापार को देख विस्मय से व्याकुल होकर कहने लगे कि—यह क्या है! छकड़ा आप ही आप कैसे उलट पड़ा? गोप और गोपियाँ छकड़ा उलटने का कोई कारण न निश्चित कर सके। तब वहीं खेल रहे बालकों ने कहा कि इसी (कृष्ण) ने रोते-रोते पैर उछाल कर छकड़ा गिरा दिया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥६॥ किन्तु गोप-गोपियों ने 'बालकों

की बात' कहकर उसपर विश्वास नहीं किया, क्योंकि उन्हें बालक के अप्रमेय बल का ज्ञान न था ॥१०॥

स्पष्ट है कि इस कथा में "शकट" असुर नहीं है। कृष्ण के अप्रमेय बल का निदर्शन ही इस कथा-सृष्टि का उद्देश्य है।

सूरसागर में यह प्रसंग ही दूसरी तरह है। कागासुर की असफलता पर कंस उदास होता है। सेनापतियों को हाल सुनाता है। कहता है, "ऐसो कौन भारि है ताको मोंहि कहै सो आइ। वाको मारि अपनपौ राखै सूर ब्रजहि सो जाइ ॥१०८॥" शकटासुर कहता है मुझे प्रधान सेनापति कर दो तो इस काम का बीड़ा उठाता हूँ—

नृपति बात यह सबनि सुनायो
मुहां चही सेनापति कीनो शकटासुर मन गर्व बढ़ायो
दोउ कर जोरि भयो तब ठाढ़ो प्रभु आयसु मैं पाऊँ
ह्यांते जाइ तुरत ही मारों कहौ तो जीवत ल्याऊँ
यह सुनि नृपति हर्ष मन कीनो तुरतहि बीरा दीनों
बारंबार सूर कहि ताको आपु प्रशंसा कीनों
पान लै चल्यो नृप आन कीन्हों
गयो शिर नाइकै गर्व ही बढ़ाइ कै शकट को रूप धरि असुर लीन्हों
सुन घहरानि ब्रज लोग चकृत भए कहा आघात ध्वनि करतु आवै
देखि आकाश चहुँ पास दशहूँ दिशा डरे नरनारि तनुसुधि भुलावै
आपु गयो तहीं जहँ प्रभु रहे पालने करगहे चरण अंगुठ चचोरहि
किलकि किलकि हँसत बाल शोभा लसत जानि तिहि कसत रिपु आयो
नेक फटक्यो लात शब्द भयो आघात गिरयो महरात शकटा सहार्यो
सूर प्रभु नंदलाल दनुज मार्यो ख्याल मेटि जंजाल दुज जन उबार्यो

इन दो ही पदों में सूरदास ने कथा को एकदम बदल दिया है। यही नहीं, वे शकटासुर को व्यक्तित्व प्रदान करने में भी सफल हुए हैं।

## ५—तृणावर्त्त-वध

भागवत १०, ६, में तृणावर्त्त की कथा विस्तार-पूर्वक दी हुई है। वहाँ उसे स्पष्ट रूप से "कंस का भेजा हुआ" लिखा है। सूरसागर में यह कथा कुछ संक्षेप में है, परन्तु मूलतः वही है जो भागवत में है (११०, । परन्तु सूरदास ने इस प्रसंग के अंत में वात्सल्यपूर्ण चित्र देकर कथा का अंत अत्यंत सुन्दर कर दिया है। भागवत में अंत इतना अच्छा नहीं हो सका है ऐसे प्रसंगों के अवसर पर भागवत में अद्भुत रस की ही पुष्टि होती है, सूरसागर में वात्सल्य रस की ओर कवि का ध्यान होने के कारण प्रत्येक प्रसंग एक दूसरी ही पीठिका लिए हमारे सामने आता है, अतः उसका रूप नवीन हो जाता है।

## ६—महराने के पांडे की कथा

भागवत में यह कथा नहीं है। अन्य ग्रन्थों में भी नहीं मिलती, अतः स्पष्ट ही सूर की कल्पना-प्रसूत है। कथा इस प्रकार है—

महराने तै पांडे आयो

व्रज घर घर बूझत नंदरावर पुत्र भयो सुनिके उठि धायो
पहुच्यो आइ नंद के द्वारे यशुमति देखि अनंद बढ़ायो
पाय धोइ भीतर बैठायो भोजन को निज भवन लिपायो
जो भावै सो भोजन कीजै विप्र मनहि अति हर्ष बढ़ायो
बड़ी वयस विधि भयो दाहिनो धनि यशुमति ऐसो सुत जायो
धेनु दुहाइ दूध लै आई पांडे रुचि कै खीर चढ़ायो
घृत मिष्टान्न खीर मिश्रित करि परुसि कृष्णहित ध्यान लगायो
नैननि उघारि विप्र जो देखै खात कन्हैया देखन पायो
देखा आइ यशोदा सुतकृत सिद्ध पाक इहि आह जुठायो

महरि विनय दोऊ कर जोरे घृत मिष्टान्न पय बहुत मँगायो
सूर श्याम कत करत अचगरी बारबार ब्राह्मणहि खिजायो

पांडे नहि भोग लगावन पावै
करि पाक जबै अर्पत है तबहिं तबहिं छवै आवै
इच्छा करि मैं ब्राह्मण न्योत्यौं तू गोपाल खिझावै
वह अपने ठाकुरहि जेवाँवत तू ऐसे उठि धावै
जननी दोष देहु जनि मोको करि विधान बहु ध्यावै
नैन मूंदि कर जोरि नाम लै बारहि बार बुलावै
कह अंतर क्यों होइ भक्त को जो मेरे मन भावै
सूरदास बलि हौं ताको जो जन्म पाइ यश गावै

सफल जन्म प्रभु आजु भयो
धनि गोकुल धनि नंद यशोदा जाके हरि अवतार लियो
प्रगट भयो अब पुण्य सुकृत फल दीनबन्धु मोंहि दरश दियो
बारंबार नंद के आगन लोट द्विजे आनन्द भयो
मैं अपराध किन्यो बिन जाने को जानै केहि भेष जँयो
सूरदास प्रभु भक्तहेत वश यशुमति हित अवतार लयो (१३०)

## ७—वत्सासुर-वध ( भाग० १०-११ )

भागवत में यह कथा केवल ३ छंदों ( ४१, ४२, ४३ ) में है। सूरसागर में यह कथा भागवत की भाँति ही है; संक्षेप में है, परन्तु सूरदास इस छोटे-से प्रसंग में भी जो एक छंद ( १५० ) में है, नवीन उद्भावना भरने में नहीं चूकते। भागवत में कृष्ण और बलदेव साथ-साथ ही हैं, सूरसागर में अलग-अलग हो गए हैं—

चले बछरू चरावन ग्वाल
वृन्दावन सब छाँड़िकै गये जहँ घनताल
परम सुन्दर भूमि देखत हँसत मनहि बड़ाइ

आपु लागे तहाँ खेलन बच्छ दिये बगंराइ
जानि कै हलधर गये तहँ बाल बछरा पास
रोहिणी नंदनहि देखत हरष भए हुलास
तालरस बलराम चाख्यो मन भयो आनंद
गोपसुत सब टेरि लीने सुधि भई नँदनंद
कहो बछरा हाँकि ल्यावहु चलहु जहाँ कन्हाइ
तालरस के पान ते अति मत्त भए बलराइ

परन्तु सूरदास की मौलिकता यहीं तक समाप्त नहीं होती। भागवत में कृष्ण वत्सासुर का बध करते हैं, सूरसागर में बलराम—

तहाँ छल करि दनुज धायो धरे बछरा भेसि
फिरत ढूँढ़त श्याम को अति प्रबल बल को देखि
सबै बछरनि घेरि ल्याए बहु न घेर्यो जाइ
दाऊ कहि बालकनि टेर्यो वृषभसुत न धराइ
कह्यो मन इहिं अबहिं मारौं उठे बलहिं सँभारि
टेरि लिए सब ग्वाल बालक गए आपु उचारि
आगे ह्वै इत को विडार्यो पूछ हाथ लगाइ
पकरि के भुज सो फिरायो ताल के तर आइ
असुर लै तरु-सों पछार्यो गिर्यो तरु झहराइ
ताल सों तरु-ताल लाग्यो उठ्यो बन घहराइ
बछ असुर को मारि हलधर चले सबनि लिवाइ
सूर प्रभु को वीर जाकी तिहूँ भुवन बड़ाइ

एक दूसरे पद में कथा भागवत का पूर्ण अनुकरण करती है जिससे स्पष्ट है कि सूर भागवत की कथा से पूर्णतः परीचित भी थे।

बछरा चालन चले गोपाल
सुबल, सुदामा अरु श्रीदामा संग लिए सब ग्वाल
दनुज एक तहँ आई पहुँचेउ धरे वत्स को रूप

हरि हलधर दिशि चितइ कह तुम जानत हो इह बीर
कहेव अन्हि दानौ इहि मारौ धारे वत्स शरीर
तब हरि सींग गह्यो यक कर सों यक कर सों गहे पाइ
थोरेकहि बलसों छिन भीतर दीनों ताहि गिराइ

## ८—बकासुर-बध

भागवत में बकासुर-बध की कथा स्कं० १०, ११ छंद ४६-५१ तक इस प्रकार है—

"एक दिन सब ग्वालबाल जलाशय के निकट जाकर अपने-अपने बछड़ों को जल पिलाने लगे। उन्होंने देखा कि वहाँ पर एक बड़ा भारी जीव बैठा है, जैसे वज्र के प्रहार से फट कर किसी पर्वत का शिखर गिर पड़ा हो। उसे देखकर सब ग्वाल-बाल बहुत ही भयभीत हुए। वह जीव बकासुर नाम महादैत्य था जो बगुले का रूप धरकर आया था। उस तीक्ष्ण चोंच वाले महाबली असुर ने सहसा आकर कृष्णचंद्र को निगल लिया। बकासुर के द्वारा कृष्ण को निगला हुआ देख बलदाऊ आदि ग्वालबाल कृष्ण के बिना इंद्रियों के समान, अचेत हो गये। बकासुर के कंठ में जाकर कृष्णचंद्र जी अग्नि के समान उसके तालू को जलाने लगे, तब ग्वाल-बाल रूप जगत के गुरु और पिता कृष्ण को उसी समय उसने उगल दिया और कृष्ण को अक्षत शरीर देख कुपित हो, फिर चोंच उठाकर मारने दौड़ा। इस प्रकार आते हुए कंस के सखा बकासुर की चोंच को सज्जनों के स्वामी कृष्ण ने दोनों हाथों से पकड़ लिया और देवगण को प्रसन्न करते हुए सब बालकों के सामने ही लीलापूर्वक तृण के समान बीच से फाड़ डाला।"

सरसागर (१५०) में यह लीला इस प्रकार है—

बन बन फिरत चरावत धेनु
श्याम हलधर संग है बहु गोप बालक सेनु
तृसित भई सब जानि मोहन सखन टेरत बेनु
बोलि ल्यायो सुरभि गण सब चलौ यमुन जल देनु
हेरि देदे ग्वाल बालक कियो यमुन तट गैन
बकासुर रचि रूप माया रह्यो छल करि आइ
चंचु एक पुहुमी लगाई इक अकास समाइ
आगे बालक जात है ते पाछे आए धाइ
श्याम सों सब कहन लागे आगे एक बलाइ
नितहि आवत सुरभि लीने ग्वाल गोसुत संग
कबहुँ नहिं इहि भाँति देख्यो आज को सो रंग
मनहिं मन तब कृष्ण जान्यो बका असुर बिहंग
चोंच फारि विदारि डारौं पलक में करौं भंग
निदरि चले गुपाल आगे बकासुर के पास
सखा सब मिलि कहन लागे तुमन जियकै आस
अजहुँ नाहि डेरात मोहन बचे कितने गास
तब कह्यो हरि चलहु सब मिलि मारि करहिं बिनास
चले सब मिलि जाइ देख्यो अगम तम विकरार
इत धरणि उत व्योम के बिच गुहा के आकार
पैठि बदनु विदारि डार्‌यो अति भए विस्तार
मरत असुर चिकार पार्‌यो "मार्‌यो नंदकुमार"
सुनत ध्वनि सब ग्वाल डरपै अब न उबरे श्याम
हमहि बरजत गयो देखो कियो ऐसो काम
देखि ग्वालन विकलता तब कहि उठे बलराम
बका बदन बिदारि डार्‌यो अबहिं आवत श्याम
सखा हरि सब टेरि लीने सबै आवहु धाइ
चोंच फारि बका संहार्‌यो तुमहुँ करौ सहइा

निकट आए गोप बालक देखि हरि सुख पाइ
सूर प्रभु के चरित अगणित नेति निगमन गाइ

## ६—अघासुर-वध

अघासुर-वध प्रसंग भागवत १०, १२ के १३-३१ छंदों का विषय है। सूरसागर में इसे अत्यंत संक्षेप में कह दिया गया है (१५१, १५२)। भागवत में ग्वाल-बालक कृष्ण के पहले ही अजगर के मुँह में कूद जाते हैं, कहते हैं कि कृष्ण अवश्य सहायता करेंगे यदि यह असुर हुआ (छं० २४)। कृष्ण उनको बचाने के लिए ही कूदते हैं। सूरसागर में कृष्ण और बालक एक ही साथ कूदते हैं। कृष्ण पहले ही समझ जाते हैं कि यह एक राक्षस आ गया है, इसका वध करना है। वही ग्वाल-गायों को लेकर कूदते हैं—

कृष्ण कह्यो मन ध्यान असुर इकु बस्यो अघूरै
बालक बछरा राखिहौं एक बार ले जाउ
कछुक जनाऊँ अपनपौ हो अब लौं रहो सुभाउ
असुर कुलहिं संहार धरणि को भार उतारों
कपटरूप रचि रह्यो दनुज यहि तुरत पछारों

भागवत में ग्वाल-बालों के अंदर चले जाने पर कृष्ण की प्रतीक्षा में अघासुर मुँह खोले रहता है। जब कृष्ण कूद पड़ते हैं तो मुँह बंद कर लेता है। सूरसागर में भी वह मुँह बन्द कर लेता है। सूरसागर में अब कृष्ण डरे हुए बालकों को बताते हैं कि यह असुर है। वे जी छोड़ देते हैं। उनका विश्वास डगमगा जाता है। तब कृष्ण देह का विस्तार करते हैं। अघासुर होठ बन्द किए रहता है। कृष्ण ब्रह्मरंध्र फाड़ कर निकलते हैं। बाहर आकर बालकों को पुकारते हैं। अब उन्हें आश्वासन होता है ( हम अज्ञान कत डरत हैं कान हमारे

पास )। भागवत में कृष्ण मुँह से निकलते हैं। उसमें बालक मर जाते हैं। कृष्ण की संजीविनी दृष्टि पाकर जी उठते हैं। सूरसागर में बालक मरते नहीं। इस प्रकार हम कथा के विस्तार में एक अत्यंत सूक्ष्म अंतर अवश्य देखते हैं। बालकों का साहस, फिर भय, कृष्ण का आश्वासन आदि मनोविज्ञान के सहारे इस प्रसंग को उस प्रकार नीरस नहीं होने दिया जिस प्रकार भागवत का प्रसंग नीरस है।

## १०—धेनुकासुर-वध

भागवत १०, १५ (छं० २०—४०) में यह कथा विस्तारपूर्वक कही गई है। सूर ने एक छंद में ही उसकी समाप्ति कर दी है। कथा मूलतः वही है जो भागवत में है। इस कथा में सूरदास ने कोई नई उद्भावना नहीं की।

## ११—प्रलंबासुर-वध

प्रलंब-वध की कथा भागवत १०, १४ छन्द १७—३० में वर्णित है। सूरदास ने यह लीला अत्यंत संक्षेप में कही है। ढंग भी दो हैं। अन्तर इस प्रकार है—

(१) भागवत में प्रलंबासुर का वध बलराम ने किया है, कृष्ण ने नहीं। सूरसागर में उसे कृष्ण ने मारा है।

(२) पदों में जो कथा कही गई है उसमें घटना भागवत की ही वर्णित है। बालक का रूप धर कोई असुर ग्वालों में खेलने लगता है और कृष्ण को कंधे पर चढ़ा कर ले जाता है। परन्तु उसमें इस कथा का इंगित है विस्तार नहीं। वर्णनात्मक छन्द में लिखी दूसरे ढंग की कथा प्रत्येक भाँति नवीन सामग्री उपस्थित करती है उसकी घटना भी सूर की कल्पित घटना है—

> एक दिवस प्रलंब दानव को लीन्हों कंस बुलाई
> कह्यो जाइ मारो नंद ढोटा देहौं बहुत बड़ाई

तेहि कहि के आयो ब्रज भीतर करत बड़ो उतपात
नर-नारी देखत सब डरपे कीन्हों हृदय संताप
हरि ताको दे सैन बुलायो मो पै काहे न आवत
तब वह दोऊ हाथ उठाये आयो हरि देखि धावत
हरि दोऊ हाथ पकरि कै ताके दियो दूरि फटकारी
गिरी धरणि पर अति विह्वल होइ रह्यो न देह सँभारी
बहुरो उठ्यो सँभारि असुर वह धायो निज दुखदाई
देखि भयानक रूप असुर को सुर नर गए डराई
चहुँधा घेरि असुर धरि पटक्यो शब्द उठ्यो आघात
चौंकि पर्यो कंसागार सुनि के भीतर चल्यो हहरात

## १२—गोवर्धनपूजा और इन्द्रमानमोचन लीला

भागवत में ये लीलाएँ १०, २४-२५ का विषय हैं। सूरसागर में लीलाएँ तीन बार कही गई हैं। यद्यपि मूलकथा सूरसागर और भागवत में एक ही है, परन्तु आगे के विस्तार में अंतर होने से सूरसागर की कथा में विशेष सरसता आ गई है :

(१) सूरसागर की कथा भागवत् की कथा से पहले शुरू होती है, यह भूमिकांश सूर की कल्पना है। पृष्ठ २१० (छं० ५—११) और २२२-२२३ की सामग्री एकदम नई है।

(२) भागवत १०, २४ (छं० १२-२२) में कृष्ण नंद को मृत्यु, कर्म आदि के संबंध में गंभीर तत्त्वोपदेश देते हैं। सूरदास ने इन अंशों को निकाल दिया है। यह भागवत में इन्द्र की पूजा के बदले गोवर्धनपूजा के लिये गोपों को तैयार कराने के हेतु है। सूरदास ने तत्त्वज्ञान को हटाकर, इस प्रसंग की कल्पना ही दूसरी भाँति की है :

सुरपति पूजा जानि कन्हाई। बारबार बूझत नँदराई
कौन देव की करत पुजाई। सो मोसों तुम कहहु बुझाई

महर कह्यो तब कान्ह सुनाई। सब देवन को राई
तुमरे हित मैं करत पुजाई। जाते तुम रहो कुशल कन्हाई
सूर नंद कहि भेद बताई। भीर बहुत घर जाहु सिखाई
जाहु घरहि बलिहारी तेरी। सेज जाइ सोवो तुम मेरी
मैं आवत हौं तुम्हरे पाछे। भवन जाहु तुम मेरे बाछे
गोपन लीन्हे कान्ह बुलाई। मंत्र कहौ एक मनहि समाई
आजु एक सपने कोउ आयो। शंख चतुर्भुज चारी बतायो
मोसों यह कहि-कहि समझायो। यह पूजा तुम किनहिं सिखायो
सूर श्याम कहि प्रगट सुनायो। गिरिगोबर्धन देव बतायो
तब यह कहन लगे दिवराई। इंदुहि पूजे कौन बड़ाई
कोटि इन्द्र हम छिन में मारै। छिनहि मैं फिरि कोटि सँभारे
जाके पूजे फल तुम चखहु। ता देवे तुम भोग लगावहु
तुम आगे वह भोजन खैहे। मुँह माँग्यो फल तुमको दैहै
ऐसो देव प्रगट गोवर्धन। जाके पूजे बाढ़ै गोधन
समुझि परि यह कैसी बानी। ग्वाल कही यह अकथ कहानी
सूर श्याम यह सपनो पायो। भोजन कौन देव ही खायो
मानहु कह्यौ सत्य यह बानी। जौ चाहो ब्रज की रजधानी
जो तुम मुँह माँग्यो फल पावहु। तो तुम अपने करन जेंवावहु
भोजन सब खैहैं मुँह माँगे। पूजन सुरपति तिनके आगे
मेरी कही सत्य करि मानहु। गोवर्धन की पूजा आनहु
सूर श्याम कहि कहि समुझायो। नंद गोप सबके मन भायो

दूसरे स्थान पर भी यही है—

नन्द कह्यो घर जाहु कन्हाई
ऐसे में तुम जैहो जिनि कहु अहो महरि सुत लेहु बुलाई
सोइ रहौ हमरे पलिका पर कहती महरि हरि सों समुझाई
और महरढिग श्याम बैठि के कीनो एक विचार बनाई
सपने आजु मिल्यो मोको इक बड़ो पुरुष अवतार जनाई

कहन लग्यो मोसों ए बातें पूजत हौं तुम काहि मनाई
गिरि गोवर्धन देवन को मणि सेवहु ताको भोग चढ़ाई
भोजन करै सबनि के आगे कहत श्याम यह मन उपजाई
सूरदास गोपन आगे यह लीला कहि कहि प्रगट सुनाई

(३) सूरदास का वर्णनात्मक अंश (पूजा की तैयारी, पूजादि) अत्यंत विस्तृत और कवित्वपूर्ण है, अतः सरस है। भागवत में कृष्ण गोवर्धन पर "विशाल रूप" से प्रगट होते हैं, परन्तु भुजाएँ दो ही हैं (२४, २५) परन्तु सूर ने उन्हें सहसभुज बना दिया है (ऐसो देव कहूँ नहिं देखे सहस भुजा धरि खात मिठाई) भागवत में गोवर्धन का रूप कृष्ण जैसा नहीं है, परन्तु सूरसागर में यह स्पष्ट लिखा है कि गोवर्धन रूप में "कृष्ण" रूप से कोई अंतर नहीं था—

गिरिवर श्याम की उनहारि

× × ×

यहै कुण्डल यहै माला यहै पीत पिछौरि
शिखर शोभा श्याम की छवि श्याम छवि गिरि जोरि

इस प्रकार की कल्पना ने सूर को नंद, यशोदा, ललिता, राधा आदि की वात्सल्य आदि प्रेम-भावनाओं को प्रगट करने का अवसर दिया है।

(४) अध्याय २५ के इन्द्रकोप एवं गोवर्धन-धारण के प्रसंग में भी सूर की प्रतिभा ने मौलिकता प्रकट करने के अनेक अवसर ढूँढ लिये हैं। सूरसागर में सुरपति की मेघों को आज्ञा, उनके गुण गर्जन-तर्जन, प्रलयवर्षा, इन्द्र की चिंता और क्षोभ अधिक विस्तार से लिखे गए हैं। उनके कवित्वपूर्ण अंश ने इन्द्र को व्याक्तत्व प्रदान कर दिया है जिसका भागवत में अभाव है। जिस समय श्रीकृष्ण ने गोवर्धन धारण कर लिया है,

उस समय सूरदास को नंद-यशोदा और गोपियों की चिंता आदि के अनेक कवित्वप्रधान मानवीय प्रसंग मिल गए हैं। भागवत में इस अंश को अत्यंत सन्क्षेप में लिखा गया है। और उसमें कवित्व भी कुछ नहीं है।

(५) श्रीमद्भागवत में इस प्रसंग की समाप्ति इस प्रकार है—"इन्द्र का संकल्प भ्रष्ट हो गया, तब उन्होंने अभिमानहीन होकर अपने मेघों को वर्षा करने से निवृत किया ॥२४॥ उसी समय आकाश में एक भी मेघ नहीं रहा, प्रचंड आँधी और वर्षा रुक गई एवं सूर्य निकल आये ॥२५॥

सूरसागर में इन्द्र के अभिमानमोचन को कथा का रूप दे दिया गया है। इन्द्र स्वयम् कृष्ण के पास क्षमायाचना के लिये उपस्थित होते हैं ( २२६-२३१ ) ।"

## १३—वरुणालय से नंद को छुड़ाने की कथा

यह कथा भागवत स्कंध १०, अध्याय २८ का विषय है। पहले श्लोक से १०वें श्लोक तक यह कथा है। इसके अनन्तर इसके परिशिष्ट-स्वरूप कृष्ण द्वारा गोपियों को अपना निर्गुण-सगुण लोक दिखाने की कथा है जो सूरसागर में नहीं है।

सूरसागर में यह कथा भागवत की कथा के साथ-साथ ही चलती है। कोई नई उद्भावना नहीं है। परन्तु भागवत में यह कथा संक्षेप में है, सूर ने इसे अपने ढंग पर विस्तारपूर्वक लिखा है।

(१) नंद के एकादशी व्रत को सूर ने विस्तारपूर्वक लिखा है यह समय का प्रभाव है—

उत्तम शुक्ल एकादशि आई। भक्ति-मुक्ति दायक सुखदाई
निराहार जलपान विवर्जित। पाप न रहत धर्मफल अर्जित

नारायण हित ध्यान लगायो । और नहीं कहुँ मन विरमायो
वासर ध्यान करन सब बीत्यो । निशि जागरण करन मन चीत्यो
पाटंबर दिषि मन्दिर छायो । शालिग्राम तहाँ बैठायो
धूप दीप नैवेद्य चढ़ायो । प्रहुप मंडली तापर छायो
प्रेम सहित करि भोग लगायो । आरति करि तब माथो नायो
सादर सहित करी नँद पूजा । तुम तजि देव और नहिं दूजा

( २३२ )

(२) नंद को जब वरुण के दूत लेगये तो वरुण बड़े प्रसन्न हुए कि अब कृष्ण आयेंगे । उनकी रानियाँ भी बड़ी प्रसन्न हुईं और नंद का बड़ा आदर-सत्कार किया गया । यह सब सूर की कल्पना रही ।

(३) भागवत १०, २८ छंद ४—७ तक वरुण द्वारा कृष्ण की पूजा और प्रार्थना है, परन्तु सूर की इस विनय की रचना अधिक सुन्दर, भक्तिपूर्ण और सरस है । दोनों विनयों की पंक्तियों का सूक्ष्म रीति से मिलान करने पर सूर की प्रतिभा का परिचय हो सकेगा ।

(४) नंद ने लौटने पर गोपियों-गोपों आदि से वरुण के यहाँ का प्रसंग कहा, वह सूर में अधिक विस्तार पा सका है ।

(५) सूर इस कथा में "एकादशी माहात्म्य" का प्रचार करते दीखते हैं । वे अपनी रचना पौराणिक ढंग पर समाप्त करते हैं—

जो या पद को सुने-सुनावै
एकादशि व्रत को फल पावै

भागवत में इस प्रकार का प्रयत्न नहीं किया गया है ।

## १४—ऊखल बंधन और यमलार्जुन उद्धार

ये कथायें क्रमशः भागवत १०, ६ व १० अध्यायों का विषय है। सूरसागर में ये लीलाएँ दो बार कही गई हैं। एक लीला पदों में है, एक वर्णनात्मक चौपाई छंद में। भागवत में कृष्ण का ऊखल-बंधन के प्रसंग को संक्षेप में इस प्रकार कहा गया है। यशोदा दूध मथ रही हैं। साथ ही कृष्ण को दूध भी पिला रही हैं। "इतने में चूल्हे पर चढ़ा हुआ दूध उफनने लगा, अतएव यशोदा ने कृष्ण को वैसे ही छोड़ दिया और आप दूध उतारने के लिये जल्दी से गईं, कृष्णचन्द्र उस समय भी तृप्त नहीं हुए थे, इसीसे उनको क्रोध आ गया। कुपित कृष्ण ने फरक रहे अरुण होंठ दातों से दबा कर पास ही पड़े हुए लोढ़े से दही का माठ फोड़ डाला और झूठ-मूठ रोते हुए वहाँ से चल दिये, एवं भीतर जाकर एकांत में धरा हुआ मक्खन खाने लगे। (५।६)। यशोदा ने लौट कर यह उत्पात देखा। कृष्ण ऊखल पर चढ़े मक्खन खा रहे थे और बन्दरों को लुटा रहे थे, छड़ी लेकर मारने पहुँची। कृष्ण भागे। यशोदा पीछे भागी। उन्होंने कृष्ण को पकड़ लिया और रस्सी लेकर ऊखल से बाँधने लगीं। सूरसागर में यह कथा इस प्रकार के केवल एक छंद में लिखी है—

यशोदा हरि गहि राजत करपै

गावत गोविंद चरित मनोहर प्रेमपुलकि चित वरपै
उफनत क्षीर शरीर तन व्याकुल तब ही भुजा छुड़ायौ
भाजन फोरि दही सब डारेव लवनी मुख लपटायौ
लैकर दाँवरि यशोदा दौरी बाँधन कृष्ण न पायौ
द्वै द्वै अंगुर घटै जेवरी ताते अघबुध आयौ
नारद शाप भए यमलार्जुन तिन हित आप बँधायौ
सूरदास बलि जाइ यशोदा साँचे देवल आयौ

परन्तु सूर ने इस प्रसंग को मुख्यतः गोपियों के घरों में कृष्ण की मक्खन चोरी से सम्बंधित कर दिया है—

ग्वालिन उरहनो भोरहि ल्याई
यशुमति कहाँ गयो तेरो कन्हाई
माखन मथि भरि धरी कमोरी
अबही मोहन लै गयो चोरी
भलो कम ते सुतहि पढ़ायो
बारेही तैं मूँड चढ़ायो
यह सुनतहि यशुमति रिसमानी
कहाँ गयो कहि सारङ्गपानी
खेलत ते औचक हरि आये
जननी बाह पकरि बैठाये
मुख देखत यशुमति पहचानी
माखन बदन कहाँ लपटानी
फिरि देखे तो ग्वालिनि पाछे
माता मुख चितवत नहिं आछे
चोरी के सब भाव बताये
माता सँहिया ढ्कै लगाये
माखन खात जा परघर को
बाँधत तोहि नेक नहिं घर को
बाँहु गहे ढूँढति फिरे डोरी
बाँधौ तोहिं सकै को छोरी
बाँधि पचि डोरी नहिं पूरे, इत्यादि

प्रसंग को इस प्रकार से बदल देने का कारण सूर का कवित्व था। इससे उन्हें उलाहना लाने वाली गोपियों का क्षोभ, उनका यशोदा से कृष्ण को खोलने की प्रार्थना करना, यशोदा गोपियों का कथोपकथन, बँधे हुए कृष्ण के रोने-हिचकियों का वर्णन

आदि अनेक भावपूर्ण मनोवैज्ञानिक और काव्य-रस-प्रधान अंग मिल गये। पुष्टिमार्ग में "नवनीतप्रिय" कृष्ण ही की महत्ता है, अतः कृष्ण का इस लीला को माखनचोरी से जोड़ देने से कवि को उपासना-भाव एवं नवनीतप्रिय की कथा के विस्तार के लिये अवकाश मिल गया।

सूरदास ने यमलार्जुन-उद्धार की कथा अत्यंत संक्षेप में लिखी है। नारद द्वारा कुबेर पुत्रों के शाप की कथा जो भागवत १०,१० छंद १—२३ तक फैली हुई है, सूरसागर में नहीं है। इसी प्रकार कुबेर-पुत्रों को स्तुति (भागवत १०,१० छ० २६-३८) भी संक्षेप में है और भागवत में जहाँ वह ज्ञानमंडित है, वहाँ सूरसागर में केवल "धन्य धन्य" कह देने पर समाप्त हो जाती है—

धनि ब्रज कृष्ण जहाँ वपुधारी। धनि यशुमति ब्रह्महि अवतारी
धन्य नंद धनि धनि गोपाला। धन्य धन्य गोकुल की ग्वाला
धन्य गाइ धनि द्रुम बनचारन। धनि यमुना हरि करत विहारन
धन्य उरहनो प्रातहि ल्याई। धनि माखन चोरत यदुराई
धन्य सुजन ऊखल मदि ल्याये। धन्य दाम भुज कृष्ण बँधाये

सूरदास ने इस प्रसग में एक मौलिकता भी रखी है—
"शंखचक्र कर शारङ्गधारी। भक्त हेतु प्रगटे बनवारी"
भागवत में कृष्ण इस प्रकार कुबेरपुत्रों को दर्शन नहीं देते।

संक्षेप में, सूरसागर की इन कथाओं का अपना मौलिक व्यक्तित्व है और सूर की अत्यंत सुन्दर रचनाओं में इनका स्थान है।

## १५—ब्रह्मा-वत्सहरणलीला

यह भागवत १० स्कंध के १२, १३ अध्यायों का विषय है। सूरसागर में इस लीला को संक्षेप से दो-तीन छन्दों में कहा गया

है ( पृ० १५८ छन्द ४१, पृ० १५६ छन्द ४७, ४८, ५६, ५० स्तुति पृ० १५६-६० छन्द ५२, ५३, ५४, ५५, ५६ और पृ० १५६ छन्द ८ ) परंतु विस्तार-पूर्वक लीला एक ही वार कही गई है ( पृ० १५७-५८ ) जो वर्णनात्मक है, गीतात्मक नहीं।

भागवत में ब्रह्मा अघासुर-बध की लीला से चकित हो जाते हैं और कृष्ण के देवत्व की परीक्षा के लिये वत्सहरण करते हैं। सूरसागर में इस ओर संकेत तो है, परन्तु लीला का कारण दूसरा दिया गया है। ब्रह्मा वृन्दावन-लीला को देख कर विस्मित होते हैं। यह सृष्टि कृष्ण ने उनसे विना परामर्श लिए रची थी, अत: ब्रह्मा सोचते हैं कि वह उस स्रष्टा को जिसने उन्हें सृष्टि-रचना का काम सौंपा था, क्या उत्तर देंगें।

सूरसागर में वत्सहरण के बाद जब ब्रह्मा लौट आते हैं तो चकित होते हैं क्योंकि ब्रज में वह लीला उसी प्रकार चल रही है। उनके भ्रम को सूर ने नए ढङ्ग से चित्रत किया है—

देख्यो जाइ जगाइ बाल गोसुत जहँ राखे
बिधि मन चक्रत भए बहुरि ब्रज को अभिलाखे
छिन भूतल छिन लोक में छिन आवे छिन जाइ
ऐसेहि करत बरस दिन बीतो थकित भए बिधि पाइ

इसके वाद की ब्रह्मा की स्तुति ( १५७-५८ ) भागवत से भिन्न है, वह ब्रह्मा की भावना से अधिक सूरदास की भावना को हमारे सामने रखती है।

भागवत के २३वें अध्याय की सामग्री की बहुत-सी वस्तुएँ सूरसागर के किसी भी लीलाप्रसंग में नहीं है जैसे बलराम का चकित होना, ग्वाल-बाल और बछड़ों का गोपाल हो जाना। वास्तव में सारे अध्याय की सामग्री का एक अत्यंत छोटा भाग सूरसागर में आया है।

भागवत में ब्रह्मास्तुति अध्याय २४ छन्द १—४१ तक का विषय है और उसमें सगुण, निर्गुण, ज्ञान, अज्ञान आदि अनेक मस्तिष्क-मंडित विचार आये हैं। सूरदास ने इन सब विषयों की उपेक्षा की है। केवल छन्द ३१-३४ की कुछ सामग्री को लेकर, उसे अपनी आंतरिक भावनाओं से बढ़ा कर ब्रह्मा की स्तुति के रूप में रखा है। सच तो यह है कि यहाँ भी वे भागवत से इंगित मात्र लेते हैं, सारी सामग्री उनकी है।

## १६—कालियदमन लीला

भागवत १०वें स्कंध में यह लीला १६,१७ अध्याय का विषय है। मुख्य लीला १६वें अध्याय में है, परन्तु कालिय के गरुड़ के भय से यमुना में चले आने का कारण १७वें अध्याय में दिया गया है।

सूरसागर में दो नागलीलाएँ हैं। एक वर्णनात्मक छन्दों (१७७-१८१) में है, और दूसरी पदों में विषय की दृष्टि से इन लीलाओं में कोई अंतर नहीं है, परन्तु भागवत अध्याय षोडश की सामग्री से इनका मिलान करने पर अंतर स्पष्ट हो जाता है :

(१) सूरदास ने इस प्रसंग में एक मौलिक कल्पना की है भागवत को कालियदमन लीला से कंस का कोई सम्बन्ध नहीं है सूरसागर में नारद जी की योजना की गई है। वे कंस के पास जाते हैं। उससे कालिय की बात कहते हैं और यमुना के जल से कमल मँगवाने के लिए कहते हैं—

> नारद ऋषि नृप सों यह भाषत,
> वैहैं काल तुम्हारे प्रगटे काहे ते तुम उनको राखत
> काली उरग रह्यो यमुना में तहँ ते कमल मँगावहु

दूत पठाव देहु ब्रज ऊपर नंदहि अति डरपावहुँ
यह सुनि के ब्रज लोग डरेंगे वाउ सुनिहै यह बात
पुहुप लेन जैहै नंद ढोटा डगर करै तहाँ घात
यह सुनि कंस बहुत सुख पायो भली कही इह मोंहि

कंस दूत को बुला कर नंद के नाम पत्र लिख देता है। अंतर्यामी कृष्ण यह बात जान लेते हैं और दूत के आने के पहले ही ग्वालों को बन भेज देते हैं। इधर दूत नंद के हाथ में पत्री देता है। उसे पढ़ कर नंद डर जाते हैं। गोपों को बुला कर कहते हैं अब क्या हो? कौन काली के फूल लाये? काली क्या ब्रज को छोड़ देगा? यशोदा कृष्ण को बाहर नहीं जाने देती। कृष्ण यशोदा से पूछते हैं। वह नंद के पास भेज देती हैं। कृष्ण की बातें सुन कर नंद का दु:ख कुछ कम होता है।

कृष्ण बन को चले जाते हैं। श्रीदामा के साथ गेंद खेलते हैं।

(२) भागवत में कृष्ण आप ही कदंब पर चढ़ कर यमुना को काली से मुक्त करने के लिये नीचे दह में कूद पड़ते हैं—

"हे कुरुश्रेष्ठ! वहाँ घाम की तपन से गौवें और गोप बहुत ही प्यासे हुए। निकट शुद्ध जल न पाकर उन्होंने नाग के विष से दूषित कालीदह के जल को पी लिया। उस विषैले जल का स्पर्श करते ही होनहार से मोहित गौवों सहित वे गोप मर कर किनारे पर ही गिर पड़े (अध्याय १५, ४८-४९)। योगेश्वरों के ईश्वर कृष्ण ने अपने सेवकों को मरा हुआ देखकर अपनी अमृतकर्षिणी दृष्टि से उनको उसी समय सजीव कर दिया (वही, ५०)। राजन्, सर्वशक्तिमान भगवान् ने काले सर्प के विष से यमुना के जल को दूषित हुआ देख कर उसको शुद्ध करने का विचार किया और नाग को वहाँ से निकाल दिया (अध्याय १६, १)। दुष्टों का दमन करने के लिए ही जिनका अवतार हुआ है उन कृष्ण-

चंद्र ने देखा कि प्रचण्ड विष का बड़ा ही वेग है, और, उसके कारण नदी का जल दूषित हो गया है। बस उस समय कृष्ण-चन्द्रजी एक बड़े ऊँचे किनारे पर लगे हुए कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गए और वस्त्रसहित कर्धनी को ऊपर से कस कर ताल ठोक कर उस विषैले जल में फाँद पड़े ( वही, ६ )"।

सूर ने इस प्रसङ्ग में भी नई कल्पना की है। श्रीदामा और कृष्ण खेलते हैं। खेलते-खेलते कृष्ण, कमल का ध्यान किए हुए, उसे यमुना के तट पर ले जाते हैं ( आपुन जात कमल के काजहि सखा लिए सङ्ग ग्यालनि )। कृष्ण गेंद चलाते हैं। श्रीदामा अङ्ग बचाता है। गेंद कालीदह में जा पड़ती है। श्रीदामा फेंट पकड़ लेता है—गेंद दो। कृष्ण और श्रीदामा में चल जाती है। अंत में कृष्ण फेंट छुड़ा कर कदम्ब पर चढ़ जाते हैं। लड़के ताली देकर हँसते हैं—कृष्ण भाग गए। श्रीदामा शिकायत लेकर यशोदा के पास चलता है। कृष्ण कहते हैं—लौट आओ, लो गेंद, और पीताम्बर काँछ में बाँध वे यमुना में कूद पड़ते हैं।

( ३ ) भागवत में कृष्ण के कूदते ही झुण्ड में हलचल मच जाती है और सर्पपरिवार क्रोधित होकर विष उगलने लगता है। कृष्ण की जल-क्रीड़ा से कुंड का जल चार सौ हाथ पृथ्वी पर फैल जाता है। शब्द सुनकर काली जानता है कि शत्रु ने उसके भवन पर चढ़ाई की और कृष्ण के निकट आता है। ( वही,६-८ ) सूर सागर में यह अंश इस प्रकार है—

अति कोमल तनु धर्यो कन्हाई
गए तहाँ जहाँ काली सोवत उरगनारि देखत अकुलाई
कह्यो कौन को बालक है तू बार-बार कहि भाग न जाई
छिनकहि में जरि भस्म होयगो जब देखे उनि जागि जँभाई
उरगनारि की बाणी सुनिके आप हँसे मन में मुसकाई
"मोको कंस पठ्यो देखन तू याको अब देहि जगाई"

कहा कंत दिखरावत इनको एक फूँक ही में जरि जाई
पुनि पुनि कहत सूर के प्रभु को तू काहे न जात पराई
भिरकि कै नारि दै गारि गिरधारि तब पूछ पर लात दै अहि जगायो
उठ्यो अकुलाइ डरपाइ खगराइ को देखि बालक गर्व अति बढ़ायो
पूछ राखी जु चाँदि रिसनि काली काँपि देखै सब साँप औसान भूले
पूछ लीन्हों झटकि धरनि सो गहि पटक फू कह्यो लटकि करि क्रोध फूले

इस प्रकार प्रसंग में कोमलता का समावेश हो गया है।

(४) भागवत में सारी लीला जल के ऊपर होती है। ग्वाल-बाल नंद-यशोदा देखते हैं। सूरसागर में कृष्ण और काली का सारा युद्ध-प्रसंग जल के भीतर चलता है। ग्वाल-बाल और यशोदा समझते हैं कि कृष्ण डूब गये। तब कृष्ण अंत में काली पर कमल लादे निकलते हैं।

(५) भागवत स्कं० ११, अध्याय १६ (छंद ३१-५२) में नागपत्नियों की स्तुति है। सूरसागर में इसका अभाव है। केवल काली की स्तुति पर ही संतोष कर लिया गया है।

(६) भागवत में काली के नाचने और उसपर कमल लादने का प्रसंग नहीं है। यह सूर की उपज है।

(७) इस प्रसंग के बाद कृष्ण के कहने पर नंद गोपों के साथ कंस के पास कमल भेज देते हैं और कंस उन्हें किस प्रकार भय और चिंता से स्वीकार करता है, इसका सविस्तार वर्णन है। सूरसागर का यह प्रसंग भागवत म नहीं है।

इस प्रसंग में गोपी-गोप, नंद-यशोदा की वात्सल्य भावना का बड़ा सुन्दर चित्रण हो सका है। भागवत में भी इसका वर्णन है, परन्तु रसपूर्ण चित्रण नहीं है। यशोदा का अशकुन, नंद का अशकुन, कृष्ण के कालीदह में कूदने का समाचार आदि इस रस-स्थापन की सुन्दर भूमिका उपस्थित करते हैं।

हम देखते हैं कि इस प्रसंग (लीला) का मूल कारण ही सूर ने बदल दिया है और इसे कंस से संबंधित कर दिया है।

भागवत में दावानल-पानलीला के दो प्रसंग हैं, एक अध्याय १७ के अंतर्गत (छं० २०-२५) और दूसरा अध्याय एकोनविंश (छं० १-१५) में। दोनों प्रसंगों में से किसी में दावानल का संबंध कंस से स्थापित नहीं किया गया है। सूरसागर में उनका सम्बन्ध कंस से स्थापित किया गया है। कमल-पुष्प पाकर कंस चिंतित हो जाता है। वह दावानल को बुलाता है—

भयो बेहाल नँदलाल के ख्याल यह उरग ते बाँचि फिरि ब्रजहि आयो
कह्यो दावानलहि "देखौं तेरे बलहि, भस्म करि ब्रजबालहि" कहि पढ़ायो
चल्यो रिसपाई तब धाय के ब्रजलोग वनसहित मैं जारि आऊँ
नृपति के ले पान मन कियो अभिमान करत अनुमान चहुँ पास धाऊँ
वृन्दावन आदि ब्रज आदि गोकुल आदि आदि छनमाहि सब अहिर जारौं
चल्यो मग जात कहि बात इतरात अति सूर प्रभु सहित सँहार डारौं

शेष प्रसंग लगभग अध्याय १६ की भाँति है, परन्तु सूर-सागर में दावानल ब्रज पर दौड़ता है और यशोदा आदि की चिन्ता दिखाने का अवसर कवि के हाथ में आ जाता है।

प्रसंग का अंत करते हुए सूरदास ने मौलिकता का पुट एक पद में दे ही दिया है—

चकित देखि यह कहि नर नारी
धरणि अकास बराबरि ज्वाला झपटय लपटि करारी।
नहिं बरख्यो नहिं छिरक्यों काहू कहुँ धौं गयो बिलाइ
अति आघात करत बन भीतर कैसो गयो बुझाइ
तृण की आगि बरत ही बुझि गई हँस हँस कहत गुपाल
सुनहु सूर वह करनि- कहनि यह ऐसे प्रभु के ख्याल

सूरदास ने स्पष्टतः एक ही लीला को सूरसागर में रखा है। भागवत में दावानल प्राकृतिक व्याधि है, सूरसागर में अतिप्राकृत, कंस की सहायक दुष्ट शक्ति है। एक वार नष्ट हो जाने पर उसका पुनः प्रगट होना असंभव है।

## २—लौकिक लीलाएँ

### (१) चीरहरणलीला

चीरहरण की दो लीलाएँ सूरसागर में हैं—एक वर्णनात्मक छंद में (पृ० २००-२०२), दूसरी पदों में (१६६-२००)। दोनों का कथानक एक है। गोपियाँ रुद्र (गौरीपति) को पूजती हैं। सविता की प्रार्थना करती हैं। व्रत रखती हैं। वर के रूप में वह कृष्ण को पति रूप में पाना चाहती हैं। प्रत्येक दिन यमुना में स्नान करती हैं। एक दिन कृष्ण जो अंतर्यामी हैं, वहाँ आते हैं। गोपियाँ तट पर वस्त्र उतार कर नग्न नहा रही हैं। कृष्ण सोलह हजार (षटदश सहस) रूप धर कर प्रत्येक गोपी के पीछे पहुँच जाते हैं और उसकी पीठ मलते हैं। वह चकित होकर पीछे मुड़ती है तो कृष्ण को पाती है! वह उलाहना देती है, चिल्लाती-पुकारती है, परन्तु कृष्ण उसे अंक में भर ही लेते हैं। फिर वस्त्र लेकर भाग जाते हैं। नंद की दुहाई देने पर वस्त्र डाल देते हैं। गोपिया वस्त्र पहन कर यशोदा के पास जाती हैं और उलाहना देती हैं, परन्तु यशोदा उनका उलाहना सुनने के लिये तैयार नहीं। उसके कृष्ण तो अभी वच्चे हैं। गोपियाँ तरुणी हैं। यह छेड़ संभव ही कब है? गोपियाँ लज्जित होकर लौट आती हैं। फिर एक दिन वर्ष भर का व्रत समाप्त होता है। उस दिन कृष्ण गोपियों के वस्त्र उठा कर कदम्ब पर चढ़ जाते हैं और गोपियों को उनके पास नग्न होकर जाना पड़ता है। कृष्ण उनसे हाथ ऊपर उठवा कर नमस्कार लेते हैं और कपड़े देते

हैं। कहते हैं—व्रत सफल हुआ। मैं तुम्हारे साथ शरद रात को रास रचूँगा।

इस प्रसंग का पूर्वार्द्ध भागवत में नहीं है। सूरदास की कल्पना ने उसकी सृष्टि की है। भागवत में कृष्ण प्रत्येक गोपी की पीठ नहीं मलते। उत्तरार्द्ध अधिकांश भागवत की कथा को ही हमारे सामने रखता है, परन्तु सूरदास ने जो परिवर्तन किये हैं वे दृष्टव्य हैं—

(१) उन्होंने लिखा है कि कृष्ण प्रत्येक डार पर हैं (सबै सामने तनु प्रति डारा। यह लीला रचि नंदकुमारा।)

(२) वार्तालाप के अंतर्गत भी कुछ परिवर्तन है, जैसे गोपियाँ कृष्ण से कहती हैं—"आभूषण ले लो, वस्त्र दे दो" आदि। यह सूचित करता है कि सूरदास कभी केवल अनुवाद नहीं करते।

(३) भागवत में आर्यादेवी कात्यायिनी का व्रत है, सूरसागर में "गौरीपति" का व्रत रखा गया है।

(४) भागवत में कृष्ण बालकों के साथ हैं, सूरसागर में अकेले हैं।

(५) वर्णनात्मक छंद में सूर ने बहुत कुछ अपनी ओर से जोड़ा है, जिससे स्पष्ट हैं कि वे भागवत की कथाओं का सार लेकर अपने ढंग पर स्वतंत्र रचना करते थे, अनुवाद नहीं—

प्रेमसहित युवती सब न्हाई। मन मन सविता विनय सुनाई।
मूँदहि नैन ध्यान उर धारे। नंदनंदन पति होय हमारे।
रवि कर विनय शिवहिं मन दीन्हों। हृदय-भाव अवलोकन कीन्हों।
त्रिपुरसदन त्रिपुरारि त्रिलोचन। गौरीपति पशुपति अघमोचन।
गरल अशन कहि भूषन धारी। जटाधरन गंगा शिर प्यारी।
करति विनय यह माँगति तोसों। करहुँ कृपा हँसि के आपुन सों।

हम पावैं सुत यशुमति को पति । इहै देहु करि कृपा देव रति
नित्य नेम करि चलीं कुमारी । एक याम तन को हिय जारी
व्रजललना कह्यो नीर जड़ाई । अति आतुरह्वै तट को धाई
जलतें निकसि तटनि सब आईं । चीर अभूषन तहाँ न पाईं
संकुचि गईं जल भीतर धाई । देखि हँसत तरु चढ़े कन्हाई
बार बार युवती पछिताहीं । सब के बसन अभूषन नाहीं
ऐसो कौन सबै लै भाग्यो । लेतहु ताहि विलम नहि लाग्यो
माघ तुषार युवती अकुलाहीं । ह्याँ कहुँ नंदसुवन तौ नाहीं
हम जानी यह बात बनाई । अंबर हरि लै गए कन्हाई
हौं कहूँ श्याम विनय सुनि लीजै । अंबर देहु कृपा करि जीजै
थर थर अंग कम्पति सुकुमारी । देखि श्याम नहिं सके सँभारी
एहि अंतर प्रभु बचन सुनाए । व्रत को फल दरशन सब पाए

भागवत (१०, २२) में यह सब कुछ नहीं है—

"एक दिन सब ब्रजबालाएँ यमुना के किनारे आई और अन्य दिनों की भाँति किनारे पर सब कपड़े उतार कर जल के भीतर स्नान करने के लिए घुसीं। इन्होंने जल के भीतर कृष्ण की गुणावली गाते हुए भली भाँति प्रसन्न-पूर्वक जलविहार किया ॥७॥ योगीश्वरों के ईश्वर भगवान श्रीकृष्णचंद्र उनके उद्देश्य को जान कर उन्हें कर्म का फल देने के लिए अपने साथी गोपों के साथ उसी स्थान पर पहुँचे एवं उनके वस्त्रों को लेकर पास ही के एक कदम्ब पर चढ़ गये। हँसते हुए बालकों के साथ श्रीकृष्णचंद्र ने हँसते हुए कहा कि "ललनाओ! तुम यहाँ पर आकर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ, डरो नहीं। मैं तुमसे सत्य ही कह रहा हूँ, हँसी नहीं करता, क्योंकि तुम व्रत के कारण निर्बल और शिथिल हो रही हो। मैंने आज तक झूठ नहीं बोला, इस बात को मेरे ये सब साथी गोपगण भली भाँति जानते हैं।

सुन्दरियो ! एक-एक करके या साथ ही आकर तुम अपने वस्त्र ले लो ॥ ८, ९, १०, ११ ॥

## (२) पनघटलीला

दानलीला की भाँति पनघटलीला ( या जमुना-जल-भरन-लीला ) भी सूर की मौलिक कल्पना है। भागवत में इसका किंचित भी इंगित नहीं है। सारी लीला पदों में है।

व्रज-युवतियाँ पानी भरने के लिए यमुना के घाट पर जाती हैं। वहाँ कृष्ण खड़े वंशी बजा रहे हैं। पानी भरना भूल कर उन्हें ही एकटक देखती रह जाती हैं—

हौं गई ही यमुन जल लेन माई हो साँवरे ऐ मोही
सुरङ्ग केसरि खौरि कुसुम की दाम अभिराम कंठ कनक की दुलरी झलकत पीतांबर की खोही। नान्ही नान्हीं बूँदन में ठाढ़ो री बजावै गावै मलार की मीठी तान मैं तो लाल की छवि नेकहु न जोही। सूरश्याम मुरि मुसकानि छबीरी अँखियन में रही तब न जानो हौं को ही।

जब युवतियाँ इस डर से पनघट पर नहीं जातीं तो कृष्ण दूसरी ही चाल चलते हैं—

पनघट रोकेहि रहत कन्हाई
यमुना-जल कोउ भरन न पावत देखत ही फिर जाई
तबहिं श्याम इक बुद्धि उपाई आपुन रहे छुपाई
तब ठाढ़े जे सखा संग के तिनकी लिये बोलाई
बैठारे ग्वालन की द्रुमतर आपुन फिर फिर देखत
बड़ी बार भई कोऊ न आई सूर श्याम मन लेखत
युवति इक आवत देखी श्याम
द्रुम के ओट रहे हरि आपुन यमुनातट गई बाम

जल हलोरि गागरि भरि नागरि जब ही शीश उठायो
घर को चली जाइ ता पाछे शिरते घट ढरकायो
चतुर ग्वालि करि गह्यो श्याम को कनक लकुटिया पाई
औरनि सों कर रहे अचगरी मोंसो लगत कन्हाई
गागरि ले हँसि देत ग्वालि कर रीतो घट नहिं लैहौं
सूर श्याम ह्याँ आनि देहु भरि तबहिं लकुट कर देहौं

घट भरि दियो श्याम उठाइ
नेक तनु की सुधि न ताको चली ब्रज समुहाय
श्यामसुंदर नयन भीतर रहे आनि समाइ
जहाँ तहाँ भरि दृष्टि देखौं तहाँ तहाँ कन्हाइ
उतहि ते इक सखी आई कहति कहा भुलाइ
सूर अबहीं हँसत आई चली कहाँ गँवाइ

अब गई जल भरन अकेली अरी हौं श्याम मोहना घाली री
नंदनन्दन मेरी दृष्टि परे आली फिरि चितवन उर शाली री
कहा री कहौं कछु कहत न आवै लगी मरम की भाली री
सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हों विवश भई हौं कासों कहौं आली री

यह बात सुनकर यह सखी आतुर होकर यमुना से पानी लेने चली जाती है। वहाँ कृष्ण को न देख कर व्याकुल होती है। अंत में उसकी विकलता देख कर कृष्ण आते हैं। उसे अंक में भरते हैं (पृ० १०३, ४७)। जब वह लौटती है तो प्रेम में विभोर हो डगर छोड़ कर चलने लगती है। जो सखियाँ पानी भरने जा रही हैं वे उससे इस विह्वलता का कारण पूछती हैं (४८, ४६)।

नेक न मन ते टरत कन्हाई
यक ऐसेहिं छकि रही श्यामरस तापर इहि यह बात सुनाई
वाको सावधान करि पठ्यो चली आपु जल को अतुराई
मोर मुकुट पीताम्बर काछे देख्यो कुँवर नन्द को जाई

## (३) दानलीला

भागवत, हरिवंश, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण आदि जिन ग्रंथों में गोपालकृष्ण की लीलाएँ वर्णित हैं, उनमें "दानलीला" का प्रसंग नहीं है। अतः स्पष्ट है कि यह सूरदास की सूझ है।

सूरसागर में ४ दानलीलाएँ हैं :

(१) एक दानलीला पृ० २५२-२५४ पर है। यह वर्णनात्मक और कथोपकथनात्मक है—

सुनि तमचुर को शोर घोष की बागरी
नवसत साजि शृँगार चली ब्रन नागरी

नवसत साजि शृँगार अंग पाटंबर सोहै
एक तै एक विचित्र रूप त्रिभुवन मन मोहै
इंदा बिंदा राधिका श्यामा कामा नारि
ललिता अरु चंद्रावली सखिन मध्य सुकुमारि
कोउ दूध कोउ दह्यो मह्यो लै चली सयानी
कोउ मटुकी कोउ पाट भरी नवनीत मथानी
गृह गृहते सब सुन्दरी जुरी जमुनातट जाइ
सबहि हरष मन में कियो उठीं श्याम गुण गाइ
यह सुनि नंदकुमार सैन दै सखा बोलाए
मन हरषित भए आपु जाइ जब ग्वाल जगाए
यह कहिकै तब साँवरे राखे द्रुमनि चढ़ाइ
और सखा कछु संग लै रोकि रहे मग जाइ
एक सखी अवलोकत ही सब सखी बोलाई
यहि बन में इक बार लूटि हम लई कन्हाई
तनक फेर फिरि आइए अपने सुखहि बिलास
यह झगरो सुनि होइगो गोकुल में उपहास

उलटि चली तब सखी तहाँ कोउ जान न पावै
रोकि रहे सब सखा और बातनि बिरमावै
सुबल सखा तब यह कह्यौ तुम ग्वालिनि हरि योग
कैसे बातें दुरति हौं तुम उनके संयोग
किनहुँ भृंग कोउ बेनु कितहु बनपत्र बजाये
छाँड़ि छाँड़ि द्रुम डार कूदि धरनी धँसि धाये
सखिन मध्य इत राधिका सखा मध्य बलवीर
झगरो ठान्यो दान को कालिंदी के तीर
कहत नंदलाडिले
है नारिन दधिदान कान्ह ठाढ़े वृन्दावन
और सखा हरि संग बच्छ चारत अरु गोधन
वै बड़े नंद के लाड़िले तुम वृषभानुकुमारी
दह्यो बह्यो के कारने कतहि बढ़ावति रारि
कहत ब्रजनागरी

इस प्रकार यह कथोपकथन दूर तक चलता है।

दूसरी दानलीला सूरसागर पृ० २३२ के वर्णनात्मक छंद "भक्तन के सुखदायक श्याम" से शुरू होती है और पृ० २३५ तक चलती है। इस लीला में दो छंदों का प्रयोग हुआ है—

गोरस लै निकसीं ब्रजबाला
तहँ तिनि देखे मदनगोपाला
× × ×
देखि सबनि रीझे बनवारी
तब मन में इक बुद्धि बिचारी
अब दधिदान रचौं इक लीला
युवतिन संग करौ रसलीला
सूर श्याम सँग सखन बोलायो
यह लीला कहि सुख उपजायो

सुनत हँसी सुख होहि दान दही को लाग्यो
निशिदिन मथुरा दधि बेचैं श्याम दान अब माँग्यौ
प्रात होत उठि कान्ह टेरि सब सखनि बोलाए
तेइ तेइ लीने साथ मिले जो प्रकृति बनाए
उगरि गए अनजान ही गह्यो जाइ बन घाट
मेंड मेंड तरु के लगे ठाठि ठगन की ठाठ

तीसरी दानलीला पदों में है (पृ० २३७-२५२)

नंदनन्दन इक बुद्धि उपाई
जे जे सखा प्रकृति के जाने ते सब लए बोलाई
सुबल सुदामा श्रीदामा मिलि और महरसुत आये
जो कछु मंत्र हृदय हरि कीन्हौं ग्वालन प्रकट सुनाये
व्रजयुवती नितप्रति दधि बेचन बनि-बनि मथुरा जाति
राधा चंद्रावलि ललितादिक बहु तरुणी इक भाँति
कालिंदी तट कालि प्रात ही द्रुम चढ़ि रहौ लुकाइ
गौरस लै जबहीं सब आवैं मारग रोकहु जाइ
भली बुद्धि इक रची कन्हाई सखनि कह्यो सुख पाई
सूरदास प्रभु प्रीति हृदय की सब मन गए जनाइ

अंत इस प्रकार है। गोपियों के उलाहने पर यशोदा कहती हैं—

कहा करौं तुम बात कहूँ की कहूँ लगावति
तरुणिन इहै सुहात मोहि कैसे यह भावति
बहुत उरहनो मोहि दियो अब जनि ऐसो देहु
तुम तरुणी हरि तरुण नाहि मन अपने गुणि लेहु
निरउत्तर भई ग्वालि बहुरि कहि कछू न आयो
मन उपज्यो बहु लाज गुप्त हरिसों चित लायो
लीला ललित गोपाल की कहत सुनत सुख पाइ
दानचरित सुख देखि के सूरदास बलि जाइ

चौथी दानलीला पृ० २५४-५५ पर इस प्रकार है—

जबहिं कान्ह यह बात सुनाई

इस लीला में दान के लिये वे तर्क-वितर्क उपस्थित नहीं किये गये हैं जो पिछली तीन लीलाओं में हैं। यहाँ कृष्ण युवतियों से अपने अवतार की बात कहते हैं और कहते हैं कि वे शीघ्र ही ब्रज को छोड़ कर मथुरा चले जायेंगे। इस धमकी को सुनकर—

(यह धुनि सुनि) तरुणी बिकलानी
तन मन धन इन पर सब वारहु
जोवनदान देहु रिस टारहु

× × ×

यह निश्चित कर

सबनि धर्‌यो दधि-माखन आगे। लेहु सबै अब बिनही माँगे
तुम रिस करत देखि सुख पावैं। याते बारहिं बार खिझावैं
तनु जोवन धन अर्पन कीन्हों। मन ही मन हरि को सुख दीन्हों
सुभग पात दोना लिये हाथनि। बैठे सखा श्याम एक साथिनि
मोहन खात खवावत नारी। माँगि लेत दधि गिरवरधारी

स्पष्ट है कि पिछली तीन लीलाओं से इस लीला का रूप भिन्न है, न तर्क चलते हैं, न जोवनदान के लिये हाथापाई होती है। युवतियाँ सहज ही दान देना स्वीकार कर लेती हैं। धमकी काम कर जाती है।

पहली तीन लीलाओं की कथा इतनी है। कृष्ण सखाओं से सलाह करते हैं। सब पेड़ों पर चढ़ जाते। जब गोपियाँ सिर पर दधिभाजन लिये निकलती हैं तो कूद पड़ते हैं और "दान" माँगते हैं। गोपियाँ तर्क करती हैं—कैसा दान, पहले कब लगता है? ग्वाल-बाल तर्क करते हैं। संभाषण चलता है।

## (४) रास

रास का वर्णन भागवत एकोनविंश अध्याय से त्रयस्त्रिंशोऽध्याय तक चलता है इन पाँच अध्याओं की सामग्री के आधार पर "अष्टछाप" के कवियों ने "रासपंचाध्यायी" ग्रंथों की रचना की है। सूरसागर में रासलीला दो बार कही गई है। उनमें से एक लीला का कुछ अंश वर्णनात्मक छन्द में हैं, एक पूर्णतः गीतात्मक है।

एक रासलीला इस प्रकार के छन्द में है—

शरद सोहाई आई राति
दह दिशि फूलि रही बन जाति
देखि श्याम अति सुख भयो
शशिगो मंडित यमुनाकूल
बरषत विटप सदा फल-फूल
त्रिविध पवन दुख दवन है
श्री राधा-रवन बजायो बैन
सुनि ध्वनि गोपिन उपज्यो मैन
जहाँ तहाँ ते उठि चलीं
चलत न काहुहि कियो जनाव
हरि प्यारी सों बाढ़्यो भाव
रास रसिक गुण गाइहो

इस लीला में "रास रसिक गुण गाइहो" प्रत्येक छन्द के अन्त में आता है। स्पष्ट है कि इस लीला का रूप गीतात्मक है, वर्णनात्मक नहीं। यह लीला सूरसागर पृ० ३६० से पृ० ३६३ तक चलती है। भागवत की कथा से मिलान करने पर यह स्पष्ट है कि इसमें २६वें अध्याय की ही कथा है अन्य अध्यायों की नहीं; इसमें कृष्ण अन्तर्धान नहीं होते, अतः अन्य अध्यायों की सामग्री इसमें नहीं आती।

दूसरी लीला जो पदों और वर्णनात्मक छन्द में है सूरसागर पृ० ३३८ से पृ० ३६० तक चलती है। इसमें अध्याय २६, ३०, ३२, ३३ लगभग सभी अध्यायों की सामग्री है, केवल ३१वें अध्याय की सामग्री का अभाव है। विषय-विभाजन और तुलना इस प्रकार है

| | |
|---|---|
| २६वें अध्याय की सामग्री | वेणुवादन, गोपियों का आना, कृष्ण-गोपी-संवाद, रास, गर्वोदय, कृष्ण का राधा को लेकर अंतर्धान हो जाना। |
| ३०वें अध्याय की सामग्री | गोपिययों का लताओं आदि से पूछना, चरण-चिह्नों को देखना और उससे अनुमानित करना। राधा का मिलना उसकी दुःख कथा। |
| ३१वें ,, ,, | गोपिका गीत का सूरसागर में 'अभाव है' |
| ३२वें ,, ,, | कृष्ण का प्रगट होना। (भागवत में कृष्ण ने गोपियों को जो उपदेश दिया है उससे सारा अध्याय भरा है। यह उपदेश छन्द २ से लेकर छन्द ३२ तक का विषय है। सूरसागर में छंद १, २ की ही सामग्री है अर्थात् प्रगट होने भर का इंगित मात्र है।) |
| ३३वें अध्याय की सामग्री | रासनृत्य (भागवत में यह अत्यन्त विस्तार से है। सूरसागर में विशेष विस्तार नहीं है) जल-क्रीड़ा निकुञ्ज-विहार परिच्छित के प्रश्न और शुकदेव के उत्तर सूरसागर में नहीं हैं। |

भागवत में रास की रात छः महीने की हो गई है, क्योंकि तारागण सहित चन्द्रमा लीला ही देखते रह गये थे ( छंद १८ ) परन्तु सूरसागर में इस प्रकार का कोई निर्देश नहीं है। संभवतः सूरदास शरदपूर्णिमा की ही एक रात में रास की योजना करते हैं। गोपी-विरहावस्था का वर्णन कुछ वर्णनात्मक है।

परन्तु इस रास के प्रसङ्ग पर भागवतकार की तरह सूरदास ने भी आध्यात्मिक रूपक का आरोप किया है :

(१) भागवतकार ने वंशी पर आध्यात्मिकता का आरोप नहीं किया। वहाँ ब्रजनारियाँ "कामोद्दीपक गान" सुनते ही चल पड़ीं (२६, ४), यह स्पष्ट उल्लेख है। सूर ने वंशी के अलौकिक प्रभाव के संबन्ध में अनेक पद लिख कर उस पर स्पष्ट रूप से आध्यात्मिक आवाहन का आरोप किया है। नंददास ने स्पष्ट ही उसे "योगमाया" कहा है। सूर यद्यपि ऐसा नहीं कहते, परन्तु अर्थ यही है।

(२) कृष्ण गोपियों को पातिव्रतधर्म का उपदेश देते हैं, परन्तु गोपियों का अपने में अनन्य भाव जान कर उनके प्रसन्न करने के लिये रास करते हैं। गोपियाँ सब से प्रिय संबंध को तोड़ कर कृष्ण के पास गईं—यह भी आध्यात्मिक अर्थ रखता है।

(३) एक ही कृष्ण अनेक होकर प्रत्येक गोपी के साथ रास रचते हैं, इसमें एक ही परमात्मा के अनेक जीवात्माओं के सन्निकट होने का आध्यात्मिक अर्थ है।

परन्तु इनके अतिरिक्त भागवत कथित रासपंचाध्यायी में आध्यात्मिक तत्त्व अधिक स्पष्ट नहीं यद्यपि गर्व करने पर कृष्ण का अन्तर्धान और दीनता प्रगट होने पर उपस्थित हो जाने में आध्यात्मिकता का पुट अवश्य है और इस प्रसङ्ग के आध्यात्मिक अर्थ किए जा सकते हैं। परन्तु सूरदास ने इन आध्यात्मिक संदेशों को अधिक

स्पष्ट रूप से रखा है और साथ ही नए रूपकों की भी सृष्टि की है।

(अ) यह रास आध्यात्मिक और अलौकिक है। यह अगम है। इसकी स्थिति भाव में है और भाव में ही इसका आनंद लिया जा सकता है—

रास रस रीति नहिं बरनि आवै
कहाँ वैसी बुद्धि कहाँ वह मन लहौ, कहाँ इह चित्त भ्रम भुलावै
जो कहौं कौन मनै अगम जो कृपा बिन नहीं या रसहि पावै
भाव सौं भजै बिन भाव में ए नहीं भाव ही माँहि भाव यह बसावै
यहै निज मंत्र यह ज्ञान यह ध्यान है दरस दम्पति भजन सार गाऊँ
इहै मांग्यो बार-बार प्रभु सूर के नैन दोउ रहैं अरु नित्य नर देह पाऊँ

(आ) रास गन्धर्व-विवाह है। इसमें जीवात्मा परमात्मा से स्थायी सम्बंध स्थापित करती है। इस प्रकार गोपियों की परकीयता दूर की गई है और रास को अधिक उच्च भूमि पर उठाया गया है—

जाको व्यास बरनत रास
है गंधर्व-विवाह चित्त दै सुनौ बिविध बिलास

(इ) रास के आरम्भ में सूरदास राधाकृष्ण का विवाह करा देते हैं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इससे आध्यात्मिक अर्थ किस प्रकार पुष्ट हुए परन्तु मौलिकता स्पष्ट है। रास के प्रकरण में इसका उल्लेख न करना सूरदास के रासवर्णन की मौलिकता के प्रति अवज्ञा दिखाना होगा। सूरसागर पृ० ३४८-३४६ में इस गंधर्व-विवाह का वर्णन है।

## ५—राधा के मान

सूरसागर में राधा के मान के ४ प्रसंग आते हैं, परन्तु उनमें से प्रत्येक में कोई नवीनता अवश्य है। वे पुनरुक्ति मात्र नहीं हैं।

पहले मान का परिचय हमें रास के बाद होता है। रास की रात के बाद राधा शृंगार करके कृष्ण की प्रतीक्षा में बैठी है। कृष्ण आते हैं।

पिय निरखत प्यारी हँसि दीन्हों
रीझे श्याम अङ्ग-अङ्ग निरखत हँसि नागरि उर लीन्हों
आलिङ्गन दै अधर दशन खंडि कर गहि चिबुक उठावत
नासा सों नासा लै जोरत नैन नैन परसावत
यहि अंतर प्यारी उर निरख्यो झझकि गई तब न्यारी
सूर श्याम मोको दिखरावत उर लाए धरि प्यारी

राधा कृष्ण को उलाहना देती है कि उन्होंने अपने हृदय में दूसरी युवती को स्थान दिया है। कृष्ण चकित हो जाते हैं—

सुनत श्याम चकृत भए बानी
प्यारी पियमुख देखि कछुक हँसि कछुक हृदय रिस मानी
नागरि हँसति हँसति उर छाया तापर अति झहरानी
अधर कंप रिस भौंह मरोर्यो मन ही मन गहरानी
इकटक चितै रही प्रतिबिंबहि सौतिशाल जिय जानी
सूरदास प्रभु तुम बड़भागी बड़भागिनि जेहि आनी

कृष्ण राधा को मनाते हैं परन्तु वह उन्हें दूर ही रहने को कहती है (मोहि छुवो जिनि दूरि रहौ जू। जाको हृदय लगाइ लई है ताकी बाँह गहौ जू ३६५, ६७)। बात केवल प्रतिबिंब की है—

मान कर्यो त्रिय बिनु अपराधहिं
तनु दाहति बिन काज आपनो कहत डरत जिय बादहि
कहा रही मुख मूँद भामिनी मोंहि चूक कछु नाहीं
झझकि रही क्यों चतुर नागरी देखि अपनी छाहीं
३६५, ७३

कृष्ण वृन्दावन लौट जाते हैं। रास्ते में दूती मिलती है। श्याम को कुंज में बैठा आती है। उन्हें आश्वासन दिलाती है कि राधा को

अभी मना लाती हूँ। (अबही लै आवती हौं ताको इहै गई कछु बहुत दई। करि आई हरिकों परतिज्ञा कहा कहै वृषभानु जाई) इसके बाद दूतिका-राधा-प्रसंग चलता है। उधर कृष्ण की यह दशा है—

श्याम नारि के विरह भरे

कबहुँक बैठत कुंज द्रुमनतर कबहुँक रहत खरे
कबहुँक तनु की सुरति बिसारत कबहुँक तेइ गुण गुनि गुनि गावत
कहूँ मुकुट कहुँ मूरलि रही गिरि कहुँ कटि पीत पिछौरी
सूर श्याम ऐसी गति भीतर आई दूतिका दौरी

कि दूतिका आकर राधा के आने का संवाद कहती है (श्याम भुजा गहि दूतिका कहि आतुर बानी। काहे को कहरात हौं मैं राधा आनी), राधा-कृष्ण का मिलन होता है।

दूसरे मान का कारण दूसरा है। कृष्ण दूसरी रात अन्य युवती के यहाँ बिता कर आये हैं—

अनतहि रैनि रहे कहूँ श्याम। भोर भए आएं निज धाम
नागरि सहज रही मन माहीं। नंदसुवन निशि अनत न जाहीं
महरसदन की मेरे गेह। हिरदय है त्रिय इहै सनेह
आये श्याम रही मुख हेरि। मन मन करन लगी अवसेरि
रतिरस चिन्ह नारि के आनि। सूर हँसी राधा पहिचानी
(३७८, ८६)

इस समय राधा खंडिता है। वह प्रिय के अंगों पर नखछत आदि देखती है। इस बार राधा व्यंग का आश्रय लेती है (देखिये पृ० ३७८-७६)। अंत में ब्रजनारियाँ आ जाती हैं। राधा कृष्ण के अंग सैन से युवतियों को दिखाती है, कृष्ण सकुचा जाते हैं, नेत्र मूँद लेते हैं (३८०,१६-१७)। कृष्ण राधा से डर कर लौट आते हैं। राधा मान करने बैठ जाती है। श्याम दूती भेजते हैं (दूती

दई श्याम पठाई ३८१)। फिर दूती-प्रसंग चलता है। अबकी बार कृष्ण को स्वयं आकर मनाना पड़ता है। जब राधा का मानमोचन हो जाता है तो कृष्ण उन्हें कुंज में मिलने की सैन देकर चले जाते हैं। कुंज में राधाकृष्ण का मिलन होता है। तीसरा मानप्रसंग एक नई योजना के साथ आरम्भ होता है—

सखियन सँग लै राधिका निकसी बृज खोरी
चली यमुन अस्नान को प्रातहि उठि गोरी
नन्दसुवन जा गृह बसे बोलन आई
जाइ भई द्वारे खरी तब कढ़े कन्हाई
औचक भेंट भई तहाँ चकृत भए दोऊ
ये इतते वै उतहि तै नहिं जानत कोऊ
फिरी सदन को नागरी सखि निरखत ठाढ़ी
स्नानदान सुधि गई अति रिस तनु बाढ़ी
श्याम रहे मुरझाई कै ठग मूरी खाई
ठाढ़े श्याम जहँ के तहँ रहे सखियन समुझाई
इतने हो कैहै गए गहि बाँह लै आई
सूर प्रभु को ले तहाँ राधा दिखलाई
राधहिं श्याम देखी आइ
महामान दृढ़ाय बैठी चितै काँपै जाइ
रिसहि रिस भई मगन सुन्दरी श्याम अति अकुलात
चकित ह्वै छकि रहे ठाढ़े कहि न आवै बात
देखि व्याकुल नदनंदन सखी करति बिचार
सूर प्रभु दोउ मिलै जैसे करो सोइ उपचार

इस बार सखी मानिनी को मनाती है। उसको असफल देखकर कृष्ण एक और सखी को भेजते हैं (और सखी श्याम पठाई ३२)। वह प्रकृति के उद्दीपक वर्णन करके राधा को कृष्ण के

पास चलने का आग्रह करती है परन्तु राधा मौन है। रात बीत जाती है। कृष्ण कुञ्ज के द्वार पर अपनी मुरली बजाते हैं। अंत में हार कर सखी कृष्ण के पास जाकर मनाने को कहती है (कहत श्याम सो जाइ मनावो मेरे कहे न माने जू ४०७, ५६)। कृष्ण विरह से आकुल हो जाते हैं परन्तु सखी के उद्‌बोधन से तैयार होते हैं। स्वयं दूतीरूप धारण करते हैं—

तब हरि रच्यो दूती रूप

गए जहँ मानिनी राधा त्रिया स्वाँग अनूप
जाइ बैठे कहत मुख यह तू इहाँ बन श्याम
मैं सकुचि तहँ गई नाहीं फिरी कहि पति काम
सहज बातैं कहत मानो अब भई कछु और
तू इहाँ वै वहाँ बैठे रहत एहि ठौर

परन्तु राधा पहचान जाती है (तब ही सूर निरखि नैनन भरि आयो उघरि लाल ललिताम्बर ६६) वह कहती है—'यह चतुराई जानती हूँ' और फिर मान धारण कर लेती है। कृष्ण पछता कर लौट आते हैं और दूती को भेजते हैं। राधाकृष्णदास के संस्करण में इस मान का मोचन नहीं है।

चौथा मानप्रसंग वर्णनात्मक है (४०६-४१२)। यहाँ कृष्ण स्वयं ही दूती का रूप धर कर राधा को मनाते हैं परन्तु नवीनता की दृष्टि से इसकी सामग्री भी द्रष्टव्य है। इस मान के अंत में कृष्ण राधा के सामने मणि रख देते हैं। उसमें युगल दम्पति की छाया पड़ती है। राधा मुसकरा जाती है। मान टूट गया। कृष्ण उसे अपने हाथ से पान देते हैं और राधा कहती है कि कुञ्ज में चलो, मैं पीछे आई। अन्य मानप्रसंगों की भाँति इस मानलीला के बाद भी मिलनकेलि में समाप्ति होती है।

मान के सम्बन्ध में सूरदास का दृष्टिकोण इस चौथे प्रसंग की अंतिम पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है—

विविध विलास-कला रस की विधि उभै अंग परवीनौ
अतिहित मान-मान तजि भामिनी मनमोहन सुख दीनौ
राधा-कृष्ण-केलि कौतूहल श्रवण सुनै जे गावैं
नितके सदा समीप श्याम कितहीं आनंद बढावैं
कबहूँ न जाइ जठर पातक जिहि कों यह लीला भावै
जीवनमुक्त सूर सो जग में अंत परम पद पावै

## ६—खंडिता या कृष्ण-बहुनायकत्व लीला

भागवत, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण और गीतगोविन्दम् में न राधा को खंडिता दिखाया गया है, न गोपियों को। "खंडिता" सूर की सूझ है। यह अवश्य है कि अन्य ग्रंथों में ( जैसे भागवत में ) गोपियों के प्रति कृष्ण की आसक्ति दिखाकर उनपर "बहुनायकत्व" का आरोप किया गया है और इस प्रकार आध्यात्मिक अर्थ की सृष्टि की गई है—एक ही ब्रह्म एक ही समय अनेक जीवात्माओं में निवास करता है—यह रूपक भागवतकार के सन्मुख है। सूरदास ने खंडिताओं की कल्पना करके आध्यात्मिक अर्थ को स्पष्ट करने की चेष्टा की है, यद्यपि उनकी इस कल्पना ने आध्यात्मिक अर्थों को दबा दिया है—

नाना रँग उपजावत श्याम। कोउ रीझति कोउ खीझति बाम
काहू के निशि बसत बनाई। काहू मुख छ्वै आवत जाई
बहुनायक ह्वै बिलसत आप। जाको शिव नहिं पावहि जाप
ताको ब्रजनारी पति जानैं। कोउ आदर कोउ अपमानै
काहू सो कहि आवत साँझ। रहत और नागरि घर माँझ
कबहुँ रैनि सब संग विहात। सुनहु सूर ऐसे नंदतात

अब युवतिन सों प्रकटे श्याम

अरस परस सब दिन यह जानी हरि लुब्धे सबहिन के धाम
जा दिन जाके भवन न आवत सो मन में यह करति विचार
आजु गए औरहि काहू को रिस पावति कहि बड़े लबार
यह लीला हरि के मन भावति खंडित बचन कहत सुख होत
साँझ बोल दे जात सूर प्रभु ताके आवत होत उदोत

कृष्ण ललिता को वचन दे जाते हैं, रहते शीला के घर हैं। रात भर ललिता प्रतीक्षा करती है। प्रातः कृष्ण ललिता के घर आते हैं (३७२-७३) ललिता के घर से लौट रहे हैं कि चन्द्रावली मिलती है। उससे वादा करते हैं कि आज तुम्हारे यहाँ रहेंगे। जाते सुषमा के घर हैं। उधर चन्द्रावली उनका मार्ग देखती रहती है। भोर होने पर श्याम चन्द्रावली के घर आते हैं (३७३-३७८)।

एक दिन सुबह होते हुए कृष्ण राधा के घर आते हैं। कृष्ण या अपने घर रहेंगे या मेरे घर, राधा यह समझती है। उनका मुख देख कर रतिचिह्न पहचान कर, राधा कुण्ठित हो जाती है। अंत में राधा मान करती है (३७८-८१)। मानमोचन के बाद कुञ्ज में केलि चलती है (३८१-८८)।

लौटते समय कृष्ण सुषमा को उसके महलद्वार पर खड़ा देख लेते हैं और ठिठुकते, सकुचते उसके यहाँ पहुँचते हैं (३८८-३९०)। सखियाँ सुनती हैं कि कृष्ण सुषमा के घर आये हैं तो वहाँ दौड़ आती हैं। उधर राधा जब कृष्ण की रात्रि-केलि के बाद घर लौटती है तो उसके घर चन्द्रावली पहुँचती है। पहचान जाती है। कहती है—

आजु अँग शोभा कुछ औरै हरिसँग रैनि महाई हो
अब तौ नहीं दुराव रह्यो कछु कहो साँच हम आगे हो
अधर दशन छत उरननि नखछत पीक पलक दोउ पागे हो

हम जानी तुम कहौ प्रकट करि श्याम संग सुन माने हो
सुनहु सूर हम सखी परस्पर क्यों न रैनि-यश गाने हो

राधा कहती है—"कहाँ?" बात बनाती है, परन्तु सखियाँ तो उसकी छवि पर मोहती हैं अन्त में राधा स्वीकार कर लेती है ( ३६०-६३ )।

उधर कृष्ण कामा के घर रहते हैं, सुबह वृन्दा के घर पहुँचते हैं कृष्ण मनाते हैं परन्तु उनके स्पर्श से वृन्दा और भी छिटक जाती है, मान करती है, पीठ देकर बैठ जाती है। कृष्ण अपनी समझी-बूझी एक सखी के पास जाते हैं, उससे कथा कहते हैं। वह वृन्दा को मनाती है। इधर दूती मना रही है, उधर कृष्ण एक दूती को साथ लेकर स्त्री-वेश बना कर आते हैं और ओट में खड़े होकर बातें सुनते हैं। अवसर पाकर प्रगट होते हैं। युवती का मान टूटता है ( ३६३-६६ )।

वृन्दा के यहाँ रात बिता कर कृष्ण अपने घर लौटते हैं, परन्तु नंद को द्वार पर खड़ा देखते हैं तो सकुचा कर प्रमदा के घर चले जाते हैं। वह पूछती है—आँखें लाल हैं, रात कहाँ रहे हो ? सकुच कर कृष्ण उसे रात में आने का वचन देकर चल देते हैं। प्रमदा तत्परता से तैयारी करती। कृष्ण नहीं आते। कुमुदा के घर रह जाते हैं। उसे रति-सुख देते हैं। उधर प्रमदा के पास एक सखी आती है और उसके उदास रहने का कारण पूछती है। प्रमदा सखी से शिकायत कर रही है कि कृष्ण द्वार पर खड़े दिखलाई पड़ते हैं। सैन देकर सखी को बुलाते हैं, कहते हैं, तू तो जा घर; इसने मान किया है, इसे मनाना है। कृष्ण की विनय पर प्रमदा नहीं मानती तो वे एक चमत्कार करते हैं—प्रमदा के मन में ऐसा विचार होता है कि कृष्ण यहाँ नहीं हैं, यमुना जल भरने चलूँ। वहाँ कृष्ण पाँच वर्ष के बालक के रूप में सामने आते हैं। कहते हैं—श्याम ने भेजा है, बुलाया है। प्रमदा प्रसन्न हो जाती

है। सोचती है यह अच्छा रहा, इसे भवन ले चलूँ। एकांत में सब बात विधि से पूछूँगी। एकांत होते ही कृष्ण तरुण का रूप धर लेते हैं और कुचों पर हाथ धर देते हैं। प्रमदा चतुराई समझ जाती है। उसका मान स्खलित हो जाता है। सुबह को सखी आकर कहती है—यह बात समझ गई? प्रमदा उससे कह देती है—यमुना गई थी, मार्ग में एक बच्चा मिला आदि। सखी हँस कर अपने घर जाती है। उधर कृष्ण राधा के घर पहुँचते हैं। राधा सब देखती है। सब समझती है, परन्तु प्रगट नहीं करती। फिर शपथ करवाती है कि कहीं नहीं जायेंगे—

श्याम सौंह कुच परस कियो
नंदसदन ते अबहीं आवत और त्रियन को नेम लियो
ऐसी शपथ करौ काहे को जो कछु आज करी सो करी
अबजु कालि ते अनत सिधारो तब जानौगे तुमहि हरी

कृष्ण शपथ करते हैं। खंडिता-प्रसंग की समाप्ति इस प्रकार होती है।

× × ×

अब न जान गृह देउँ पियारे जब आये तब भाग
ता दिन ते बृषभानु नंदिनी अनत जान नहि दीन्हें
सूरदास प्रभु प्रीति पुरातन यहि विधि रसवश कीन्हें

( ३९९—४०० )

इन खंडिता-प्रसंगों में अंतर्हित आध्यात्मिक संकेत को सूर ने एक छंद में इस प्रकार लिखा है—

राधिका गेह हरि देह बासी। और त्रिय घरन धर तनु प्रकाशी
ब्रह्म पूरण एक द्वितिय नहिं कोऊ। राधिका सबै हरि सबै कोऊ
दीप से दीप जैसे उजारी। तैसी ही ब्रह्म घर-घर बिहारी

खंडिता वचन हित यह उपाई। कबहुँ कहुँ •जात कहुँ नहि कन्हाई
जनम को सफल हरि इहै पावैं। नारि रस वचन श्रवणन सुनावैं
सूर प्रभु अनत ही गमन कीन्हों। तहाँ नहिं गए जहँ वचन दीन्हों

(३७४)

वास्तव में एक पूर्ण ब्रह्म के सिवा अन्य की उपस्थिति है ही नहीं। राधा और जीवात्माएँ सब उसी पूर्ण परब्रह्म से प्रगट हुई हैं एक दीप से जैसे अनेक दीपक जल जाते हैं वैसे ही परमात्मा जीवात्माओं के रूप में घट-घट में विराजमान हैं। जीवात्मा "अंश" नहीं है, परमात्मा ही है। इस प्रकार प्रत्येक जीवात्मा राधा है, प्रत्येक हरि है, क्योंकि राधा-हरि एक ही हैं। ब्रह्म कहीं आता-जाता नहीं। तात्पर्य, वह निर्गुण, निष्कर्म है; केवल भक्तों का उलाहना सुनने के लिए "खंडिता लीला" करता है, किसी को "प्राप्त" होता है, किसी को "वंचित" रखता है। वैसे न उसे कोई प्राप्त करता है, न कोई उससे वंचित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि खंडिता-प्रसंग में सूरदास ने राधा, चंद्रावली, वृन्दा, कामा, प्रमदा, कुमुदा, ललिता, शीला और सुषमा को विशिष्ट रूप से खंडिता दिखाया है। इन सब प्रसंगों में मूल भावना एक होते हुए भी परिस्थितियों का अंतर रखा गया है, विशेषकर मानमोचन के प्रसंग में।

## ७—हिंडोललीला

अन्य प्रसंगों की भाँति हिंडोल-लीला भी सूरदास की कल्पना है (४१२-४१६)। राधा और गोपबालाएँ तीज के अवसर पर कृष्ण के साथ झूलने की साध रखती हैं। राधा-कृष्ण झूलते हैं। ललिता-विशाखा आदि झुलाती हैं। परन्तु राधा ही नहीं, अन्य

ललनाओं को भी अवसर मिलता है। कृष्ण बारी-बारी से सब के साथ झूलते हैं।

इस लीला का धार्मिक पक्ष सूरदास ने कई प्रकार से स्वयम् उद्घाटित किया है—

(१) कृष्ण के लिए "त्रिभुवनपति", "श्रीपति" आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है और उनकी आज्ञा से विश्वकर्मा हिंडोला बनाते हैं—

सुनि विनंय श्रीपति विहँसि देखे विश्वकर्मा श्रुतिधारि
खचि खंभ कंचन के रचि-रचि राजति मरुवा मयारि
पटली लगे नगनाग बहुरंग बनी डाँड़ी चारि
भँवरा भवे भजि केलि झूले नागर नागरि नार (४१३)

(२) देवता इस लीला को देखते हैं—

तेहि समय सकुच मनोज की छबि जक्यो धनुशर डारि
अमर विमानन सुमन बरषत हरषि सुरसँग नारि
मोहे सुरगण गंधर्व किन्नर रहे लोक बिसारि
सुनि सूर श्याम सुजान सुन्दर सबन के हितकारि (वही)

सूर प्रभु को संग को सुख बरणि कापै जाइ
अमर बर्षत सुमन अंबर विविधि अस्तुति गाइ (४१५)

(३) सूर अपना दृष्टिकोण स्वयं स्पष्ट कर देते हैं—

कहत मन इहै बांछा भए न बन द्रुम डार
देह धरि प्रभु सूर विलसत ब्रह्म पूरण सार

(४) यह लीला नित्य है, गोलोक की लीला का प्रतिबिंब है—

तैसिये यमुना सुभग जहँ रच्यो रंग हिंडोर
तैसिये ब्रजबधू बनि हरि चित्त लोचन कोर
तैसो बन्दा विपिन घन बन कुंज-द्वार विहार
विपुल गोपी विपुल बनरह रवन नंदकुमार

नित्य लीला नित्य आनंद नित्य मंगल गान
सूर सुर मुनि मुखन अस्तुति धन्य गोपी कान्ह

## ८—बसंतलीला, फागुलीला, होलीलीला ४२०, ४४६

उत्कृष्ट काव्यकला, तन्मयता और भक्तिकाव्य की दृष्टि से ये लीलाएँ सूरसागर की सब लीलाओं में श्रेष्ठ हैं। इनमें कवि भक्त और गायक समान रूप से सफल हुआ है। अन्य लीलाओं में रतिभाव की प्रधानता ने कवि के लीलागान में बाधा डाली है। सूरदास स्थान-स्थान पर रूपक की ओर संकेत करते हुए दिखाई देते हैं। आध्यात्मिक संकेत अस्पष्ट है, परन्तु उपस्थित है। इन लीलाओं में इस प्रकार के संकेत नहीं, परन्तु कवि अपने विषय से इतना सुन्दर तादात्म्य स्थापित करने में सफल हुआ है कि पाठक स्वयम् भाव की उच्चतम, अपार्थिवक, और आध्यात्मिक भूमि तक पहुँच जाता है।

यही नहीं, इन लीलाओं में हम पहली बार कवि को प्रकृति के अत्यंत समीप देखते हैं। रास के प्रसंग में प्रकृति वीथिका का काम देती है, मान के प्रसंगों में वह उद्दीपन के रूप में हमारे सामने आती है, परन्तु इन लीलाओं में हम उसे विषय के अंतरंग में प्रविष्ट पाते हैं।

(१) राधे जु आज बरणो बसंत
मनहु मदन विनोद विहरत नागरी नवकंत
मिलत सम्मुख पटल-पाटल भरत मान जुही
बेलि प्रथम समाज कारण मेदिनी कुच गुही
केतकी कुच कलस कंचन गरे कंचुकि कसी
मालती मद चलित लोचन निरखि मृदु मुख हँसी
विरह व्याकुल मेदिनीकुल भई बदन विकास
पवन परिमल सहचरी पिक ज्ञान हृदय हुलास

उत सखा चंपक चतुर अति कुंद मनौ तमाल
मधुप मणि माला मनोहर सूर श्रीगोपाल

(२) ऐसो पत्र पठायो ऋतु वसंत । तजहु मान मानिनि तुरंत
कागज नवदल अंबुज पात । देति कलम मसि भँवर सुगात
लेखनि कामबाण के चाप । लिखि अनंत कसि दीन्हो छाप
मलयाचल पठ्यो विचारि । वाचल पिक नव नेहु नारी

(३) देख्यो वृन्दावन कमल नयन । मनो आयो है मदन गुण गुदर दमन
भए नवद्रुम सुमन अनेक रङ्ग । प्रतिलसित लता संकुलित संग
कर धरे धनुष कटि कसि निसंग । मनौ बने सुभट सजि कवच अंग
जहाँ वान सुमति वह मलय वात । अति राजत रुचिर विलोल पात
धमि धाय धरत मन तुरै गात । गति तेज वसन बाने उड़ात
कोकिल कूजत हैं हंस मोर । रथ शैल शिला पदचर चकोर
वर ध्वजपताक तरतार केरि । निर्भर निसान डफ भँवरि भेरि

(४) समय वसंत विपिन रथ हय गज बदन सुभट नृप फौज पलानी
चहूँ दिशा चाँदनी चमू चलि मनहुँ प्रशंसित पिक वर बानी
बोलत हँसत चपल वंदीगन मनहु धवल सोइ धूर उड़ानी
सोलह कला छपाकर की छवि शोभित छत्र शीश शिरतानी
धीर समीर रटत बन अलिगण मनहु काम कर मुरलि सुठानी
कुसुम शरासन बान विराजत मनहुँ मानगढ़ अनु अनुमानी

(५) कोकिल बोली बन-बन फूले मधुप गुँजारन लागे
सुनि भयो भोर रोर बंदिन को मदन महीपति जागे
तिन दूने अंकुर द्रुम पल्लव जे पहिले दव दागे
मानहु रतिपति रीझि याचकन बरन करन दए बागे

(६) देखत नव ब्रजनाथ आजु अति उपजत है अनुराग
मानहु मदन मंडली रचि पुर बीथिन विपिन विहार
द्रुमगण मध्य पलास मंजरी मुदित अग्नि की नाईं
अपने-अपने भेरनि मानो उनि होरी हरिष लगाईं

केकी काग कपोत और खग करत कुलाहल भारी
मानहु लै लै नाउँ परस्पर देत दिवावत गारी
कुंज कुंज प्रति कोकिल कूजति अति रस विमल बढ़ी
मनु कुलवधू निलज भइ गृह-गृह गावति अटनि चढ़ी
प्रफुलित लता जहाँ जहँ देखत तहाँ-तहाँ अलि जात
मानहु सबहिन में अवलोकत परसत गणिका गात
लीन्हे पुहुप पराग पवन कर क्रीड़त चहु दिसि धाइ
रस अनरस संयोग विरहिनी भरि छाँड़ति मन भाइ
बहु विधि सुमन अनेक रङ्ग छवि उत्तम भाँति धरे
मनु रतिनाथ हाथ सौं सब ही लौलैं रङ्ग भरे

( ७ ) ऋतु वसंत के आगमहि मिलि झूम कहो
सुख सदन मदन को जोर मिलि झूम कहो
कोकिल वचन सोहावनो मिलि झूम कहो
हित गावत चातक मोर मिलि झूम कहो
वृन्दावन तरु माल मिलि०
सब फूलि रही बनराय मिलि०
जहाँ नेवारी सेवती मिलि०
कहु पांडर विपुल गंभीर मिलि०
खूझो मरुवो मोगरी मिलि०
कुल केतकि करनि करील मिलि०
वेलि चमेली माधवी मिलि०
मृदु मंजुल वंजुल माल मिलि०
नव वल्ली रस विलसहीं मिलि०
मनो मुदित मधुप की माल मिलि० (४४४)

## सूरसागर में शृंगार

सूरसागर में शृंगार के आलंबन राधा, गोपियाँ और कृष्ण हैं। पहले हम इन्हीं पर विचार करेंगे।

## १—राधा

सूरसागर पृ० १६१-१६२ में राधा का प्रवेश होता है। कृष्ण चकई लिये खेलने निकलते हैं। वहीं वे राधा को "औचक" ही देखते हैं। वह भी उन्हीं की तरह बालिका है, उन्हीं की तरह सखियों के साथ है।

कृष्ण पूछते हैं—तू कौन है? किसकी बेटी है? ब्रज में तो दीख नहीं पड़ी। राधा कहती है—क्यों आती ब्रज। अपनी पौरी खेलती हूँ। सुनती रहती हूँ नंदढोटा दधि-माखन की चोरी करता रहता है। कृष्ण कहते हैं—तुम्हारा हम क्या चुरा लेंगे? चलो, साथ खेलने चलें। हमारी तुम्हारी जोड़ी रही (१६१, ६३)। प्रेम का उदय होता है। कृष्ण कहते हैं—

खेलन कबहुँ हमारे आवहु नंदसदन ब्रजगाँव
द्वारे आइ टेर मोहि लीजो कान्ह है मेरो नाँउ
जो कहिये घर दूरि तुम्हारो बोलत सुनिए टेर
तुमहि सौंह बृषभानु बबा की प्रातसाँझ एक फेर

(१६१, ६५)

कृष्ण राधा से इशारे में कहते हैं—

खरिक आवहु दोहनी लै यहै मिस छल छल पाइ
गाइ गिनती करन जैहैं मोहिं ले नँदराइ

(१६२, ६५)

राधा अपने घर जाती है, माँ पूछती है, देर कहाँ लगाई, कहती है जरा खरिक देखने गई थी (१६२, ६६)। अत्यन्त व्याकुलता है। माँ से दोहनी माँगती है (१६२, ६७), कहती है—

खरिक माहिं अबहीं ह्वै आई अहिर दुहत अपनी सब गैया
ग्वाल दुहत तब गाइ हमारी जब अपनी दुहि लेत
खरिक मोहिं लगिहै खरिका में तू आवै जनि हेत

(१६२, ६८)

उधर नंद कृष्ण को लिये खरिका में आते हैं (वही)। कृष्ण राधा को खड़ी देख कर बुला लेते हैं; नंद कहते हैं, खेलो, दूर मत जाना, मैं गिनती करता हूँ, पास रहना। देखना, वृषभानु की बेटी, कान्ह को कोई गाय मारे नहीं (१६२, ६६)। अब कृष्ण और राधा अकेले हैं। यहीं से सूरदास शृंङ्गार-सागर में प्रवेश करते हैं। राधा कहती हैं—नंदबवा ने जो कहा वह सुना। अब छोड़ कर गए तो मैंने पकड़ा। अब मैं तुम्हारी बाँह नहीं छोड़ूँगी। श्याम कहते हैं कैसी उपरफट बातें करती है। छोड़। (१६२, ७०) कृष्ण राधा की नीवी पकड़ लेते हैं, कुचों पर हाथ धर देते हैं कि यशोदा आ जाती हैं। चतुर नागर कृष्ण बालक बनकर बात बनाते हैं—देख माँ, गेंद चुरा ली, देती नहीं। राधा कहती है—झकझोरते क्यों हो, तुम ही अनोखे हो। चलो न, बता दूँ कहाँ है गेंद (१६२, ७१)।

कृष्ण राधा को भुलाकर वृन्दावन जाने की बात कहते हैं (१६२, ७२)।

घटा उठती है। नंद डरते हैं। राधा को बुलाकर कहते हैं—कान्ह को घर लिए जा। राधा श्याम साथ-साथ बूँदों में भीगते हुए वन से लौटते हैं—परस्पर सटे-सटे (१६२,७३-७४) मार्ग में रतिक्रीडा करते हैं। राधा मान करती है तो कृष्ण पाँव पकड़ कर मनाते हैं। यहाँ पर सूर पहली बार संभोग-विलास-चित्रण करते हैं (१६३, ७५-८०) कृष्ण राधा को अंक में भर कर पहुँचा आते हैं। अपने घर लौटते हैं। इस समय सूर एक नए प्रसंग की सृष्टि करते हैं। कृष्ण राधा की सारी ओढ़ लेते हैं, राधा पीताम्बर ओढ़ती है। जब घर पहुँचते हैं तो यशोदा कृष्ण से पूछती है—तुम्हारा कपड़ा कहाँ गया, यह किसका है? (१६१, ८१)। कृष्ण बात बनाते हैं—

हौं गोधन ले गयो यमुन-तट तहाँ हती पनिहारी
भार भई सुरभी तब बिडरी मुरली भली सँभारी
हौ ले गयो और काहू की सो लै गई हमारी
( १६३, ८२ )

मैया री मैं जानत वाको
पीत उड़निया जो मेरी लै गई लै आनौं धरि ताको
( १६३, ८३ )

अपनी माया से कृष्ण उस लाल सारी को पीताम्बर बना देते हैं ( १३२, ८३ )। दूसरे पद में कृष्ण यशोदा की बात सुन कर लजा कर भाग जाते हैं ( १६४, ८४ )। राधा जब घर पहुँचती है तो उसकी आकुलता देख कर माता शंकित हो जाती है। यह और की और बात कहती है, कहीं नजर तो नहीं लग गई ( १६४, ८५ )। यहाँ सूर राधा की उक्ति से एक नए प्रसंग की नींव देते हैं—

जननी कहति कहा भयो प्यारी
अबही खरिक गई तू नीके आवत ही भई कौन व्यथा री
एक बिटिनयाँ संग मेरे थी कारे खाई तहाँ री
मो देखत वह परी धरणि गिरि मैं डरपी अपने जिय भारी
श्याम बरण एक ढोठा आयो यह नहिं जानत रहत कहाँ री
कहत सुनौ वह नंद को बारो कछु पढ़िकै वह तुरतहिं झारी
मेरो मन भरि गयो त्रास ते अब नीकों मोहि लागतु भारी
( १६३, ८६ )

मा उसे घर छोड़ कर इधर-उधर खेलने के लिए उलाहना देती है ( १३४, ८७-८८ )। फिर एक दिन राधा कृष्ण के घर आती है—

खेलन के मिस कुँवरि राधिका नन्दमहर के आई हो
सकुच सहित मधुरे करि बोली घर हौ कुंवर कन्हाई हो

सुनत श्याम कोकिलसम बाणी निकसे अति अतुराई हो
माता सों कछु करत कलह हरि सो डारयो बिसराई हो
मैया री तू इनको चीन्हति बारम्बार बताई हो
यमुनातीर काल्हि मैं भूल्यो बाँह पकरि लै आई हो
आवति यहाँ तोहि सकुचति है मैं दै सौंह बुलाई हो
(१६४, ८६)

यशोदा ने कहा—बुला लो। कृष्ण ने राधा का हाथ पकड़ कर उसे मा के पास बिठा दिया (१३४, ९०)। यशोदा और राधा में वार्तालाप होता है। यशोदा कहती है—ब्रज में तो मैंने तुझे देखा नहीं। कहाँ रहती है। मा-बाप कौन है (१६४, ९१-९२) राधा कहती है—मैं वृषभानु महरि की बेटी हूँ। मा तुम्हें जानती है। तुम पहचानती नहीं। यमुना पर कई बार मिली थीं। यशोदा हँस कर बोली—जानती हूँ—बड़ी छिनार है। वृषभानु लंगर है। राधा क्रोध से बिगड़ उठी—बाबा ने तुम्हें कब छेड़ा है? यशोदा हँस कर उसे हृदय से लगा लेती है (१६४, ९२); उसकी चोटी गूँथती है, माँग निकालती है; नई सारी फरिया पहना कर गोद में तिल-चावल-बताशे भरती है (१६५, ९२)। फिर कहती है—जा, श्याम के साथ खेल (१६४, ९४)। कृष्ण कहते हैं—यह राधा सकुचाती है। मैं बुलाता हूँ तो नहीं आती। तुमसे डरती है। (१६५, ९६)। राधा अपने घर लौटती है। (वही)। मा पूछती है—इतनी देर कहाँ लगाई, यह बाल किसने गूँथे हैं, माँग किसने निकाली है? राधा यशोदा की बातें कह सुनाती है। मैया, उन्होंने तुम्हें गाली दी। मैंने यह कहा...। मा बड़ी प्रसन्न होती है। हँस कर यशोदा को गाली देती है (१६५, ९६-९८)। उधर कृष्ण यशोदा से कहते हैं—मेरे खिलौने कहीं राधा न ले जाय, मा। यशोदा कृष्ण के खिलौने, चकडोरी, मुरली आदि सेंतती फिरती है (१६५, ९९-१०१)

एक दिन राधा प्रातः ही उठ कर यशोदा के घर जाने को तैयार होती है। मा पूछती है तो खरिका जाने का बहाना करती है (१६१, ५३)। नंद के घर पहुँचती है। कृष्ण दरवाज़े पर गाय दुह रहे हैं। देख कर यशोदा अंदर बुला लेती है (१६१, ५३-५४)। यशोदा उसे मट्ठा विलोने को कहती है। राधा ग्वाला मटकी में मथानी फेरने लगती है। मन कृष्ण की तरफ़ है। उधर कृष्ण गाय के स्थान पर बृषभ पकड़ लाते हैं (१६२, ५५) यशोदा कहती है—क्यों री, यही मथना सीखा है या मेरे यहाँ आकर भूल गई। राधा कहता है—आता कहाँ है। तुमने सौंह दिला दी थी, इससे आ गई (१६१, ५६)।

उधर सखागण कृष्ण की हँसी उड़ाते हैं जो बछड़े के पैर बाँध कर दूहने बैठे हैं (१६२)। इसके बाद कवि यशोदा के मुँह से राधा को सरस उलाहने दिलाता है (वही)। कभी कृष्ण मुरली लेकर खरिक में चले जाते हैं और राधा-राधा स्वर निकाल कर प्रसन्न होते हैं (वही)। जब राधा जाने लगती है तो यशोदा उसे बार-बार आने को कहती है (१६२-१६३)। सूरदास ने इस सरस लीला की कई छंदों में पुनरुक्ति की है (१६३)। कहीं कृष्ण के बछड़ा दूहने पर राधा हँसती है (१६३, ७१)। कहीं वह कृष्ण से अपनी गायें दुहाती है। दुहते-दुहते कृष्ण एक धार प्यारी राधा के मुँह पर चला देते हैं और राधा दूध में नहा जाती है (१६३, ७२)। इन बातों पर राधा सरस प्रेम भरे उलाहने देती है (१६३, ७३ ७५)

कृष्ण ने राधा की गायें दुह दीं। वह लौटती है परन्तु लौटा नहीं जाता (१६३, ७६ ७७)। अंत में मुरझा कर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती है। सखियाँ सँभाल कर घर लाती हैं। घर जाकर कहती हैं—इसे श्याम भुजंग ने डस लिया। कोई गारुड़ी बुलाओ (१६४, ७८-८२)। गारुड़ी आते हैं। पछता

कर चले जाते हैं। सखियों के कहने पर मा कृष्ण को बुलवाती है। स्वयम् वृषभानु-पत्नी बुलाने जाती है। यशोदा के पाँव पड़ती है। कृष्ण राधा के पास पहुँचते हैं। राधा की मूर्च्छा उतर जाती है। कृष्ण राधा की लहर उतार कर युवतियों पर डाल देते हैं जो उन पर मुग्ध हो जाती हैं (१६४-१६६) और उन्हें पति के रूप में पाने के लिए जप-तप करने लगती हैं। कदाचित् इसी से चीरहरण लीला में राधा नहीं है।

इसके बाद हम राधा पनघटलीला में अन्य सखियों के साथ पाते हैं—

राधा सखियन लई बोलाइ
चलहु यमुना जलहि जैयै चलीं सब सुख पाइ
सबनि एक एक कलश लीन्हों तुरत पहुँचीं जाइ
तहाँ देख्यो श्यामसुन्दर कुँवरि मन हरषाइ
नन्दनन्दन देखि रीझै चितै रहे चित लाइ
सूर प्रभु की प्रिया राधा भरत जल मुसुकाइ
(२०३, ७३)

पनघटलीला में प्रधानता गोपियों की है, राधा का प्रवेश केवल कथा जोड़ने के लिए हुआ है। राधा जल भर कर घर चलती है। सखियाँ उसे घेर कर चलती हैं (२०६, ७४-७६)। कृष्ण मुग्ध हो जाते हैं। आगे-पीछे चलकर सैकड़ों भाव बताते हैं। कभी छाँह छूते हैं। कभी सिर पर पीताम्बर ओढ़ लेते हैं (२०६, ७७), कभी राधा पर पीताम्बर डाल देते हैं, कभी गागरी में कांकरी मारते हैं (२०६, ७८)।

दानलीला प्रसंग में राधा भी है—

ब्रजयुवती नितप्रति दधि बेचन बनि बनि मथुरा जाति
राधा चंद्रावलि ललितादिक बहु तरुणी इक भाँति
(२३६)

परन्तु गोपियों के सामूहिक व्यक्तित्व में राधा जैसे खो गई हो। कथा-प्रसंग में उसका अलग उल्लेख नहीं है।

फिर राधा का स्पष्ट उल्लेख हमें पृ० २६१ पर मिलता है जहाँ कदाचित् राधा मटकी लेकर आती है। कृष्ण-राधा के कुञ्जविहार का प्रथम विस्तृत वर्णन यहाँ मिलता है। वहाँ ही राधा-कृष्ण के पुरात., सनातन सम्बन्ध को कवि राधा-मोहन के संवाद के रूप में खोलता है। सूरसागर के आध्यात्मिक पक्ष के अध्ययन के लिये पृ० २६२ के पद महत्त्वपूर्ण हैं। कृष्ण राधा को अंक में भर कर घर पहुँचाते हैं (२६३)। सखियाँ समझ जाती हैं। पूछती हैं—राधा, इतनी क्यों फूली है? राधा छिपाती है (२६३, ६४)। घर पहुँचती है तो मां पूछती है—कहाँ थी? राधा बात बनाती है (२६४)। सूरदास ने राधा और उसकी मा का इस स्थल पर बड़ा सुन्दर चित्रण किया है (२६५)।

उधर सखियों में कृष्ण-राधा-मिलन की चर्चा चलती है (वहीं)। वे सब मिल कर राधा के पास आ रही हैं। राधा मौन है। कथोपकथन चलता है। सखियाँ पूछती हैं। राधा बातों में भुलाती है। सखियाँ खीझ कर लौट जाती हैं और एकान्त में बैठ कर राधा का चवाव करती हैं। अकस्मात् राधा वहाँ आ जाती है। सखियाँ आदर से बैठाती हैं। बातों-बातों में राधा खिसिया जाती है। सखियाँ मनाती हैं, कहती हैं। अन्त में राधा मान कर कहती है—अच्छा, नहाने चलोगी (२६६-८)। इसके बाद सब नहाने जाती हैं। यमुना पर आकर सब जल में पैठ कर क्रीड़ा करती हैं। सहसा तट पर कृष्ण पहुँच जाते हैं। राधा कृष्ण पर मुग्ध होकर उन्हें एकटक देखने लगती है। सखियाँ कहती हैं—लो, देखे श्याम। राधा समझ गई। कल भुलावा दे दिया था, आज पकड़ी गई। सब लौटती हैं तो सखियाँ पूछती हैं—देखा, कैसे हैं। राधा बड़ी चतुराई से बातें बनाने लगती है

( ग्रीष्मलीला २६८-२७३ )। परन्तु जब यह चर्चा चल रही होती है, तभी मुरली में "राधा-राधा" पुकारते हुए फिर कृष्ण आ जाते हैं। राधा चकित, थकित उन्हें फिर मुग्धवत् देखने लगती है। सखियाँ राधा से कृष्ण के अंग-प्रत्यंग की शोभा का वर्णन करती हैं ( २७३-२८० )। इसके बाद सखियाँ राधा से कहती हैं—तू धन्य है। श्याम को तूने ही पहचाना। राधा गद्-गद् हो जाती है। कहती है—सखियो, तुम तो मेरी बड़ाई करती हो, परन्तु मैं तो उनके एक भी अंग को ठीक-ठीक नहीं देख पाती। सूर के ये पद संसार के प्रेमकाव्य में विरल हैं ( २८१-२८७ )। गोपियाँ जान जाती हैं, सच्चा प्रेम राधा का है। वह स्वयं कृष्ण के रंग में रंग जाती है ( २८७ )।

गोपियाँ राधा से कहती हैं—बहन, तुम्हारी बात और है। बड़े घर की बेटी हो। तुम्हारा नाम कौन धरेगा ? हमें तो कुल की लाज है। राधा मुसका देती है ( २८९ )।

अब कृष्ण किशोर हो गए हैं। राधा यमुना जाती है। मार्ग में कृष्ण मिलते हैं। राधा प्रेम में विभोर है उन्हें पकड़ लेती है। कहती है—अब नहीं छोड़ूँगी। उलाहना देती है। कृष्ण हृदय से लगा लेते हैं। इस अवसर पर राधा "कुल-कानि" को धिक्कारती है और कृष्ण से प्रणय-प्रार्थना करती है। इतने में ग्वाल-बाल आते दिखाई पड़ते हैं और कृष्ण हँसकर उनकी ओर मुड़ते हैं ( २९०-२९१ )।

सखियों ने राधा-कृष्ण का यह एकांत मिलन देख लिया है। पूछती हैं—कान्ह ने तुमसे क्या कहा ? राधा बात बनाती है; परन्तु चलती नहीं। एक सखी कहती है—राधा ने कहा था कृष्ण ने "बेसरी" छीन ली है, देखना तो छीन लेना। कहो राधा, तुमने छीना या नहीं। व्यंग समझ कर राधा कहती है—

मैं यमुना तट जात रही री
ब्रज ते आवत देखि सखिन को इन कारण ह्यां परखि रही री
उतते आइ गए हरि तिरछे मैं तुम ही तन चितै रही री
बूझन लगे कान्ह ग्वालन को तुव तो देखे उनहिं नहीं री
कछु उनसों बोली नहिं सम्मुख नाहि तहाँ कछु बैन कही री
सूर श्याम गए ग्वालिनि टेरत ना जानौ तुम कहा गही री
तुम मेरी बेसरि को धाई

तरुणियाँ राधा का व्यंग सुनकर लजा जाती हैं (२६२, ३३-३४)।

प्रातः कान्ह उठते हैं। बाहर जाने के लिए जल्दी करते हैं। माता चकित होती है। उधर राधा भी बड़ी तड़के उठती है। मा कहती है—राधा इतनी सबेरे कैसे जाग गई? क्यों अकुलाई फिरती है? मा ने देखा—बेटी की ग्रीवा में मोती की माला नहीं है। पूछा, कहाँ गई। राधा को सहारा मिला। कहने लगी—कल यमुमा नहाते समय किसी ने चुरा ली या खो गई। इसी से जल्दी उठी, नींद ही नहीं आई। मा क्रोधित होकर कहती है—जा वहीं, जहाँ माला गवाँ आई। तब ही घर घुसना जब ले आए। अब तुझे एक भी आभूषण नहीं पहनाऊँगी। रहना नंगी। क्यों नहीं जाकर पूछती उनसे जो तेरे साथ नहाने गईं थीं। राधा कहती है—बहुत सी सखियाँ थीं। किसका नाम लूँ! हाँ, याद आई। जहाँ नहा रही थी वहीं देखो एक ब्रजयुवती खड़ी थी। उसी ने ली होगी। चलती हूँ। ब्रज में घर-घर ढूँढ़ते हुए कुछ देर हो जायगी। (२६३-६४)

उधर कृष्ण आकुलता से बाट जोह रहे हैं। कभी आँगने में हैं, कभी द्वार पर। माता चिंता में है, बात क्या है? रोहिणी ग्वालों, हलधर और कृष्ण को बिठा कर कलेऊ खिलाती है। तभी राधा नंद के घर के पिछवाड़े पहुँचती है। झूठे ही चिल्लाती है—ललिता, रुक, कहाँ भागती है। कृष्ण हाथ का कौर डाल

कर दौड़ते हैं। माता के पूछने पर बात बनाते—अभी एक सखा ने कहा था बन में एक गाय व्याह रही है। वह मैं भूल गया था। अब याद आई (२६४-२६५)। कुंज में राधा-मोहन का रति-प्रसंग चलता है (२६५-२६६)। लौट कर कृष्ण माँ से कहते हैं—वह तो मेरी गाय नहीं रही (२६७-७७)। लौटते समय राधा को एक सखी मिलती है। पूछती है—कहो, एक याम बीतते कहाँ से? राधा हार की चोरी की बात कहती है। राधा डरती हुई घर पहुँचती है। यहाँ माता वैसे ही क्षोभ में बैठी है। लड़की सुबह से गई है। रात हो गई। राधा हार निकाल कर देती है 'माँ, बहुत ढूँढ़ा तब मिला' (२६८)।

अब कृष्ण व्याकुल हैं। कभी यमुना तट पर जाते हैं। कभी कदम्ब पर चढ़ कर राधा का मार्ग देखते हैं। कभी वन में जाकर कुंजधाम में प्रतीक्षा करते हैं। अंत में हार कर वृषभानु के घर पहुँचते हैं। राधा प्रसन्न हो जाती है (२६८, ६२)। राधा यमुना जल भरने चलती है। मार्ग में कृष्ण को देख कर संकेत करती है कि घर मिलना (२६८, ८४-६५) स्वयम् घर लौटकर प्रतीक्षा करती है। शृङ्गार करती है। सेज संवारती है। कृष्ण आते हैं। रति-क्रीडा चलती है (२६६-३००) भोर हो जाती है। दोनों अलसा गए हैं। कृष्ण सो जाते हैं। राधा जगाती है (३००, १०) सखियों ने कृष्ण को राधा के घर से निकलते देखा तो चर्चा करने लगीं। उधर राधा को संकोच है—उन्होंने देख अवश्य लिया होगा। अब बात कैसे निभेगी? सखियाँ आती हैं। उसी के सामने उसकी चतुराई का वखान करती हैं। राधा चुप है। सखियाँ इधर-उधर करके वही बात कहती हैं। राधा को जताती हैं कि उन्होंने कृष्ण को देख लिया (३०१-३०२)। राधा कहती है—कहाँ, मैंने तो नहीं देखा। तुम उन्हें देख कैसे लेती हो। मैंने तो आज तक नहीं देखा—

तुम कैसे दरशन पावति री
कैसे श्याम अंग अवलोकति क्यों नैनन को ठहरावति री
कैसे रूप हृदय राखति हौ वै तौ अति झलकावत री
मोको जहाँ मिलत हैं माई तहँ तहँ अति भरमावत री
मैं कबहूँ नीके नहिं देखे कहा कहौं कहत न आवत री
सूर श्याम कैसे तुम देखति मोंहि दरश नहिं द्यावत री

( ३०२, ३४ )

राधा को गर्व हो जाता है। कृष्ण द्वार पर दिखाई पड़ते हैं परन्तु अंतर्धान हो जाते ( ३०३, ४४ )। राधा चकित है—ऐसा क्यों हुआ ? समझ गई, यह गर्व का फल है। श्याम के विरह में बन-बन घूमने लगी।

सखी ने राधा के घर आकर उसकी यह दशा देखी तो पूछने लगी—कल तो और बात थी, आज क्या हुआ ? राधा उसे कृष्ण समझ कर क्षमा-याचना करती है ( ३०४, ५१ )। बाद में जानती है चंद्रावली है तो छिपाती नहीं। कहती है—सखी, कोई उपाय करो। सखी पहले तो उलाहना देती है कि छिपाती क्यों रही। राधा की विरहाकुलता और मिलन-उमंग का कवि ने सुन्दर चित्रण किया है ( ३०५-६ )।

सखी ( ललिता ) राधा को धीरज बँधा कर कृष्ण के पास पहुँचती है और 'एक अद्भुत अनुपम बात सुनाती है' ( ३०७ ) उन्हें कुंज में ले जाती है। राधा-कृष्ण का मिलन होता है। सखियाँ युगल-मिलन का आनंद लेती हैं ( ३०८-३०९ )। इस मिलन-प्रसंग को सूर ने नाना लीलाओं से सरस किया है :

(१) कृष्ण स्वयम् नायिका का वेष धारण करते हैं (३११)।
(२) राधा कृष्ण की वंशी लेकर बजाती है, कृष्ण छीन लेते हैं ( वही )

(३) राधा कृष्ण के वस्त्र पहर लेती है, कृष्ण राधा के। कृष्ण मान करने बैठते हैं। राधा मनाती है ( ३१२ )।

(४) कृष्ण नारी बन जाते हैं। राधा भी नारी-भेष में है। मार्ग में चंद्रावली मिलती है। भ्रम में पड़ जाती है। एक तो राधा है। यह दूसरी श्याम रंग की तरुणी कौन है? राधा से पूछती है। राधा कहती है—एक सम्बन्धी हैं, मथुरा से आई हैं। चंद्रावली कहती है—तो घूँघट क्यों करती है। कृष्ण से घूँघट छोड़ने को कहती है। अंत में कृष्ण हँसकर चंद्रावली को कंठ से लगा लेते हैं। कुंज में सखी के साथ राधाकृष्ण विहार करते हैं (३१३-१५)।

फिर राधा घर पर कृष्ण की प्रतीक्षा में सज कर बैठती है। प्रतिबिंब में अपना दर्पण देखकर उसे कोई दूसरी सुन्दरी समझे हुए है। डर है कि नागर कृष्ण इस सुन्दरी को देख कर कहीं मुग्ध न हो जायें। उससे बातें करने लगती है। कहती है—वे बड़े निठुर हैं। उनसे मन मत लगाना। पीछे आकर छिपे कृष्ण इस अद्‌भुत चरित्र को देखते हैं। अंत में पीछे आकर राधा की आँखें मूँद लेते हैं। इस प्रसंग के बाद जब चंद्रावली सखियों के साथ राधा के घर आती है तो वह उन्हें बड़ी आदर से बिठाती है। उनके पूछने पर सारी कथा भी कह देती है (३१६-३१६)।

इतने में श्याम दिखलाई पड़ते हैं। त्रिभंगी छवि को देख कर सखियों का मन मोहित हो जाता है। इस अवसर पर सखियाँ मन और लोचनों के प्रति अनेक प्रकार की बातें कहती हैं ( ३१६-३३७ )। इसी समय मुरली की ध्वनि सुन पड़ती है। मुरली-प्रसंग चलता है और रासपंचाध्यायी का प्रकरण आरम्भ होता है ( ३३८ )।

रास के अवतरण में कृष्ण राधा के साथ अन्तर्धान हो जाते हैं परन्तु राधा को गर्व होता है और वह कृष्ण के कंधे पर चढ़ना चाहती है। फलस्वरूप कृष्ण अंतर्धान हो जाते हैं और गोपियाँ

राधा को एक पेड़ के नीचे बिलखती पाती हैं। इस प्रसंग में राधा के विषय में कोई नई कल्पना नहीं की गई है। उसे केवल भागवत की "विशेष गोपी" के स्थान पर रख दिया गया है। सूरदास के रास में राधाकृष्ण बीच में हैं, अन्य गोपियाँ उन्हें घेर कर नाच रही हैं (३४५, ३८)। कृष्ण भी षटसहस्र बन कर उनके साथ क्रीड़ा करते हैं (वही)। इस प्रसंग में सूर ने राधाकृष्ण के नृत्य-विलास का जैसा चित्रण किया है, वह मौलिक है। यही नहीं, इस प्रसंग में सूर राधा के साथ कृष्ण का विवाह भी रचा डालते हैं जो भागवत में नहीं है (३४८)। इस विवाह प्रसंग में कंगन खोलना आदि रीतियों और गोपियों के हास-परिहास का वर्णन करके सूरदास एक अभिनव सरस सृष्टि कर सके हैं। सूर ने दूलहे कृष्ण और दुलहिन राधा के बड़े सुन्दर वर्णन किए हैं (३४६)। गोपी-गर्वहरण के बाद जब कृष्ण रास रचते हैं तो राधा को वही प्रधानता मिलती है। फिर जल-क्रीड़ा प्रसंग होता है। इस अवसर पर भी हम राधाकृष्ण का रति-संग्राम देखते हैं।

तदनंतर जब दूसरे दिन कृष्ण राधा के पास जाते हैं तो वह उनके हृदय में अपना प्रतिबिंब देख कर उसे दूसरी स्त्री समझ कर जिसे कृष्ण ने अपने हृदय में स्थान दिया है, मान करती है (६६४)। दूती की सहायता से कृष्ण मानमोचन में सफल होते हैं (६६६-६९)। राधाकृष्ण का कुञ्जविहार चलता है (३७०)। सूर राधाकृष्ण के रतिसंग्राम और सुरतांत छवि का भी चित्रण करते हैं (३७१)।

इसके बाद खंडिता प्रसंग आरम्भ होता है जिसमें सूर कई सखियों को "खंडिता" बनाते हैं। एक बार वह राधा को भी खंडिता चित्रित करते हैं और उससे मान कराते हैं (३८०-३८५) दूती की सहायता से मानमोचन होने पर वही कुञ्ज-विहार।

नहिं बिसरे यह रति ब्रजनाथ ( ४१८, ३६ )।

स्पष्ट है कि सूरदास ने राधा का विरह भी गोपियों के साथ चित्रित किया है—

कहा दिन ऐसे ही जैहैं ( ४८७, ५३ )
गोपाल पावौ धौं केहि देश ( वही, ५४ )
बारक जाइयो मिलि माधौ
का जानै तनु छूटि जाइगो भूल रहै जिम साधौ
पहरेहु नन्दबाबा के आवहु देखि लेंउ पल आधौ
मिलेही मैं विपरीत करी विधि होत दरश को बाधौ

× × ×

सूरदास राधा बिलपति है हरि को रूप अगाधौ (४८७,५८)

"नैनप्रस्थांक" शीर्षक सारे पद सूरदास ने राधा के मुँह से ही कहलाए हैं ( ४८७-४६३ ); ऋतु-उद्दीपन-संबंधी पद (४६३-५०३) भी राधा के ही हैं। इस प्रकार हमें विरहिणी राधा का भी मार्मिक चित्रण मिल जाता है। उद्धव-गोपी-प्रसंग और भ्रमरगीत में राधा नहीं आती। उनमें गोपियों का ही चित्रण है। परन्तु ब्रज से लौट कर उद्धव राधा का जो वर्णन करते हैं, वह इस प्रकार है—

हरि आये सो भली कीन्ही
मोहिं देखत कहि उठी राधिका अंक तिमिर को दीनी
तनु अति कंपति विरह अति व्याकुल उर धुकधुकी खेद कीनी
चलत चरण गहि रही गई गिरि स्वेद सलिमय भीनी
छूटी पट भुज फूटी बलिया टूटी लर फटी कंचुकी झीनी
मानो प्रेम के परम परेवा याही ते पढ़ि लीनी
( ५६४, ४६ )

इसके बाद पदों ( ५०-६२ ) में विरहिणी राधा के कितने ही मार्मिक चित्र उद्धव कृष्ण के सामने उपस्थित करते हैं। भ्रमरगीत

के प्रसंग में राधा भले ही न हो, परन्तु इस प्रकार वीथिका में उसका वड़ा ही प्रभावशाली चित्रण हो जाता है।

महाभारत के वाद कृष्ण द्वारका वसा कर वस जाते हैं। वहाँ एक दिन रूक्मिणि की याद दिलाने पर व्रज के लिये आकुल हो कर चल देते हैं। अव कवि फिर राधा की ओर मुड़ता है। राधा को शकुन होते हैं ( वायस गहगहात शुभ-वाणी विमल पूर्व दिशि वोली। आजु मिलाओ श्याम मनोहर तू सुनु सखी राधिका भोली॥ ५६०,६ )। दो छंदों में राधा सखी का विहार चलता है ( ३८६-७ )। सूर का यह राधाकृष्ण-मिलन-सौंदर्य अद्वितीय है। चन्द्रावली राधा के घर सखियों के साथ आती है और सखियाँ उसके विश्रांत सौन्दर्य को देखकर प्रसन्न होती हैं और उसकी टोह लेती हैं ( ३६०-६१ )। यह सौन्दर्य चित भी अपूर्व है (३६२-३६३) खंडिता-प्रसंग के अंत में कृष्ण राधा के यहाँ आते हैं और वह उनका स्वागत करके उनसे प्रतीज्ञा करा लेती है कि अव कहीं नहीं जायेंगे ( ३६६-४०० )।

सूरदास राधा के एक और मान की कल्पना करते हैं ( ४००-४१२ )। इस मान के मोचन में दूती और कृष्ण को वड़ा प्रयत्न करना पड़ता है।

तदनंतर हिंडोललीला ( ४१२-४१६ ), कुंजलीला ( ४१७-४२० ), वसंतलीला. होली और फगुआ एवं फाग ( ४३०-४४८ ) में हम राधाकृष्ण की अनेक लीलाओं से परिचित होते हैं। इन लीलाओं में गोपियाँ भी भाग लेती हैं परन्तु प्रधानता राधा की है। वही इन लीलाओं की नायिका है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राधा को लेकर सूरदास ने अनेक लीलाएँ कही हैं और संयोग-शृङ्गार के वहुत से अंगों को दृढ़ किया है।

सूरदास ने राधा का विप्रलंभ उतने विशद्‌रूप से नहीं कहा है जितना गोपियों का। कृष्ण के मथुरा जाने पर राधा की जो दशा है उसका वर्णन केवल थोड़े पदों में मिलता है, परन्तु वे पद बड़े मार्मिक हैं (४८६, १३-१७)।

एक पंथी का मार्ग में देख कर राधा बुला लेती है—

कहियो पथिक जाइ हरि सो मेरो मन अटको नैनन के लेखे
इहै दोष दै दै झगरत है तब निरखत मुख लगी क्यों निमेषे
कै तो मोहिं बताय दबकियो लगी पलक जड़ जाके पेखे
ते अब अब इनपै भरि चाहत विधि जो लिखे दरशन सुख रेखे

× × ×

नाथ अनाथन की सुध लीजै
गोपी गाइ ग्वाल गोसुत सब दीन मलीन दिनहि दिन छीजै

× × ×

दिखयति कालिन्दी अति कारी

गोपियाँ जब पंथी के सामने कृष्ण को उपालंभ देती हैं, तब राधा कह उठती है—

सखी री हरि को दोष जनि देहु
ताते मन इतनो दुख पावत मेरोई कपट सनेहू (४८४, ३३)

× × ×

वार्तालाप के रूप में राधा की आकुल प्रतीक्षा का चित्रण करता है (५६१, ८-१०)। कृष्ण आते हैं और रुक्मिणी के कहने पर राधा को दिखाते हैं (५६१, १६)

"हरि जी इतै दिन कहां लगाये
तबहि अवधि मैं कहत न समुझी गनत अचानक आये
भली करी जु अबहिं इन नैनन सुन्दर चरण दिखाये
"जानी कृपा" "राजकाजहुँ हम निमिष नहीं बिसराये"

विरहिन विकल विलोकि सूर प्रभु धार हृदय-हृदय कर लाये
कछु मुसुकाय कह्यो सारथि सुन रथ के तुरङ्ग छुराये

राधा ने आज पहली बार प्रभुता के बीच में कृष्ण को देखा। उसे पिछले सरल दिनों की याद आती है—

हरि जू वै सुख बहुरि कहाँ
यदपि नैन निरखत वह मूरति फिर मन जात तहाँ
मुख मुरली शिर मौर पखौवा गर घुँघचनि को हार
आगे धेनु रेनुतनुमंडित चितवत तिरछी चाल
राति दिवस अंग अग अपने हित हँसि मिलि खेल तरपात
सूर देखि वा प्रभुता उनकी कहि आवै नहिं बात (५६०, १६)

रुक्मिणी राधा से प्रेम कर लेती है। दोनों बहन-बहन की तरह बैठी हैं। कृष्ण आ जाते हैं—

राधा-माधव भेंट भई (५६२, २१)

अत में कृष्ण राधा से कहते हैं—हम तुममें तो कोई अन्तर नहीं और उसे ब्रज भेज देते हैं।

विहँसि कह्यो हम तुम नहि अंतर यह कहि भुज पकड़ी
सूरदास प्रभु राधा माधव ब्रजविहार नित नई-नई
(५६२, २१)

और सखी के प्रति राधे के इस वचन से राधा का चित्रण समाप्त कर देते हैं—

करत कछु नाहीं आज बनी
हरि आए हौं रही ठगी-सी जैसे चित्त धनी
आसन हर्षि हृदय नहि दीन्हों कमल कुटी अपनी
न्यवछावर उर अरघ न अचल जलधारा जो बनी
कँचुकी ते कुच कलश प्रगट ह्वै टूटि न तरक तनी
अब उपजी अति लाज मनहि मन समुझत निज करनी

मुख देखत न्यारे-सी रहिहौं बिनु बुधि मति सजनी
तदपि सूर केरो यह जड़ता मंगल मांझ गनी
(५१२, २२)

## गोपियाँ

गोपी-कृष्ण का शृङ्गार माखन-प्रसंग से शुरू होता है। अभी राधा से कृष्ण का परिचय भी नहीं हुआ है—

मथति ग्वाल हरि देखा जाइ
गये हुते माखन की चोरी देखत छवि रहे नयन लगाइ
डोलत तनु शिर अंचलु उघर्‌यो बेनी पीठि डोलत इहि माइ
बदन इन्दु पय पान करन को मनहुँ उरग उठि लागत धाइ
निरखी श्याम अंग पुनि शोभा भुज भरि धरि लीनौ उर लाइ
चितै रहै युवती हरि को मुख नयन सैन दै चितहिं चुराइ
तन-मन-धन गति-मति बिसराई सुख दीनों कछु माखन खाइ
सूरदास प्रभु रसिक शिरोमनि तुम्हरी लीला को कहै गाइ
(१३५, ६३)

ग्वालिनी यशोदा के पास आकर उलाहना देती है—

सुनहु महरि अपने सुत के गुण कहा कहौं किहि भाँति बनाइ
चोली फारि हार गहि तोर्‌यो इन बातन कहौ कौन छाइ
(१३६, ६६)

कृष्ण सफ़ाई देते हैं—

झूठहि मोहि लगावति ग्वारि
खेलत में मोहिं बोलि लियो है दोउ भुज भरि दीनी अँकवारि
मेरे कर अपने कुच धारति आपुहि चोली फारि (१३६, ६७)

यशोदा ग्वालिनों का विश्वास नहीं करती। कहती है—मेरा कृष्ण तनिक सा तो है (१३६, ६८)। इस प्रसंग में गोपी-यशोदा के कथोपकथन में सूर ने मौलिकता का एक नया क्षेत्र

उपस्थित किया है। वे प्रगट बताते चलते हैं कि वह उलाहना सरस प्रेम-निमंत्रण है—

आवत सूर उलहने के मिसु देखि कुँवर मुसुकानी
( १३६, ७३ )

माखन-चोरी के साथ-साथ यह शृङ्गारलीला भी चलती है। कृष्ण के वार्तालाप में भी सूर उनकी रसज्ञता प्रकट करते हैं—

रह करत भाजे घर की मैं इह पति संग मिलि सोई
सूर वचन सुनि हँसी यशोदा ग्लानि रही मुख जोई
( १३६, २४ )

आगे चलकर सूरदास ऊखल-बंधन की कथा को कृष्ण की इस शृङ्गारलीला से सम्बंधित कर देते हैं। यशोदा गोपियों के उलाहनों से खीझी हुई है। जब कृष्ण बँध जाते हैं तो यही प्रेम-भरी गोपियाँ उन्हें छुड़ाने के लिये यशोदा की अनुनय-विनय करती हैं ( १४० )। इसके बाद मुरलीवादन ( १८६ ) से पहले हमें गोपियों के इस रूप के दर्शन नहीं होते; कृष्ण की अलौकिक लीलाएँ, वात्सल्य और राधा को लेकर शृङ्गार के प्रसंग चलते रहते हैं। मुरलीवादन के साथ ही गोपियों में कामोद्दीपन-सा हो जाता है—

कहाँ कहा अंगन की सुधि बिसर गई
श्याम अधर मृदु सुनत मुरलिका चकृत नारि भई
जो जैसे सो तैसे रहि गई सुख-दुख कह्यो न जाई
चित्र लिखी-सी सूर रहि गई इकटक पल बिसराई
( १८६, ७ )

सुनि ध्वनि चलीं ब्रजनारि
सुत देह गेह बिसारि
• ( १८६, ६ )

इस अवसर पर सूर कृष्ण के सौन्दर्य का आलंबन के रूप में वर्णन करते हैं ( १८६-१८८ )।

गारुड़ी बनकर कृष्ण जब राधा की मूर्च्छा उतार देते हैं तो उसकी लहर तरुणियों पर डालते हैं। वे उन्हें पति रूप में पाने के लिए आकुल हो जाती हैं और शिवव्रत रखने लगती हैं ( १९६,३ )। व्रत की समाप्ति पर कृष्ण जल में अप्रगट ही गोपियों की पीठ मलते हैं (१९७, ७ ) और चीरहरण लीला करते हैं। यह दोनों प्रसङ्ग लीला-मात्र हैं, इनमें शृङ्गार भाव की अधिक पुष्टि नहीं होती।

तदनंतर गोपियों के साथ पनघटलीला ( २०२-२०८ ) और दानलीला ( २३३-२५७ ) के प्रसंग चलते हैं। दानलीला के अंत में गोपियों के उन्माद का विशद चित्रण किया गया है (२५७-२६० ) ग्रीष्मलीला ( २६८-२७० ) के समय फिर सूरदास मुग्ध गोपियों को कृष्ण के सौन्दर्य पर अनुरक्त करते हैं ( २७०-२८० ) लगभग दस पृष्ठ कृष्ण के सौन्दर्य-चित्रण में ही समाप्त कर डालते हैं। इसके बाद राधा के प्रसंगों में गोपियाँ केवल द्रष्टामात्र हैं। वे युगलदम्पति की लीला में रस लेती हैं।

रासपंचाध्यायी ( ३३८-३६४ ) में कृष्ण गोपियों के साथ रास और जलक्रीड़ा करते हैं। गोपियों को जब अहंकार हो जाता है तो अन्तर्धान हो जाते हैं। उनके व्यथित होने पर दर्शन देते हैं। गोपीविरह की कथा में सरलता अवश्य है परन्तु मौलिकता भागवत से विशेष नहीं। खंडिता-समय ( ३७२-४१२ ) में कुछ विशेष गोपियों का व्यक्तित्व अवश्य निखर जाता है, परन्तु उसमें बार-बार वही प्रसंग आते हैं। आने की बात कहकर कृष्ण आते नहीं। रात बीतने पर जब आते हैं तब गोपी विशेष सुरतांत के चिह्न देख कर खंडिता हो जाती है, मान करती है। कृष्ण स्वयं

या दूती की सहायता से मानमोचन करते हैं और संयोग से उसे सुख देते हैं।

हिंडोललीला (४१९-४१६) में भी शृंगार की विशेष पुष्टि नहीं। इसके बाद फिर मुरलीवादन और कृष्ण-सौन्दर्य-चित्रण का अवसर (४२३-३६) आता है। वसंतलीला, होली, फगुआ, फाग में केवल लीलाचित्र हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कृष्ण के मथुरा-गमन तक गोपियों में कोई विशेष व्यक्तित्व का प्रस्फुटन नहीं होता। वे राधाकृष्ण की लीलाओं में सहायक मात्र हैं या उनसे केवल अध्यात्म भाव की पुष्टि में सहायता ली जाती है।

परन्तु अक्रूर के ब्रज में उपस्थित होने के साथ ही गोपियों में व्यक्तित्व का स्फुरन हो जाता है—

चहत चलन श्याम कहत कोउ लेन आयो
नदभवन भनक सुनी कंस कहि पठायो
ब्रज कि नारि गृह बिसारि ब्याकुल उठि धाईं
समाचार बूझन को आतुर है आईं
प्रीति जानि हेतु मानि बिलखि बदन ठाढ़ी
मानों वे अति विचित्र चित्र लिखित काढ़ी
ऐसी गति ठौर-ठौर कहत न बनि आवै
सूर श्याम बिछुरे दुख-विरह काहि भावै
(४५६, ६६)

आगे के कुछ थोड़े ही पदों में सूरदास गोपियों के भाव को अत्यंत ऊँचे स्तर पर पहुँचा सके हैं (४५६, ६७)। गोपियों को सारी रात जागते बीतती है—

सुने हैं श्याम मधुपुरी जात
सकुचति कहि न सकत काहू सों गुप्त हृदय की बात

शंकित वचन अनागत कोऊ कु गई अधरात
नींद न परै घटे नहिं रजनी कब उठि देखौं प्रात
नंदनंदन तो ऐसे लागे ज्यों जल पुरइन पात
सूर श्याम सँग ते बिछुरत है कब ऐहै कुशलात

( ४५६, १६ )

राधा का विस्तार-पूर्वक वर्णन हमें "ब्रह्मवैवर्त्त पुराण" के अन्तर्गत "कृष्ण-जन्मखंड" अध्याय १५ ( राधा-कृष्ण प्रथम मिलन और परिचय ), २७ ( चीरहरण प्रसंग ), २८, ५२, ५६ ५८ ( रास-प्रसंग ), ६६-६८ ( कृष्ण से विदाई ), ६२-६८ ( उद्धव-राधा-प्रसंग ) और १२६-१२७ ( पुनर्मिलन ) में मिलता है। हम देख चुके हैं कि श्री भागवत पुराण में राधा का अस्तित्व नहीं है। सूरसागर में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के इन अध्यायों की सामग्री हमें अवश्य मिलती है, परन्तु अपने ढंग पर। सूर-सागर में राधा-कृष्ण प्रथम मिलन "चकई-भौंरा" खेलते समय हुआ है। यह सूर की अपनी कल्पना है। प्रथम युगलक्रीडा का प्रसंग अध्याय १५ से मिलता है परन्तु उसमें राधा की अलौ-किकता का पता भी नहीं है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण की इस प्रथम मिलन सामग्री से जयदेव परिचित होंगे, क्योंकि मंगलाचरण में उन्होंने प्रेमोदय उसी प्रकार दिखाया है जिस प्रकार ब्रह्मवैवर्त्त में है—"एक बार नंद कृष्ण को लेकर वृन्दावन गये और पास के मांडीरबन में गौचारण करने लगे...इसी समय बालक कृष्ण की अलौकिक शक्तियों द्वारा माया प्रेरित घटना हुई, सारा आकाश भयंकर रूप से घनाच्छादित हो गया और बन भयानक लगने लगा। पश्चात् आँधी उठी और बादल भयंकर शब्द करते हुए कड़कने लगे। थोड़ी देर बाद वर्षा भी होने लगी, मूसलाधार पानी गिरने लगा, और झंझा पेड़ों को बुरी तरह झकझोरने

लगा। नंद इस दृश्य को देख कर डर गये......राधा आई...। नंद ने राधा को बालक कृष्ण को सौंप दिया..."

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में कृष्ण बहुत छोटे बालक हैं और राधा-नंद के सामने तरुणी के रूप में प्रगट होती हैं। नंद उसकी अपार्थिवक सत्ता को पहचान कर (गर्ग ने पहिले ही बता दिया था) उसकी वंदना करते हैं और उसे बालक को सौंप देते हैं। उसे लेकर राधा गोकुल चली जाती है।

मार्ग में कृष्ण की माया से एक विशाल भवन प्रगट होता है। वहाँ कृष्ण तरुण रूप में विराजमान हैं। कृष्ण राधा को अपनी सत्ता के संबंध में परिचय देते हैं। ब्रह्मा प्रगट होकर कृष्ण राधा की स्तुति करते हैं और दोनों को विवाहसूत्र में बाँधते हैं। इसके बाद ब्रह्मा चले जाते हैं और राधाकृष्ण के विलास का वर्णन चलता है। अन्त में कृष्ण बालक हो जाते हैं और राधा यशोदा को बालक सौंप आती है। इस प्रकार की अलौकिक घटनाओं से राधा को मानवता के विकास में अस्वाभाविकता उत्पन्न हो जाती है, अतः सूर ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के चीरहरण-प्रसंग में राधा भी हैं जिनकी आज्ञा से गोपियाँ श्रीकृष्ण को, जो कपड़े लिए हुए हैं, पकड़ने दौड़ती हैं—नंगी! सूर सागर में इसका उल्लेख नहीं। यह प्रसंग सूर ने राधा-कृष्ण-मिलन के पहले ही रख दिया है, अतः राधा की गुञ्जाइश ही नहीं है।

सूर ने कृष्ण-राधा-परिणय की कथा रासप्रसंग में कही है। विवाह गांधर्व है। सखियों द्वारा विवाह सम्पन्न होता है। ब्रह्मा आदि देवता उपस्थित हैं, परन्तु विवाह में भाग नहीं लेते। सखियों द्वारा विवाह सम्पन्न होने से लोकाचारों का सौन्दर्य भी प्रतिष्ठित हो सका है।

रासप्रसंग में सूरदास में भी राधा का कथन है। मूलकथा ब्रह्मवैवर्त्त पुराण की अपेक्षा भागवत से अधिक मिलती है, परंतु कृष्ण के राधा के गर्व पर अन्तर्धान हो जाने आदि का चित्रण ब्रह्मवैवर्त्त पुराण से मिलता है। इस प्रसंग में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का लेखक कृष्ण द्वारा राधा को अनेक पौराणिक कथाओं का परिचय कराता है ( XXIX—LVII )। इस प्रकार कथा-प्रवाह में बाधा होती है।

अक्रूर के मथुरा से गोकुल आने पर ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के लेखक ने राधा की आकुलता और कृष्ण के प्रबोध, बारंबार रति-विलास आदि का वर्णन किया है ( LXVI—LXIII )। सूरसागर में यह सब प्रसंग नहीं है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में कृष्ण राधा को योगसाधन का उपदेश देते हैं, प्रेम-प्राण सूरदास को यह बात वांच्छनीय ही कैसे होती? ब्रह्मवैवर्त्त पुराण ( LXIX ) में राधा कृष्ण के जाने की बात सुन कर मूर्च्छित हो जाती है सखी रत्नमाला के उपचार से ठीक होती है। काव्यशास्त्र से पुष्ट यह चित्रण सुन्दर हुआ है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण ( LXXI ) में कृष्ण राधा और गोपियों को सोता हुआ छोड़ कर चलने की तैयारी करते हैं और उन्हें यों ही छोड़ कर नंद-यशोदादि का आलिंगन करके विदा होते हैं। विद्यापति के कुछ पदों में इस प्रसंग का आभास है। सूर में यह कथा इस तरह नहीं। कृष्ण गोपियों के सम्मुख ही विदा होते हैं। हाँ, राधा वहाँ नहीं है, कृष्ण के जाने पर आती है।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में कृष्ण नंद को कुछ दिनों के लिये रोक लेते हैं ( XCI )। वे उद्धव को यह समाचार लेकर मथुरा से गोकुल भेजते हैं कि नंद को देवकी ने कुछ दिनों के लिये रोक लिया है। उद्धव के पास योग का कोई संदेश नहीं है, न कृष्ण का यह मन्तव्य है जो सूरदास और भागवत में स्पष्ट है। नंद

भी लौट आये हैं। इस प्रकार पुराण में उद्धव के व्रजागमन का कारण ही दूसरा है। उद्धव का पहले यशोदा के यहाँ स्वागत होता है परन्तु बाद को वे राधा के यहाँ चले जाते हैं ( XCII ५६ )। विरहिणी राधा का जो चित्र ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में है, वह सूर के चित्र से मिल जाता है यद्यपि सूर का चित्रण अधिक उत्कृष्ट है। सारे उद्धव-राधा-प्रसंग में राधा के विरह-दुःख का सुन्दर चित्रण है, परन्तु यहाँ उद्धव राधा की विनती करते हैं और चलते समय राधा उन्हें उपदेश देती हैं ( XCV, XCVI ) यहाँ उद्धव कहते हैं—नन्द के साथ कृष्ण लौट आयेंगे ( XCIII ३५-४६, ७१-८२ )। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में राधा पग-पग पर मूर्च्छित होती हैं, परन्तु सूर की राधा की कल्पना अधिक संयत है। पुराण की राधा को इस दुर्बलता के कारण सखियों द्वारा उलाहना सुनना पड़ता है ( CXIV, १२-३० )।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का लेखक विरहिणी राधा से यशोदा को ज्ञानेपदेश दिलाता है ( CXI ) फिर ( CXXVI ) राधा-कृष्ण का मिलन होता है परन्तु सूर के मिलन से भिन्न परिस्थिति में। कृष्ण माता-पिता की आज्ञा लेकर राधा के भवन में जाते हैं। कृष्ण रथ पर नहीं हैं, न रुक्मिणी साथ है। कृष्ण राधा को ज्ञानेपदेश देते हैं, अपनी-उसकी प्रकृति बताते हैं ( ७८-१०५ ) राधाकृष्ण का विहार होता है और राधा के कहने पर कृष्ण रथ पर चढ़ कर अनेक दूरस्थ स्थानों में जाते हैं और कुञ्जों-वनों में उसके साथ विहार करते हैं ( CXXVII, १-२५ )। फिर वे वृन्दावन लौट आते हैं और बालक होकर नन्द-यशोदा से मिलते हैं ( २६-६१ ) वे ११ वर्ष के बालक होकर माँ की गोदी में चढ़े हुए हैं—इस समय वे उसी आयु के हैं जिस आयु में वे मथुरा गए थे ( ३२-४१ )। तदनन्तर कृष्ण नन्द-यशोदा, गोपीग्वाल और राधा से भावी कलि के उत्पातों

का वर्णन करते हैं ( CXXVIII )। गोलोक से रथ आता है और सब चढ़ कर चले जाते हैं ( ३५-५३ )। कृष्ण इस जगत् के वृन्दावन में कृपादृष्टि से फिर गोपों-ग्वालों की उत्पत्ति करते हैं और उन्हें निरन्तर वहाँ का अधिवास देते हैं ( CXXIX )। ब्रह्मा के शाप से कृष्ण की द्वारका उजड़ जाती है और वे (कृष्ण) स्वयम् वृन्दावन के कदम्ब के नीचे की एक मूर्ति में समा जाते हैं ( वहीं )।

यह स्पष्ट है कि इस पुराण का मुख्य विषय राधा-कृष्ण लीला है। गोपियों का प्रेमप्रसंग रास के प्रकरण में मिलता है। अतः इसमें गोपीविरह, गोपीलगन और भ्रमरगीत जैसे प्रसंग नहीं हैं। वास्तव में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का आधारक तो भागवत है जैसा कृष्ण की ब्रज की अलौकिक कथाओं का मिलान करने पर स्पष्ट हो जाता है, परन्तु राधा की महत्ता और उसकी प्रतिष्ठा के उत्साह ने पुराण की कथाओं को दूसरा ही रूप दे दिया है। भागवत से भिन्नता इस प्रकार है—

(१) कृष्ण "महाविष्णु" से भी ऊपर हैं परन्तु भागवत के निर्गुण ब्रह्म के सगुण रूप नहीं हैं।

(२) वे चतुर्भुज रूप से महाविष्णु हैं, लक्ष्मी ( कमला ) चरणसेविका है, द्विभुज रूप से गोलोक के कृष्ण हैं जिनकी पत्नी राधा है, उसी के साथ वे अवतार लेते हैं। गोलोक में भी वृन्दावन, रासमण्डल आदि उसी प्रकार हैं जिस प्रकार पृथ्वी पर। वह ऐश्वर्य से पूर्ण है, अत: पृथ्वी के वृन्दावन और रासमण्डल में भी पुराण-लेखक वृन्दावन के ऐश्वर्य रूप की कल्पना करता है और विश्वकर्मा से उसका निर्माण कराता है।

(३) कोई रूपक नहीं है।

(४) कथा में राधाकृष्ण के गर्हित सम्भोगविलास के कितने ही प्रसंग हैं। दोनों बार-बार "कोककलाविशारद" कहे गए हैं।

सूरसागर में कृष्ण के लिये यही विशेषण अनेक बार आया है, अतः प्रभाव लक्षित है।

(५) अवतार का कारण श्रीदामा का गोलोक की अधिष्ठात्री देवी राधा को दिया हुआ शाप है कृष्ण राधा को संभोगविलास से प्रसन्न करने के लिये ही जन्म लेते हैं।

(६) कितनी ही लीलाओं में थोड़ा बहुत अंतर है। यहाँ प्रलेव धेनु के रूप में आता है (भागवत से तुलना कीजिये)। सारे असुर मूलत. वैष्णव सिद्ध किये गए हैं। कुछ लीलाएँ भी नहीं हैं। रासमण्डल की कल्पना ही अद्भुत है। वह एक भवन है जहाँ ऐश्वर्य की सामग्री से भरे अनेक प्रकोष्ठ हैं जहाँ कृष्ण-गोपियों की रतिक्रीड़ा चलती है, नृत्य-गान नहीं (भागवत से तुलना कीजिये)।

संक्षेप में, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में राधा के संबन्ध में नए प्रसंग गढ़ गये हैं। हमारा वृन्दावन गोलोक के वृन्दावन की प्रतिच्छाया है—यह दिखाने के लिये आरंभ में गोलोक के राधाकृष्ण-विहार का वर्णन है और अवतार का कारण भी नया कल्पित किया गया है, यद्यपि पौराणिक कारण भी आगे के अन्य अध्यायों में है। गोलोक के ऐश्वर्य के जोड़ का ही ऐश्वर्य कृष्ण के वृन्दावन में प्रतिष्ठित करने की चेष्टा में लेखक ने रास आदि के संबन्ध में भी नई उद्भावनाएँ की हैं। वास्तव में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का नवीन कृष्णचरित्र गोलोक की राधाकृष्ण क्रीड़ाओं की बार-बार पुनरुक्ति मात्र है, परन्तु उसमें प्रसंगवश विरहिणी राधा का मार्मिक चित्रण हो सका है।

यह स्पष्ट है कि सूरदास इस पुराण से परिचित हैं। तीन-चार महत्त्वपूर्ण स्थल उन्होंने अपना लिए हैं—

(१) राधाकृष्ण का प्रथम परिचय, (२) रास में राधा का स्पष्ट उल्लेख, (३) विरहिणी राधा, (४) राधाकृष्ण का पुनर्मिलन।

परन्तु प्रत्येक प्रसंग में सूर ने नवीनता रखी है। यह होने पर भी सूर के तरुण राधाकृष्ण मूलतः ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के राधाकृष्ण हैं। वे दोनों कामकलाकोविद, चतुर नागर-नागरी हैं। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण जैसे स्थूल संयोग के चित्र सूर में बार-बार नहीं आये हैं, न उतने गर्हित हैं, परन्तु हैं कितने ही अवश्य। सूरसागर में प्रतीक बना कर उनपर आध्यात्मिकता का आरोप भले ही कर दिया गया हो, यह स्पष्ट है कि सूर के ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के परिचय ने उन्हें राधाकृष्ण के प्रेमप्रसंग के चित्रण में बड़ी सहायता दी है, परन्तु सूर की मौलिकता ने उस कथा में नये अर्थ उत्पन्न किए हैं और उसका अत्यंत मानवीय विकास किया है एवं अलौकिकता से उसे युक्त किया है।

———

४

## सूर की विनय-भावना

विनय के आधार की आवश्यकता है, जिसके लिये विनय की जाये। सूर ने आरम्भ में ही इस विषय में अपना मत निश्चित किया है। उनके विनय का आलम्बन निर्गुण का सगुण अवतार (कृष्ण) है। 'अविगत' निर्गुण के प्रति विनय की भावना रहस्यमूलक, अस्पष्ट और भ्रामक हो सकती है, अतः सूरदास ने अपना आधार "सगुन" माना—

अविगत गति कछु कहत न आवै
ज्यौं गूँगै मीठे फल कौ रस अंतरगत हीं भावै
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै
मन-बानी कौ अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति बिनु निरालंब कित धावै
सब बिधि अगम विचारिहि तातैं सूर सगुन पद गावै

अब प्रश्न यह है कि वह "सगुन" रूप कौन-सा है जिसके प्रति सूर की विनय-भावना परिचालित है। वह है "वासुदेव" "जदुनाथ गुसाई"—

वासुदेव की बड़ी बड़ाई
× × ×
बिनु दीन्हें ही देत सूर प्रभु ऐसे हैं जदुनाथ गुसाई

इन्हीं के संबन्ध में सूर फिर कहते हैं—

वेद उपनिषद जासु कौं निरगुनहीं बतावै
सोई सगुन सूर नंद की दाँवरि बँधावै

परन्तु सूरदास इस बात में भी निश्चित हैं कि वास्तव में सगुन रूप कितने ही हैं, सब एक ही हैं। निर्गुण के सगुण रूप में अवतार लेने के दो कारण हैं—

१—ब्रह्म की लीला।

२—भक्तों को आनन्द देना या भक्त का दुःख त्राण करना। इस प्रकार भक्ति के आलम्बन के निश्चित हो जाने पर सूरदास अपनी विनय आरम्भ करते हैं।

पहले वे भगवान के स्वभाव का वर्णन करते हैं क्योंकि भक्त को उसी स्वभाव का आश्रय लेना है। यह स्वभाव ही उन्हें विशेष कर्म की ओर प्रेरित करता है। परन्तु न भगवान की "करनी" की गति जानी जा सकती है, न उनके स्वभाव की।[1]

इस स्वभाव के अंग हैं—

( १ ) भक्तवत्सलता[2]
( २ ) भक्त की ढिठाई का सहना[3]
( ३ ) भक्त का कष्टहरण[4]
( ४ ) शरणागतवत्सलता[5]
( ५ ) दीनग्राहकता[6]

---

१( १ ) करनी करुनासिन्धु की मुख कहत न आवै
( २ ) काहू के कुल तन न विचारत
अविगत की गति कहि न परति है, व्याध-अजामिल तारत
२ हरि सौं ठाकुर और न जन को
३ बासुदेव की बड़ी बड़ाई
४ ऐसी को करि अरु भक्त काजैं
५ जब जब दीनन कठिन परी
६ श्याम गरीबनिहूँ के गाहक

( ६ ) गाढ़े दिन की मित्रता[७]

( ७ ) अभयदान[८]

इस स्वभाव के विश्वास को लेकर ही भक्त आगे बढ़ता है। वह सासांरिक ऐश्वर्य को तिलांजलि दे देता है और भगवान की सम्पत्ति में ही अपने को धनी मानता है—

कहा कमी जाके राम धनी

मनसा-नाथ मनोरथ पूरन सुखनिधान जाकी मौज घनी
अर्थ, धर्म अरु काम, मोक्षफल, चारि पदारथ देत गनी
इन्द्र समान हैं जाके सेवक, नर त्रपुरे की कहा गनी
कहा कृपिन की माया गनियै करत फिरत अपनी-अपनी
खाइ न सकै खरचि नहिं जानै ज्यौं भुवंग-सिर रहत मनी
आनँद मगन रामगुन गावे, दुख संताप की काटि तनी
सूर कहत जे भजत राम कौं तिनसौं हरिसौं सदा बनी

यही नहीं, वह आगे बढ़ कर अपने को महाराजों से भी बड़ा मानता है, भगवान का ऐश्वर्य ही उसका ऐश्वर्य है—

हरि के जन की अति ठकुराई

महाराज दिविराज, राजमुनि, देखत रहे लजाई
निरभय देह, राजगढ़ ताकौ, लोक मनन-उत्साह
काम क्रोध, मद, लोभ, मोह ये भए चोर तैं साहु
दृढ़ विश्वास कियौ सिंहासन, तापर बैठे भूप
हरिजस बिमल छत्र सिर ऊपर, राजत परम अनूप
हरि-पद-पंकज पियौ प्रेमरस, ताही कें रँग रातौ
मंत्री ज्ञान न औसर पावे, कहत बात सकुचातौ
अर्थ काम दोउ रहैं दुवारै, धर्म मोक्ष सिर नावैं
बुद्धि-विवेक विचित्र पौरिया समय न कबहूँ पावैं

---

७ गोविन्द गाढ़े दिन के मीत

८ जाको हरि अंगीकार कियौ

अष्ट महासिधि द्वारैं ठाढ़ी, कर जोरे, डर लीन्हे
छरीदार वैराग बिनोदी, झिरकि बाहिरैं कीन्हे
माया, काल कछू नहिं व्यापै यह रसरीति जो जानै
सूरदास यह सकल समग्री प्रभु-प्रताप पहिचानै

यहाँ तक मन को विश्वस्त करने के बाद भक्त विनय की भूमि में उतरता है। वह पहले भगवान से माया और तृष्णा के परिहार की प्रार्थना करता है। वास्तव में भगवद्भक्ति के ये दोनों प्रबल शत्रु हैं। सारे संसार का झमेला इन्हीं के कारण है और सच तो यह है कि ये दोनों एक हैं—माया की ओर मन का निरन्तर आकर्षित होना ही तृष्णा है। जो भगवान के लिये माया है, कौतुक है, वही भक्त के लिए तृष्णा का कारण बनती है। सूरदास ने माया का वर्णन कई रूपकों में किया है—

( १ ) माया नटी लकुटी कर लीन्हे
( २ ) सुन्दरी ( तुम्हारी माया महाप्रबल जिहि सब बस कीन्हौ हो )
( ३ ) माधौ जू यह मेरी इक गाइ

पहले दूसरे पदों में माया की सुन्दरता का वर्णन है, तीसरे पद में उसके उत्पात का। यह माया का अविद्या रूप है। इस रूप में जहाँ यह आकर्षक है, वहाँ मन की शांति का हरण कर सुख सम्पत्ति को नष्ट कर देता है। इस माया के अंग हैं, कामिनी और कंचन ( धन अथवा ऐश्वर्य मद )—

नारद मगन भए माया मैं, ज्ञान-बुद्धि-बल खोयौ
साठि पुत्र और द्वादस कन्या, कंठ लगाए जोयौ
संकर को मन हरयो कामिनी, सेज छाँड़ि भु सोयौ
चारु मोहिनी आइ आँध कियौ, तब नखसिख तें रोयौ
सौ भैया दुरजोधन राजा पल में गरद समोयौ
सूरदास कंचन अरु काँचहि, एकहिं धगा पिरोयौ

इस माया-नटी के काम हैं भगवान से विमुखता उत्पन्न करना, मन में अभिलाषाओं की तरंग उठा कर मिथ्या से परिचय कराना और उसके प्रति आकर्षण ( लोभ ) उत्पन्न करना। इस प्रकार "भ्रम" की उत्पन्न ही दुःख का कारण है। इस भ्रम के मूल में है माया। इसी भ्रम के कारण मन सारवस्तु ( भगवान ) से डरता है। कालांतर में इसी भ्रम के कारण हिंसा, मद, ममता, आशा, निद्रा[9], काम, तृष्णा[10], परनिन्दा, शरीरसेवा, वाह्याडम्बर, विषय-मुखता[11], राजस[12], अवहित वादविवाद[13] का जन्म होता है। आशा और तृष्णा का सूरदास ने विस्तृत वर्णन किया है—

यह आशा पापनी यहै

तजि सेवा वैकुण्ठनाथ की, नीच नरनि कै संग रहै
जिनकौ मुख देखत दुख उपजत, तिनकौं राजा राम कहै
धन-मद-मूढनि, अभिमानिनि मिलि लोभ लिये दुर्वचन सहै

माधौ, नेकु' हटकौ गाइ

भ्रमत निसि-वासर अपथ-पथ, अगह गहि नहिं जाइ
छुधित अति न अघात कबहूँ निगम द्रुम दलि खाइ
अष्ट दस-घट नीर अँचवति तृषा तउ न बुझाइ

---

९ अब हौं माया हाथ बिकानौ
हिंसा-मद-ममता-रस भुल्यौ, आसाहीं लपटानौ
याही करत अधीन भयौ हौं, निद्रा अति न अघानौ

१० भ्रम-मद-मत्त काम-तृष्ना-रस-बेग न क्रमैं गह्यौ

११ परनिन्दा रसना के रस की केतिक जनम बिगोए
तेल लगाइ कियो रुचि-मर्दन बस्तर मलि मलि धोए
तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै, विषयिनि के मुख जोए

१२ इहिं राजस को न बिगोयो

१३ फिरि फिरि ऐसोई है करत
अबिहित बाद-बिवाद सकल मत इन लगि भेष धरत

छहौं रस जौ धरौं आगैं, तउ न गंध सुहाइ
और अहित अभच्छ भच्छति, कहा बरनि न जाइ
ब्योम, घर, नद, सैल, कानन इते चरि न अघाइ
नील खुर अरु अरुन लोचन, रुते सींग सुहाइ
भुवन चौदह खुरनि खूँदति सुधौं कहाँ समाइ
ढीठ, निठुर, न डरत काहूँ, त्रिगुन है समुहाइ
हौं खल-बल दनुज-मानव-सुरनि सीस चढ़ाइ
रचि विरंचि मुख-भौहँ-छवि ले चलति चित्त चुराइ
नारदादि सुकादि मुनिगन थके करत उपाइ
ताहि कहु कैसैं कृपानिधि सकत सूर चराइ

परन्तु जहाँ भक्त का अंतिम आश्रय भगवान का अनुग्रह ही है, क्योंकि वही माया और तृष्णा से उसका त्राण करेगा, वहाँ उसे भी स्वयं अपनी ओर से प्रयत्नशील होना होगा। इसलिये भक्त का प्रधान प्रयत्न अपनी आत्म-प्रवञ्चना, आत्मशुद्धि और आत्म-प्रवोध ही होता है। वह सबसे प्रथम मन को भाँति भाँति के संबोधन करके उसे वस्तुस्थिति का परिचय कराता है—

(१) रेमन जग पर जानि ठगायो
धन-मद, कुल-मद, तरुनीकैं मद, भव-मद, हरि बिसरायौ
(२) रे मन छाँडि विषय कौ रचिबौ
(३) रे मन गोबिन्द के ह्वै रहियै
(४) रे मन अजहूँ क्यों न सम्हारै
(५) नर कै जनम पाइ कह कीन्हौ

कवि मन को विश्वास दिलाता है कि वह मूल रूप से सात्विकी है, वस्तुतः उसकी प्रवृत्ति बदली नहीं है, उसे केवल सांसारिकता से ऊपर उठकर भगवान की ओर उन्मुख होना भर है। वस्तुतः मन को अपना रूप पहचानना है—

रे मन, आपु कौं पहिचानि
सब जनम तैं भ्रमत खोयौ, अजहुँ तौ कछु जानि
ज्यौं मृगा कस्तूरि भूलै सु तौ ताकैं पास
भ्रमत हीं वह दौरि ढूँढ़ै, जबहिं पावै बास
भरमही बलवंत सब में ईसहूँ कैं आइ
जब भगत भगवंत चीन्है, भरम मन तैं जाइ
सलिल लौं सब रङ्ग तजिकै, एक रङ्ग मिलाइ
सूर जो द्वै रङ्ग त्यागै, यहै भक्त-सुभाइ

इस मन की स्वच्छता के लिए हरिकृपा तो वांच्छित है ही, प्रथम और अंतिम साधन वही है, परन्तु स्वयं भक्त क्या करे ? सूरदास भक्त के लिये तीन साधनाएँ आवश्यक मानते हैं—

( १ ) नामस्मरण[1]
( २ ) भगवद्कथागान[2]
( ३ ) भगवद्स्वरूपचिंतन[3]

---

१ राम न सुमिरयौ एक घरी
परम भाग सुकृत के फल तैं सुन्दर देह धरी

२ नर तैं जनम पाइ कह कीनौ
उदर भर्‌यौ कूकुर सूकर लौं प्रभु कौ नाम न लीनौ
श्री भागवत सुनी नहिं स्रवननि, गुरुगोविंद नहिं चीनौ

३ यहई मन आनन्द-अवधि सब
निरखि सरूप बिवेक-नयन भरि, या सुख तैं नहिं और कछू अब
चित चकोर-गति करि अतिसय रति, तजि स्रम सघन विषय लोभा
चिति चरन-मृदु-चारु-चन्द-नख, चलत चिन्ह चहुँ दिसि सोभा
जानु सुजघन मंकर-कर आकृति, कटि प्रदेश किङ्किनि राजै
हृद त्रिध नाभि, उदर त्रिवली वर, अवलोकत भवभय भाजै
उरग-इन्द्र उनमान सुभग भुज, पानि पदुम आयुध राजै
कनक-वलय, मुद्रिका मोहप्रद, सदा सुभग सन्तनि काजै

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कर्म भी होने चाहिये। ये हैं—गुरुभक्ति, दीनता की साधना, सत्संग। इन साधनों के साथ-साथ चलते रहना चाहिये। आत्मप्रताड़न—

(१) माधौ जू, हौं पतित सिरोमनि
और न कोई लायक देखौं, सत-सत अघ प्रति रोमनि
(२) हरि जू मोसो पतित न आन

शरणागति—

(१) अब हौं हरि, सरनागति आयौ
(२) मन बस होत नाहिनै मेरैं
जिनि बातन तैं बह्यौ फिरत हौं सोई लै लै प्रेरै
कैसैं कहौं-सुनौं जस तेरं और आनि खचेरैं
तुम तो दोष लगावन को सिर, बैठे देखत नेरैं
कहा करौं, यह चर्यौ बहुत दिन, अंकुश बिना भुकेरैं
अब करि सूरदास प्रभु आपन, द्वार परयौं है तेरैं

भगवान की अनुकंपा के प्रति आस्था—

भक्ति बिना जो कृपा न करत तो हौं आस न करतो
बहुत पतित उद्धार किए तुम, हौं तिनकौं अनुसरतौ

इन्हीं भावनाओं के कारण भक्त ढीठ हो जाता है। वह भगवान से कहता है—

जानहौं अब बाने की बात
मोसौं पतित उधारो प्रभु जौ तौ बदिहौं निज तात

---

उर बनमाल बिचित्र बिमोहन, भृगु भँवरी भ्रम कौ नासै
तड़ित-बसन घन-श्याम सहस तन, तेजपुंज तम कौं त्रासै
परम रुचिर मनि-कंठ किरनिगन, कुण्डल-मुकुट-मुकुट-प्रभा न्यारी
विधु मुख मृदु मुसक्यानी अमृत सम, सकल लोक-लोचन प्यारी
सत्य-सील सम्पन्न सुमूरति, सुर-नर-मुनि भक्तनि भावै
अंग अंग प्रति छवि तरंग गति सूरदास क्यौं कहि आवै

वह तो आत्मसमर्पण कर देता है—

हमें नंदनंदन मोलि लिये

फिर वह ढीठ क्यों न हो जाय ? उसकी तो भावना है आनन्द—

(१) तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान
(२) मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै
(३) तुम तजि और कौन पै जाउँ !
(४) अब धौं कहो कौन दर जाउँ !
(५) जैसे राखहुँ तैसें रहौं

इसी ढीठता के बल पर वह कहता है—

जौ पै तुमहीं बिरद बिसारौ
तौ कहौ कहाँ जाइ करुनामय कृपिन करम कौ मारौ

कहावत ऐसे त्यागी दानि
चारि पदारथ दिए सुदामहिं अरु गुरु के सुत आनि
रावन के दस मस्तक छेदे, गहि सारङ्गपानि
लङ्का दई बिभीषन जन कौं पूरबली पहिचानि
विप्र सुदामा कियौ अजाची, प्रीति पुरातन जानि
सूरदास सौं कहा निहोरौ, नैननि हूँ की हानि

इसी प्रकार—

दीननाथ अब बारि तिहारी

यहाँ तक कि अन्त में वह भगवान के अनुकंपामय स्वभाव से उत्साहित होकर अड़ ही जाता है—

आजु हौं एक-एक करि टरिहौं
कै तुमहीं कै हमहीं, माधौ, अपन भरोसें लरिहौं
हौं तौ पतित सात पीढ़िनि कौ, पतित ह्वै निस्तरि हौं
अब हौं उघरि नच्यौ चाहत हौं, तुम्हें बिरद बिन करिहौं

कत अपनी परतीति नसावत, मैं पायो हरि हीरा
सूर पतित तबही उठिहै प्रभु जब हँसि देहौ बीरा

यह है सूर की विनय-भावना के मूल में काम करनेवाला मनोविज्ञान। केवल एक स्थान पर वे तुलसी की तरह भक्ति की याचना करते हैं—

अपनी प्रभु भक्ति देहु जासौं तुम नाता

परन्तु अन्य सभी स्थलों पर वे भगवान से मुक्ति की ही याचना करते हैं और अपनी पतितावस्था और भगवान की पतित उद्धारन-बानि का सहारा लेते दिखाई पड़ते हैं।

सूर के संग्रहीत विनयपदों में दो यमुनास्तुति के पद भी हैं। इनसे सूर की सामान्य विनय-भावना पर प्रकाश पड़ता है—

भक्त जमुने सुगम, अगम औरैं
प्रात जो न्हात अघ जात ताके सकल, ताहि जमहू रहति हाथ जोरैं
अनुभवी जानहीं बिना अनुभव कहा, प्रिया जाकौ नहीं चित्त चोरैं
प्रेम के सिन्धु को मर्म जान्यौ नहीं, सूर कहि कहा भयो देह बोरैं

फल फलित होत फल-रूप जनैं
देखिहू सुनिहु नाहिं ताहि अपनौ कहै ताकी यह बात कोउ कैसैं मानै
ताहि के हाथ निरमोल नग दीजियै, जोइ नीकै परखि ताहि जानै
सूर कहि क्रूर तैं दूर बसिये सदा, जमुन को नाम लीजै जु छानैं

संक्षेप में, सूर की भक्ति में पतित-भावना इतनी अधिक है कि वह उनकी भक्ति को कहीं-कहीं विचित्र रूप दे देती है। सूर के उन पदों को समझने के लिये जिनमें उन्होंने अपने को "पतित" "अधम" आदि नामों से याद किया है, इस पद को सामने रखना ठीक होगा।

अद्भुत जस विस्तार करन कौं हम जन जनकौ बहु हेत

भक्तपावन कोउ कहत न कबहूँ, पतित-पावन कहि लेत
जय अरु विजय कथा नहिं कछुवै, दसमुख-बध विस्तार
जद्यपि जगत-जननि को हरता, सुनि सब उतरत पार
सेषनाग के ऊपर पौढ़त, तेतिक नाहिं बढ़ाई
जातुधानि-कुच-गर-मर्षत तब, तहाँ पूर्नता पाई
धर्म कहैं, सर-सयन गंग-सुत, तेतिक नाहिं सन्तोष
सुत सुमिरत आतुर द्विज उधरते, नाम भयौ निर्दोष
धर्म-कर्म-अधिकारिनि सौं कछु नाहि न तुम्हरौ काज
भू-भार-हरन प्रगट तुम भूतल, गावत संत समाज

इसी भावना से सूर के पद परिचालित हैं। यद्यपि सूरदास ने तुलसीदास की तरह विनय की शास्त्रीय पद्धति (वैष्णव विनय-पद्धति) को अपने सामने नहीं रखा है, परन्तु विनय की समस्त भूमिकाएँ उनके पदों में मिल जाती हैं।

साधारणतः सूर के विनय पद भाव और भाषा की दृष्टि से अधिक काव्यात्मक नहीं हैं, परन्तु जहाँ उन्होंने रूपकों की सृष्टि की है, वहाँ वे पद अत्यन्त प्रभावशाली हो गये हैं। इस सम्बन्ध में हम सूर के रूपकों का भी अध्ययन कर सकते हैं—

(१) नट का रूपक—

अब हौं, हरि सरनागत आयौ

कृपानिधान, सुदृष्टि हेरियै, जिहिं पतितनि अपनायौ
ताल, मृदंग, झांझ, दुन्दुभि मिलि, बीना-बेनु बजायौ
मन मेरैं नट के नायक ज्यौं तिनहीं नाच नचायौ
उघर्यौ सकल सङ्गीति-रीति-भव अंगनि अंग बनायौ
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह की तानतरङ्गनि गायौ
सूर अनेक देह धरि भूतल नाना भाव दिखायौ
नाच्यौ नाच लच्छ चौरासी, कबहुँ न पूरौ पायौ

अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल
महामोह को नूपुर बाजत निंदा सब्द रसाल
भ्रम भोयौ मन भयो पखावज चलत असङ्गत चाल
तृष्णा नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल
माया को कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल
कोटिक कला काछि दिखलाई जल-थल सुधि नहिं काल
सूरदास की सबै अविद्या दूर करौ नन्दलाल

( २ ) नदी-समुद्र के रूपक—

(१) अब मोहिं मज्जत क्यों न उबारो !
दीनबन्धु, करुनानिधि स्वामी, जन के दुःख निवारो
(२) भवसागर मैं पैरि न लीन्हौ
(३) कब लागि फिरिहौं दीन कह्यौ
(४) अब कै नाथ मोहि उधारि
मगन हौं भव-अंबुनिधि मैं कृपासिन्धु मुरारी
नीर अति गम्भीर माया लोभ-लहरि तरङ्ग
लिये जात अगाध जल कौं गहे ग्राह अनङ्ग
मीन इंद्री तनहिं काटत मोट अघ सिर भार
पग न इत उत धरन पावत उरझि मोह सिवार
क्रोध-दम्भ-गुमान, तृस्ना पवन अति झकझोर
नाहिं चितवन देत सुत-तिय नाम-नौका ओर
थक्यौ बीच बिहाल, बिह्वल, सुनौ करुनामूल
स्याम, भुज गहि काढ़ लीजै, सूर ब्रज के कूल

( ३ ) वृक्ष का रूपक—

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं
ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात झरि जैहैं

या देहि कौ गरब न करियै स्यार-काग-गिध खैहैं
तीननि मैं तन कृमि कै विष्ठा, कै ह्वै खाक उड़ैहैं
कहँ वह नीर, कहाँ वह सोभा, कहँ रङ्ग-रूप दिखैहैं
जिन लोगनि सौं नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं

(४) चौपड़ का रूपक—

चौपरि जगत मडे जुग बीते
गुन पाँसे, क्रम अंक, चारि गति सारि, न कबहूँ तेजी

(५) खेती के रूपक—

(१) प्रभुजू यौं कीन्हीं हम खेती
बंजर भूमि, माँउ हर जोते, अरु जेती की तेती
काम क्रोध दोउ बैल बली मिलि रज तामस सब कीन्हौ
अति कुबुद्धि मन हाँकन हारे माया-जूआ लीन्हौ
इंद्रिय मूल किसान महातृन-अग्रज-बीज बई
जन्म जन्म की विषय-बासना उपजत लता नई

(१) जनके उपजत दुःख किन काटत ?
जैसें प्रथम-असाढ़-आँजुलन खेतिहर निरखि उपाटत
जैसे मीन किलकिला दरसत ऐसें रहौ प्रभु डाटत
पुनि पाछैं अघ-सिन्धु बढ़त है, सूर खाल किम पाटत

इनके अतिरिक्त अन्य पदों में भी जहाँ उन्होंने रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा आदि का प्रयोग किया है। वे विनय-भावना को अत्यन्त स्पष्ट और निश्चित रूप दे सके हैं जैसे

नाचौं तो लिखवार कहावै

और 'हरि हौं ऐसो असल कमायो' पदों में वे पटवारी के काम के सुन्दर रूपक उपस्थित करते हैं, "हरि हौं सब पतितनि पतितेस" में राजा का रूपक बाँधते हैं, अथवा "व्याध" और "अंकुर" का रूपक बाँधते हुए कहते हैं—

अब कै राखि लेहु भगवान

हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुमडरिया पारधि साधे बान
ताकैं डर मैं भाज्यौ चाहत ऊपर ढुक्यौ सचान
दुहूँ भाँति दुःख भयौ आनि यह कौन उबारे प्रान
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी कर छूट्यौ संधान
सूरदास सर लाग्यौ सचानहिं जय-जय कृपानिधान

अद्‌भुत रामनाम के अंक

धर्म-अंकुर के पावन द्वै दल, मुक्ति-वधू-ताटङ्क
मुनि-मन-हंस-पच्छ-जुग जाकें बल उड़ि ऊरध जात
जनम-मरन-काटन कौं कर्तरि तीछन बहु बिख्यात
अंधकार-अज्ञान-छन कौं रवि-ससि जुगल प्रकाश
बासर-निसि दोउ करैं प्रकासित महा कुमग अनमास
दुहुँ लोक सुख करन, हरन दुःख, वेद पुराननि साखि
भक्ति ज्ञान के पंथ सर ये प्रेम निरन्तर भाखि

अंत में सूरदास की यह भक्तिभावना जिस कृष्ण रूप के प्रति प्रगट हुई है वह निर्गुण से कम "अविगत" नहीं है परन्तु सगुण रूप होने के कारण उसकी सुन्दरता भक्त के मन में समा जाती है जिससे वह कुछ तृप्त अवश्य हो जाता है। वास्तव में सूरदास का विषय विनय नहीं; इसी अलौकिक; अविगत सगुण सौन्दर्य का अवलोकन; आस्वादन और ध्यान ही उनका लक्ष्य है। इस रूप के चमत्कारिक वर्णन से सारा सूरसागर भरा पड़ा है। नाम-स्मरण; कथाकीर्तन और ध्यान में यह ध्यान ही सूरदास ने सर्वश्रेष्ठ माना है। प्रमाण सूरसागर है जिसमें राधाकृष्ण का ध्यान सैकड़ों रूपों में अंतःचक्षुओं के सामने उपस्थित किया गया है।

---

## ५

# सूरदास का वात्ससल्य रस-निरूपण और बालवर्णन

सूरदास से पहले हिंदी के किसी कवि ने वात्सल्य रस को नहीं छुआ; यह कम महत्त्व की बात नहीं कि सूरदास के साहित्य के कारण ही आज शास्त्रपंडित एक नये रस का अस्तित्व मान रहे हैं। सूरदास के वात्सल्य रस-निरूपण का विश्लेषण करने से पहले हम भूमिका-स्वरूप उनकी सीमाएँ बता देना चाहते हैं—

१—सूरदास के वात्सल्य रस के आलंबन (कृष्ण) अलौकिक हैं; वे साक्षात् ब्रह्म हैं; बालक बन कर लीला-मात्र कर रहे हैं। यह बात गोप्य भी नहीं है। बहुधा यशोदा जानती है; गोपियाँ जानती हैं, नंद जानते हैं।

२—कोई न भी जानता हो; सूरदास अवश्य जानते हैं; वे लगभग प्रत्येक पद में 'प्रभु' आदि विशेषण डाल कर कृष्ण का अलौकिकत्व चित्रण कर देते हैं।

३—स्वयं बालक कृष्ण अनेक अलौकिक लीलाएँ करते हैं; अनेक असुरों को मारते हैं; कालीयदमन करते हैं; मुँह खोल कर मा को विराटरूप दिखलाते हैं।

४—इसी अलौकिकता के कारण सूरदास कृष्ण पर छोटी अवस्था में ही शृङ्गार रस का आरोपण कर देते हैं। कृष्ण गोपियों से क्रीड़ा करते; राधिका से प्रेम चलाते हैं; परन्तु अभी बालक हैं।

ऊपर के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि ये सब बातें बालक के स्वाभाविक चित्रण की दृष्टि से दूषित हैं। सम्भव था कि इनकी

उपस्थित के कारण वात्सल्य रस सुन्दर रूप में प्रस्फुट नहीं होता, परन्तु अनेक पदों में सूरदास कृष्ण की साधारण बालक की लीला ही उपस्थित करते हैं और यशोदा उसे सहज बालक्रीड़ा के रूप में ही लेती हैं, अतः ऐश्वर्य का समावेश होते हुए भी बाल-चित्रण अत्यन्त सुन्दर और मार्मिक हुआ है। वात्सल्य के आलंबन कृष्ण के रूपसौन्दर्य, क्रीड़ायें, वार्तालाप, दुःख-सुखप्रसंग, क्रमशः विकास, संस्कार, बालसुलभ भोलापन, चपलता, उत्सुकता जिज्ञासा आदि बालस्वभाव उद्दीपन हैं। नंद-यशोदा इस रस के भोक्ता हैं।

भागवत में कृष्ण की बाललीला का विशेष वर्णन नहीं है, अन्य पुराणों में तो इसका अभाव ही है। जो थोड़ा भागवत में है, वही सूर का आधार हो सकता था, परन्तु उस पर सूर ने अपनी प्रतिभा से एक बड़े अनुपम राजप्रासाद का ही निर्माण कर दिया है। विश्व-साहित्य में शिशु की क्रीड़ाकेलि और माता के हृदय की आशाकांक्षा का इतना सूक्ष्म, रसमय और विशद चित्रण और कहीं नहीं है। भागवत में बाललीला के प्रसंग कुछ ही अध्यायों में इस प्रकार आये हैं:—

नंदबाबा बड़े मनस्वी और उदार थे। पुत्र का जन्म होने पर तो उनका हृदय विलक्षण आनंद से भर गया। उन्होंने स्नान किया और पवित्र होकर सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये। फिर वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलवा कर स्वस्तिवाचन और पुत्र का जातकर्म-संस्कार करवाया......उस समय ब्राह्मण, सूत, मागध और वंदीजन मंगलमय आशीर्वाद देने तथा स्तुति करने लगे। गायक गाने लगे। भेरी और दुन्दुभि बजने लगीं। व्रजमंडल के सभी घरों के द्वार, आँगन और भीतरी भाग झाड़ बुहार दिये गये, उनमें सुगन्धित जल का छिड़काव किया गया, उन्हें चित्र-विचित्र ध्वजा-पताका, पुष्पों की मालायें, रंग-विरंगे वस्त्र और

पत्तों की वंदनवारों से सजाया गया। गाय, बैल और बछड़े को हल्दी-तेल से रँग दिया गया, और उन्हें गेरू आदि रंगीन धातुएँ, मोरपंख, फूलों के हार, तरह-तरह के सुन्दर वस्त्र और सोने की जंजीरों से सजा दिया गया। परिक्षित. सभी ग्वाल बहुमूल्य वस्त्र, गहने अँगरखे और पगड़ियों से सुसज्जित होकर और अपने हाथों में भेंट की बहुत सी सामग्री लेकर नन्दबाबा के घर आये।

( अध्याय ५, श्लोक १-८ जन्मोत्सव )

एक बार भगवान् श्रीकृष्ण के करवट बदलने का अभिषेक उत्सव मनाया जा रहा था। उसी दिन उनका जन्म-नक्षत्र भी था...

( अ० ७, श्लोक ४ करवट बदलना और वर्षगांठ )

( अ० ८ में नामकरण-संस्कार का वर्णन है, परन्तु वह विशेष समारोह के साथ सम्पन्न नहीं हुआ है )

कुछ ही दिनों में राम और श्याम घुटनों और हाथों के बल बकैंया चल-चल कर गोकुल में खेलने लगे। दोनों भाई अपने नन्हे-नन्हे पाँवों को गोकुल की कीचड़ में घसीटते हुए चलते। उस समय उनके पाँव और कमर के घुँघरू झुनझुन बजने लगते। वह शब्द बड़ा भला मालूम पड़ता। वे दोनों स्वयं वह ध्वनि सुनकर खिल उठते। कभी-कभी वे रास्ते चलते किसी अज्ञात व्यक्ति के पीछे हो लेते। फिर जब वह देखते कि यह तो कोई दूसरा है. तब शक से डर कर रह जाते और डर कर अपनी माताओं रोहिणी और यशोदा के पास लौट आते। माताएँ यह सब देख-देख कर स्नेह से भर जातीं। उनके स्तनों से दूध की धारा बहने लगती थी। जब उनके दोनों नन्हे-नन्हे से शिशु अपने शरीर में कीचड़ का अङ्गराग लगा कर लौटते, तब उनकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती थी। माताओं को कीचड़ का तो ध्यान ही न रहता। वे उन्हें आते ही दोनों हाथों से गोद में लेकर हृदय

से लगा लेतीं और उन्हें स्तन-पान कराने लगतीं। जब वे दूध पीने लगते और बीच-बीच में मुस्करा कर अपनी माताओं की ओर देखने लगते, तब वे उनकी मंद-मंद मुस्कान, छोटी-छोटी दँतुलियाँ और भोला-भाला मुँह देखकर आनन्द के सागर में डूबने उतराने लगतीं।

जब राम-श्याम कुछ और बड़े हुए, तब व्रज में घर के बाहर ऐसी-ऐसी बाल-लीलाएँ करने लगे, जिन्हें गोपियाँ देखती ही रह जातीं। जब वे किसी बैठे हुए बछड़े की पूँछ पकड़ लेते और बछड़े डर कर इधर-उधर भागते, तब वे दोनों और भी जोर से पूँछ पकड़ लेते और बछड़े उन्हें घसीटते हुए दौड़ने लगते। गोपियाँ अपने घर का काम-धंधा छोड़कर यही सब देखती रहतीं और हँसते-हँसते लोट पोट-हो जातीं। फिर दौड़ कर छुड़ातीं और परम आनन्द में मग्न हो जातीं।

( अ० ८, श्लोक २१-२८ शिशुलीला )

अब वे बलराम और अपनी ही उम्र के ग्वालबालों को अपने साथ लेकर खेलने के लिये व्रज में निकल पड़ते और व्रज की भाग्यवती गोपियों को निहाल करते हुए तरह-तरह के खेल खेलते। उनके बचपन की चंचलताएँ बड़ी ही अनोखी होती थीं। गोपियों को तो वे बड़ी ही सुन्दर और बड़ी ही मधुर लगतीं। एक दिन सब की सब इकट्ठी होकर नन्दबाबा के घर आईं और यशोदा माता को सुना-सुना कर कन्हैया की करतूत कहने लगीं—अरी महर, यह तेरा कान्ह बड़ा नटखट हो गया है। गाय दुहने का समय न होने पर भी यह बछड़ों को खोल देता है और हम डाँटती हैं तो ठटा-ठटा कर हँसने लगता है। इतना ही नहीं, यह हमारे मीठे-मीठे दही-दूध चुरा-चुरा कर खा जाता है। इसे चोरी के बड़े-बड़े उपाय मालूम हैं। इससे कुछ भी बचने नहीं पाता। केवल अपने ही खाता तो भी एक बात थी, यह तो सारा दही-दूध बानरों को

बाँट देता है। और ×× यह हमारे माटों को ही फोड़ डालता है ×× जब हम दही-दूध को छीकों पर रख देती हैं और इसके छोटे-छोटे हाथ वहाँ तक नहीं पहुँच पाते, तब यह बड़े-बड़े उपाय करता है। कहीं दो-चार पीढ़ों को एक के ऊपर एक रख देता है, कहीं ऊखल पर चढ़ जाता है और कहीं ऊखल पर पीढ़ा रख देता है। कभी-कभी तो अपने किसी साथी के कंधे पर ही चढ़ जाता है। जब इतने पर भी काम नहीं चलता, तो यह नीचे से ही उन बर्तनों में छेद कर देता है। × × तनिक देखो तो इसकी ओर, वहाँ तो चोरी के अनेक ढंग निकालता है, तरह-तरह की चालाकियाँ करता है और यहाँ मालूम हो रहा है मानो पत्थर की मूर्ति खड़ी हो! वाहरे भोले-भाले साधु! इस प्रकार गोपियाँ कहती जातीं और भगवान श्रीकृष्ण के भीत-चकित नेत्रों से युक्त मुखकमल को देखती जातीं। उनकी यह दशा देख कर नंदरानी यशोदा उनके मन का भाव ताड़ जातीं और उनके हृदय में स्नेह और आनन्द की बाढ़ आ जाती। वे इस प्रकार हँसने लगतीं कि अपने लाड़ले कन्हैया को इस बात का उलाहना भी न दे पातीं डाँटने की बात तक नहीं सोचतीं।

( अ० ८, श्लोक २६-२८ माखनचोरी और गोपियों का यशोदा को उलाहना)

सर्वशक्तिमान भगवान कभी-कभी गोपियों के फुसलाने से साधारण बालकों के समान नाचने लगते। कभी भोले-भाले अन-जान बालक की तरह गाने लगते। कहाँ तक कहूँ वे उनके हाथ की कठपुतली हो गये थे।

( अ० ११. श्लोक ७ )

राम और श्याम दोनों ही अपनी तोतली बोली और अत्यंत मधुर बालोचित लीलाओं से गोकुल की ही तरह वृन्दावन में भी ब्रजवासियों को आनन्द देते रहे। थोड़े ही दिनों में समय आने

पर वे बछड़े चराने लगे। दूसरे ग्वाल-वालों के साथ खेलने के लिये बहुत-सी सामग्री लेकर वे घर से निकल पड़ते और गौशाला के पास ही अपने बछड़ों को चराते। श्याम और राम कहीं बाँसुरी बजा रहे हैं तो कहीं गुलेल या ढेलवाँस से ढेले फेंक रहे हैं। किसी समय अपने पैरों में घूँघरू पर तान छेड़ रहे हैं तो कहीं बनवारी गाय और बैल बनकर खेल रहे हैं।

(अ० ११, श्लो० ३७-४०)

एक दिन नन्दनन्दन श्यामसुन्दर वन में ही कलेवा करने के विचार से बड़े तड़के उठ गये और सींग की मधुर मनोहर ध्वनि से अपने साथियों को मन की बात जनाते हुए उन्हें जगाया और बछड़ों को आगे करके वे व्रजमंडल से निकल पड़े। श्रीकृष्ण के साथ उनके प्रेमी सहस्रों ग्वाल-बाल सुन्दर छीके, बेत, सींग और बाँसुरी लेकर तथा अपने सहस्र-सहस्र बछड़ों को आगे करके बड़ी प्रसन्नता से अपने-अपने घरों से चल पड़े। उन्होंने श्रीकृष्ण के अगणित बछड़ों में अपने-अपने बछड़े मिला दिये और यथास्थान बालोचित खेल खेलते हुए विचरने लगे। यद्यपि सब के सब ग्वाल-बाल काँच, घुँघची, मणि और स्वर्ण के गहने पहने हुए थे, फिर भी उन्होंने वृन्दावन के लाल, पीले, हरे फलों से, नया-नयी कोपलों के गुच्छों से, रंग-बिरंगे फूलों और मोर-पंखों से तथा गेरू आदि रंगीन धातुओं से अपने को सजा लिया × × ×

(अ० १२, श्लोक १-१० वनचारण)

सब के बीच में भगवान् श्रीकृष्ण बैठ गये उनके चारों ओर ग्वाल-बालों ने बहुत-सी मंडलाकार पंक्तियाँ बना लीं और एक-से-एक सट कर बैठ गये। सब के मुँह श्रीकृष्ण की ओर थे और सब की आँखें आनन्द से खिल रही थीं। वन-भोजन के समय श्रीकृष्ण के साथ बैठ ग्वालबाल ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानों

कमल की कर्णिका के चारों ओर उसकी छोटी बड़ी पँखुड़ियाँ सुशोभित हो रही हों ××

( अ० १३, श्लोक ७-११ वनभोजन )

उस समय श्रीकृष्ण की छटा अवर्णनीय थी। घुँघराली अलकों पर गौओं के खुरों से उड़-उड़ कर धूलि पड़ी हुई थी, सिर पर मोरपंख का मुकुट था और बालों में सुन्दर जंगली पुष्प गुँथे थे। उनकी मधुर चितवन और मनोहर मुसकान देख-देख कर लोग अपने को निछावर कर रहे थे। श्रीकृष्ण मधुर-मुरली बजा रहे थे और साथी ग्वालवाल उनकी ललित कीर्ति का गान कर रहे थे। वंशी की ध्वनि सुन कर बहुत सी गोपियाँ एक ही साथ व्रज से बाहर निकल आई। उनकी आँखें न जाने कब से श्रीकृष्ण के दर्शन के लिये तरस रही थीं। गोपियों ने अपने नेत्र-रूप भ्रमरों से भगवान के मुखारविंद का मकरन्द रस पान कर दिन भर के विरह की जलन शांत की और भगवान ने भी उनकी लाजभरी हँसी तथा विनययुत प्रेमभरी चितवन का सत्कार स्वीकार करके व्रज में प्रवेश किया।

( अ० १५, श्लोक १—४६ वन से लौटने का वर्णन )

सूरदास के बालकृष्ण काव्य में इन स्थलों का तो समावेश है ही, परन्तु उन्होंने माता-पिता और बालक के प्रकृत सम्बन्ध को अत्यंत निकट से देख कर अनेक नवीन सहृदयतापूर्ण उद्भावनाएँ भी उपस्थित की हैं। इन नवीन उद्भावनाओं पर ही सूर के वात्सल्य-प्रधान काव्य की श्रेष्ठता प्रतिष्ठित है। वास्तव में भागवत में कृष्ण की बाललीला लीला मात्र है, वह रस के भीतर से प्रस्फुटित नहीं हुई है। इसी से उसमें वात्सल्य रस उमड़ा नहीं पड़ता। सूर ने बालक की लीला को माता-पिता और सुहृदों के हृदय के रस से सिक्त करके मधुर, सरस और स्वाभाविक बना

दिया है। उन्होंने बालक कृष्ण के विकास को जन्म से लेकर कुमारावस्था तक अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से देखा है और उस पर मुग्ध होकर विस्तार से वर्णन किया है। जिन नये प्रसंगों की प्रतिष्ठा उन्होंने की है, वे एकदम प्राकृत हैं। माता चाहे किसी देश में हो, उसके लिये शिशु को दुलारना चमत्कारी घटना है। बालक को पालने में झुलाना, गोद में लेकर धाय को बुलाना, चिंता कि बालक कब घुटने चलेगा, कब उसके दो-दो दाँत निकलेंगे, कब बोलेगा—इनमें देश काल की सीमा नहीं है। इसी तरह बालक का मुँह में अंगूठा देना, स्वप्न में चौंकना, किलकना; कलबल बोलना, घुटना चलना पहली बार देहरी लाँघना आदि सर्वदा अलौकिक विस्मयकारी घटनायें हैं।

अधिक आचार्य "वात्सल्य" को भाव मानते हैं या "रति" के ही अन्तर्गत रख देते हैं, परन्तु भारतेन्दु "नाटक" लेख में 'वत्सलं' को रस मानते हैं। सोमेश्वरी ने लिखा है—स्नेहो-भक्तिर्वात्सल्यमितिरतेरेव विशेषः (स्नेह, भक्ति, वात्सल्य, रति के ही विशेष रूप हैं)। वे इन्हें भाव ही मानते हैं। उधर साहित्य दर्पणकार का स्पष्ट मत है—

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।
स्थायी वत्सलता स्नेहः पुत्रादालम्बनं मतम्॥
उद्दीपनानि तच्चेष्टा विद्यशौर्यदयादयः।
आलिंगनांग संस्पर्श शिरश्चुम्बन भीक्षणम्॥
पुलकानंद वास्याद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः।
संचारिणोऽनिष्ट शंका हर्षगर्वोदयो मताः॥

(प्रकट चमत्कारक होने के कारण कोई-कोई वत्सल रस भी मानते हैं। इसमें वात्सल्य स्नेह स्थायी होता है। पुत्रादि इसके आलंबन और चेष्टा तथा विद्या, शूरता, दया आदि उद्दीपन

विभाव हैं। आलिंगन, अङ्ग-स्पर्श, शिर चूमना, देखना, रोमांच, आनंदाश्रु आदि इसके अनुभाव हैं। अनिष्ट की आशंका, हर्ष, गर्व आदि संचारी माने जाते हैं।) इसमें तो कोई मतभेद नहीं हो सकता कि सूरदास ने रसशास्त्र को सामने रख कर सूरसागर के पदों की रचना नहीं की, उन्होंने भक्तिभाव से प्रेरित होकर अध्यात्म के उच्चोच्च स्तर पर चढ़ते हुए स्वतंत्र रूप से काव्य की रचना की। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि नंद-यशोदा और कृष्ण के पिता-पुत्र सम्बन्ध में वात्सल्य रस की अत्यंत सुन्दर रूप से प्रतिष्ठा हुई है और आलंवन, उद्दीपन, संचारी और व्यभिचारी भावों के इतने प्रसंग आये हैं कि हम सूर के वात्सल्य काव्य को रस की कसौटी पर भली भाँति परख सकते हैं। वाल-जीवन की इतनी परिस्थितियाँ किसी भी अन्य काव्य में नहीं खुल सकी हैं, न माता-पिता के हृदय की आशाकांक्षा, पुत्र-विषयक चिंता, आशाभिलाषा का इतना विशद वर्णन ही कहीं है।

आलंवन वालकृष्ण के अनेक चित्र अनेक परिस्थितियों में सूरसागर में मिलते हैं—

( १ ) सोभित कर नवनीत लिए

घुटुरुन चलत रेनु मंडित मुख दधि लेप किए
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए
लट लटकनि मनो मत्त मधुपगन मादक मदहिं पिए
कठुला कंठ, वज्र केहरिनख, राजत रुचिर हिए
धन्य सूर एको पल या सुख का सत कल्प जिए

( २ ) हौं बलि जाउं छवीले लाल की

धूसर धूरि घुटुरुवनि रेंगनि, बोलन बचन रसाल की
छिटिक रहीं चहुँ दिसि जुलटुरियाँ लटकन लटकति भाल की
मोतिन सहित नासिका नथुनी कंठ कमल-दल-माल की

कछुकै हाथ, कछू मुख माखन, चितवनि नैन बिसाल की
सूर प्रभु के प्रेम मगन भई ढिग न तजति ब्रजबाल की

स्वयं सूर के आराध्य बालकृष्ण हैं, इससे वे बाल-छवि का वर्णन करते हुए नहीं थकते—

हरि जू की बाल छवि कहौं बरनि
सकल सुख की सींव कोटि मनोज-सोभा, हरनि
मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरत भूपन भरनि
मनहुँ सुभग सिंगार सुरतरु फर्‌यो अद्‌भुत फरनि
लसत कर प्रतिबिम्ब मनि आँगन घुटुरुवनि चरनि
जलज संपुट सुभग छवि भरि लेति उर जनु धरनि
पुन्यफल अनुभवति सुतहिं बिलोकि कै नन्दघरनि
सूर प्रभु की बसी उर किलकनि, ललित लरखरनि

सूर के बाल कृष्ण के चित्रण को कई विभागों में बाँटा जा सकता है (१) रूप-वर्णन, (२) चेष्टाओं और क्रीड़ाओं का वर्णन, (३) अन्तर्भाव (४) संस्कारों, उत्सवों और समारोहों का वर्णन रूपवर्णन में कृष्ण के सौन्दर्य को आलंबन मान कर कवि अनेकानेक उद्‌भावनाएँ सामने लाता है। चेष्टाओं और क्रीड़ाओं का वर्णन भी कम नहीं है—

(१) सिखवत चलन जसोदा मैया
अरबराय करि पानि गहावत, डगमगाय धरै पैया

(२) पाहुनि करि दै तनक मह्यौ
आरि करै मनमोहन मेरी, अंचल आनि गह्यौ
व्याकुल मथत मथनियाँ रीती, दधि भ्वै ढरिकि रह्यौ

सूर की बाललीला व्रज के सारे समाज और नंदरानी के छोटे कुटुम्ब को समेट कर चलती है। छोटी-छोटी चेष्टाओं से भी उस जनसमूह के भीतर आनन्द और चिन्ता का संचार होता है।

बाल-चेष्टाओं और क्रीड़ाओं द्वारा मातृसुख का वर्णन करने में तो सूर अद्वितीय हैं—

आँगन स्याम नचावहीं जसुमति नन्दरानी
तारी दै दै गावहीं मधुरी मदु बानी
पायन नूपुर बाजई कटि किंकिनि कूजै
नन्हीं एड़ियन अरुनता फलबिंबन पूजै
जसुमति गान सुनै स्रबन तब आपुन गावै
तारि बजावत देखिकै पुनि तारि बजावै
नचि-नचि सुतहिं नचावई छवि देखत जियते
सूरदास प्रभु स्याम को सुख टरत न हियते

परन्तु रसपुष्टि से अधिक ध्यान सूर ने बालक के स्वाभाविक चित्रण पर दिया है जैसे इस पद में—

जेंवत नन्द-कान्ह इक ठौरे
कछुक खात लपटात दुहुँ कर बालक हैं अति भोरे
बड़ो कौर मेलत मुख भीतर मिचि दसन टुक तोरे
तीछन लगी, नयन भरि आये, रोवत बाहर दौरे
फूँकति बदन रोहिनी माता लिये लगाइ अँकोरे
सूर श्याम को मधुर कौर दे कीन्हे सात निहोरे

स्वभाव चित्रण के द्वारा रसोद्रेक में तो सूर और भी सिद्धहस्त हैं—

मैया ! मैं नाहीं दधि खायो
ख्याल परे ये सखा सबे मिलि मेरे मुख लपटायो
देखि तुही छीके पर भाजन ऊँचे धर लटकायो
तुही निरखि नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायो
मुख दधि पोंछ कहत नँदनन्दन दोना पीठ दुरायो
डारि साँट मुस्काइ तबहिं गहि सुत को कंठ लगायो

बाल-बिनोद मोह मन मोह्यो भगति प्रताप दिखायो
सूरदास प्रभु जसुमति के सुख शिव बिरंचि बौरायो

अंतर्भावों का चित्रण तो पग-पग पर मिलेगा। नीचे के पद में 'स्पर्धा' की कितनी सुन्दर व्यंजना है—

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी
किती बारि मोहि दूध पिवत भई, यह आजहुँ है छोटी
तू जो कहती बल की बेनी ज्यों है है लांबी मोटी

इसी प्रकार क्षोभ का चित्र है—

खेलत में को काको गोसैयाँ
हरि हारे, जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैया
जाँतिपाँति हममें कछु नाहीं, नाहिंन बसत तुम्हारी छैयाँ
अति अधिकार जनावत यातें अधिक तुम्हारे हैं कछु गैया

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर ने अपने आराध्य बालकृष्ण को वात्सल्य का अत्यन्त विशाल चित्रपटी पर अंकित किया है।

सूर के वात्सल्य वर्णन का आरम्भ कृष्ण जन्म से होता है। कृष्ण अयोनिज हैं। वे नंद-यशोदा की संतान नहीं हैं, परन्तु वे उन्हें वैसा ही मानते हैं। जन्म का महान उत्सव होता है—

आज बन कोउ जनि जाइ
ढोठा है रे भयो महर के कहत सुनाइ सुनाइ
सबहिं घोष में भयो कोलाहल आनंद उर न समाइ

कृष्ण-दर्शन की लालसा से गोपीगोप थाल सजा कर नंद-भवन में पहुँचते हैं। स्वयं सूर बंदी के भेष में उपस्थित होते हैं। पालने का आयोजन होता है—

(१) अति परम सुन्दर पालना गढ़ि ल्याउ रे बढ़ैया
सीतल चन्दन कटाउ धरि खरादि रङ्ग लाउ

विविध चौकी बनाउ रङ्ग रेशम लगाउ
हीरा मोती माल मढ़ैया

(२) पालना श्याम झुलावति जननी

(३) कन्हैया हालरु रे

गढ़ि-गुढ़ि ल्यायौं बाढ़ई, धरनी पर डोलाइ, बलि हालरु रे
इक लख माँगे बाढ़ई, दुइ लख नँदजु देहि, बलि हालरु रे
रतन जटित बर पालनौ, रेशम लागी डोर, बलि हालरु रे
कबहुँक झूलै पालना, कबहुँ नन्द की गोद, बलि हालरु रे
झूलैं सखी झुलावहीं, सूरदास बलि जाइ, बलि हालरु रे

बड़े होने पर गोपियाँ कृष्ण को गोद में लेने को ललकती हैं—

नेकु गोपालै मोको दै री

देखौं कमल बदन नीके कर ता पाछे तू कनियाँ लै री

बालक उलट जाता है, मा का हृदय धन्य-धन्य हो उठता है—

महरि मुदित उलटाइ कै मुख चूमन लागी
चिरुजीवो मेरो लाड़िलो मैं भई सभागी

पालने में पड़े बालक को मा गा-गा कर सुलाती है—

जसोदा हरि पालनै झुलावै

हलरावै दुलरावै मलरावै जोइ-सोइ कछु गावै
मेरे लाल की आउ निदरिया, काहे न आनि सुवावै
तू काहे न वेगि सों आवै, तोको कान्ह बुलावै

और बालक की भी यह दशा है—

कबहुँ पलक हरि मूँद लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै
सोवत जननि मौन ह्वै ह्वै रहि, करि-करि सैन बतावै
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरै गावै

मा बालक को गोद में लेकर दूध पिलाती है और धाय को बुलाती है—

गोद लिए हरि कौ नँदरानी अस्तन पान करावति है
बार-बार रोहिनि कौं कहि-कहि पलिका अजिर मँगावति है
प्रात समय रवि किरन कोंवरी, सों कहि, सुतहिं बतावति है
आउ घाम मेरे लाल कै आँगन, बालकेलि कौं गावति है
रुचिर सेज ले गइ मोहन कौं भुजा-उछङ्ग सोवावति है
सूरदास प्रभु सोए कन्हैया हलरावति मल्हरावति है

बालक किलकने लगता है—

हरि किलकत जसुदा की कनियाँ

इससे माँ का मन अभिलाषाओं से भर जाता है—

नन्दघरनि आनन्दभरी सुत स्याम खिलावै
कबहुँ घुटुरुवनि चलहिंगे कहि बिधिहि मनावै
कबहुँ दँतुली द्वै दूध की देखौं इन नैननि ?
कबहुँ कमलमुख बोलिहैं सुनिहौं इन बैननि ?
मेरे नान्हरियाँ गोपाल बेगि बड़ो किन होहि ?
इहि मुख मधुरे बयन हो कब 'जननि' कहोगे मोहि ?

अब कृष्ण घुटने चलने लगते हैं—

माई विहरत गोपालराइ मनिमय रचे अंगनाइ
लरकत पटरिंग नाइ घुटुरुनि डोलै
निरखि निरखि अपनौ प्रतिबिम्ब हँसत किलक औ'
पाछैं चितै फेरि-फेरि मैया मैया बोलै

(भागवत के कृष्ण गलियों में खेलते हैं परन्तु सूर ने नंद को अत्यन्त ऐश्वर्यपूर्ण बना दिया है। वहाँ कृष्ण मणिमय आँगन में खेलते हैं और प्रतिबिम्ब से झगड़ते हैं।)

बालक के दाँत निकलते हैं—

सुत मुख देखि जसोदा भूली
* हरिषित देखि दूध की दँतियाँ प्रेममगन तन की सुधि भूली
बाहिर तैं तब नन्द बुलाये, देखौ धौं सुन्दर सुखदाई
तनक-तनक-सी दूधदँतुलिया, देखौ, नैन सफल करौ आई
आनँद सहित महर तब आए, मुख चितवत दोउ नैन अघाई
सूर श्याम किलकत द्विज देख्यौ मनो कमल पर बिज्जु जमाई

बालक तोतले बोल बोल कर माखन माँगता है—

खीझत जात माखन खात
अरुन लोचन, भौंह टेढ़ौ, बारबार जँभात
कबहुँ रुनझुन चलत घुटुरुनि, धूरिधूसर गात
कबहुँ झुकिकै अलक खैंचत नैन जल भरि जात
कबहुँ तोतरे बोल बोलत कबहुँ बोलत 'तात'
सूर हरि की निरखि शोभा निमिष तजत न मात

अभी बालक देहरी को लांघ नहीं पाता—

चलत देखि जसुमति सुख पावै
ठुमकि ठुमकि धरनीधर रेंगत जननिहिं खेल दिखावै
देहरी लौं चलि जात बहुरि कै फिरि इतहि को आवै
गिरि गिरि परत बनत नहिं नाघत सूरदास सुख पावै

नन्द अंगुली पकड़ कर चलाते हैं—

गहे अंगुरिया ललन की नंद चलन सिखावत
अरबराइ गिरि परत है कर टेकि उठावत

अंत में बालक चलने लगता है—

कान्ह चलत द्वै द्वै पग धरनी
जो मन में अभिलाष करत ही सो देखत नन्दघरनी

परन्तु देहरी पर अटकता है—अति श्रम होत नघावत। वह बोलने भी लगता है—

कहन लगे मोहन मैया मैया
पिता नन्द सों बाबा-बाबा अरु हलधर सों भैया

वह दही में मुख का प्रतिबिंब देखता है—

कलबल तें हरि आरि परे

× × ×

सूर श्याम दधि-भाजन भीतर निरखत मुख मुख तें न टरे

भाई से झगड़ता है—

कनक कटोरा प्रात ही दधि घृतहु मिठाई
खेलत खात खिरावहीं, झगरत दोउ भाई
अरस परस चुटिया गहैं बरजति है माई
महा ढीठ मानै नहीं, कछु लहर बड़ाई

अब वह माखन माँगता है (तनक दे री माइ माखन तनक दै री माइ) बालकों के संग घूमता है (विहरत विविध बालक संग। डगनि डगमग पगनि डोलत, धूरिधूसर अंग), चन्द्रमा के लिये झगड़ता है—

ठाढ़ी अजिर जसोदा अपनें हरिहि लिए
चन्द दिखावत। रोवत कत बलिजाउ तुम्हारी
देखौं धौं भरि नैन जुड़ावत

कृष्ण कहते हैं—'लगी भूख, चंद मैं खैहौं'। तब यशोदा कठिनाई में पड़ जाती है। अंत में उसे एक तरकीब सूझती है—

बासन में जल धर्यौ जसोदा हरि कौ आनि दिखावै
रुदन करत, ढूँढत, नहिं पावत, चंद धरनि क्यौं आवै

अब कृष्ण बड़ा हो गया है, पैरों चलने लगा है। मा नहलाने को बुलाती है—

जसुमति जबहिं कह्यो अन्हवावन रोइ गये हरि लोटत री
लेत उबटनो आगे दधि कहि लालहिं चोटत पोटत री
मैं बलि जाउ न्हाउ जनि मोहन कत रोवत बिन काजै री
पाछे धरि राखौ छपाइ कै उपटन तैल समाजै री
महरि बहुत बिनती करि राखत मानत नहीं कन्हाई री
सूर श्याम अति ही बिरुझाने सुनि सुनि अंत न पाई री

इसके बाद भी अनेक बाल-प्रसंग हैं। मा बालक को दूध पीना छुड़ाती है—

जसुमति कान्हहिं यहै सिखावति
सुनहु स्याम अब बड़े भए तुम कहि स्तन पान छुड़ावति
ब्रजलरिका तोहिं पीवत देखत हँसत लाज नहिं आवति
जैहैं बिगरि दाँत ये आछे तातैं कहि समुझावति
अजहूँ छाँड़ि, कह्यौ करि मेरौ, ऐसी बात न भावति
सूर श्याम यह सुनि मुसुक्याने, अंचल मुखहिं लुकावत

मा-बाप प्रातः बालक को जगाते हैं—

(१) प्रात समय उठि सोवत सुत को बदन उघार्यो नंद
रहि न सके अतिसय अकुलाने विरह निसा के द्वन्द

(२) भोर भये निरखत हरि को मुख प्रमुदित जसुमति हरषित नन्द
दिनकर किरन कमल ज्यों विकसत, निरखत उर उपजत आनन्द

(३) जागिये गोपाल लाल आनन्दनिधि नन्दबाल यशुमति कहै बारबार भोर भयो प्यारे। नैन कमल से विशाल प्रीति-वापिका मराल मदन ललित बदन ऊपर कोटि वारि डारे॥ उगत अरुन विगत शर्वरी शशांक किरनहीन दीन दीपक मलिन छीन द्युति समूह तारे॥ मनहुँ

ज्ञान घन प्रकाश बीते सब भव विलास आस त्रास तिमिर तोप तरनि तेज जारे ।। बोलत खग मुखर निखर मधुर ह्वै प्रतीत सुनहु परम प्राण जीवनधन मेरे तुम बारे ।। मनौं वेद बंदी मुनि सूतवन्द मागधगण विरद बदत जै जै जैत कैट भारे ।।

माता-पिता की पुत्रविषयक चिंता के इतने मार्मिक वर्णन और कहाँ मिल सकेंगे—

(१) साँझ भई घर आवहु प्यारे
दौरत कहा चोट लगिहै कहुँ पुनि खेलिहौ सकारे

(२) न्हात नन्द सुधि करो स्याम की ल्यावहु बोल कान्ह बलराम
खेलत बड़ी बार कहुँ लाई, ब्रजभीतर, काहू के धाम
मेरे संग आइ दोउ बैठें उन बिनु भोजन कैसे काम
जसुमति सुनत चली अति आतुर ब्रज घर घर टेरति लै नाम
आजु अबेर भई कहुँ खेलत बोलि लेहु हरि कौं कोउ बाम
ढूँढ़ि फिरी नहिं पावति हरि कौं, अति अकुलानी, तावति धाम

(३) आँगन में हरि सोइ गए री
दोउ जननी मिलि कै, हरुएँ करि, सेज सहित तब भवन लए री

कालियदमन, गोवर्धनलीला और मथुरागमन के समय माता-पिता की चिंता वात्सल्यवियोग के श्रेष्ठतम उदाहरणों के रूप में उपस्थित की जा सकती है।

सूर के बालवर्णन में भी भक्ति और अध्यात्म का समावेश है। वास्तव में जो यशोदा-नंद के लिये वात्सल्य रस है, वही सूर और भक्त के लिए भक्तिरस है। भक्तिरस क्या है, रस-गंगाधर के लेखक लिखते हैं—

भगवदालंबनस्य रोमांचाश्रुपातादिरनुभावितस्य हर्षादिभिः। पोषितस्य भागवतादि पुराण श्रवणसमय भगवद्भक्तरनुभूयमानस्य भक्तिरसस्य दुरपह्नवत्वात।

( भगवान जिसके आलंबन हैं, रोमांच, अश्रुपातादि जिसके अनुभाव हैं, भागवतादि पुराण श्रवण के समय भगवद्भक्त भक्तिरस के उद्रेक से जिसका अनुभव करते हैं, वही भगवद-नुरागरूपा भक्ति ही स्थायीभाव है )।

इसी भक्ति-भावना के कारण।

( १ ) सूर बालकृष्ण को "हरि" "धरनीधर" आदि नामों से पुकारते हैं।

( २ ) असुरलीला के वे सब प्रसंग जो भागवत में हैं अपनी कथा में भी रखते हैं जिनसे भगवान के ऐश्वर्य का गुणगान ही होता है।

( ३ ) अनेक विस्मयकारी घटनाओं को उपस्थित करते हैं जैसे पाँडेलीला, मुँह में मृत्ति रखकर नंद को विश्वदर्शन कराना, माटी-प्रसंग आदि।

( ४ ) वात्सल्य रस में अद्भुत रस का समावेश कर देते हैं जैसे कृष्ण के अंगूठा देने और मथानी लेने से प्रकृति में विक्षेप होने लगता है—

कर पग गहि-अंगुठा मुख मेलत

प्रभु पौढ़े पालने अकेले हरषि हरषि अपनै ढङ्ग खेलत
सिव सोचत, विधि बुद्धि बिचारत, बाट बाढ्यो सागर जल झेलत
बिडरि चले घन प्रलय जानि कै दिग्पति दिगदंतीनि सकेलत

जब मोहन कर गही मथानी

( ५ ) इसी प्रकार "हरिहरभेष" के वर्णन में भी भगवान के ऐश्वर्य का ही चित्रण है ( देखिये पद 'सखि री नंदनन्दनु देखु' और 'बरनौं बालवेष मुरारी' )।

( ६ ) सूरदास की यशोदा कृष्ण को रामकथा सुनाती हैं। जब सीताहरण की बात सुनते हैं, तो कृष्ण "लक्ष्मण" को

पुकारने लगते हैं। इस प्रकार सूर ने अद्भुत ढंग से रामावतार और कृष्णावतार को एक कर दिया है।

इनके अतिरिक्त सूरदास पग-पग पर नन्द-यशोदा के भाग्य को सराहते हैं। उन्होंने सहज प्राकृत वालक का चित्रण करते हुए भी कृष्ण की अलौकिकता की रक्षा की है। हमें यह समझ लेना चाहिये कि भक्तों की भावना में रसों के विरोध का परिहार हो जाता है। इसे न समझ कर हम भ्रम में पड़ जाते हैं। इसी से असुरवध के प्रसंग आदि अद्भुत रस और वीररस के प्रसंग उपस्थित नहीं करते, वरन् भगवत्निष्ठा को ही दृढ़ करते हैं और हम वाललीला में भगवान के और निकट पहुँच जाते हैं।

———

६

# सूरदास का शृङ्गार

कृष्ण-काव्य के शृङ्गार के आलंबन कृष्ण, गोपियाँ और राधा हैं, परन्तु सूरदास ने गोपियों को लेकर रूपक ही अधिक खड़े किये हैं, इसलिये उनको लेकर शृङ्गार को विकसित नहीं कर सके हैं। किसी भी गोपी का अपना विशेष व्यक्तित्व सूरसागर में विकसित नहीं हुआ है। जहाँ व्यक्तित्व ही नहीं है, वहाँ रूप-वर्णन और नखशिख कैसा? ललिता, चंद्रावली आदि राधा की सखियों के रूप में चित्रित हैं। उनका कृष्णलीला में वही स्थान है जो कृष्ण के संबन्ध में सुबल, सुदामा, आदि गोपों का। प्रसंगवश ललिता कहीं दूतीकर्म अवश्य करती है और कहीं बारी-बारी ये सब सखियाँ खंडिता बन जाती हैं और फिर कृष्ण के मानमोचन और संयोग का विषय चलता है, परन्तु इन कथाओं में शृङ्गार की परिपाटी का पूर्णतः पालन नहीं है। दूतीकर्म इतना विशद नहीं है, जितना विद्यापति में है, न सूर-सागर में उज्ज्वल नील मणि का दूती-विभाजन ही हुआ है। यह प्रसंग गौण है। दूसरी कथा तो कृष्ण के बहुनायकत्व के प्रदर्शन के लिए है जिसमें गोपियों का व्यक्तित्व कृष्ण के व्यक्तित्व से दबा हुआ है। इन कथाओं में शृङ्गारशास्त्र से सहारा लेते हुए भी सामग्री स्वतंत्र रूप से खड़ी की गई है। चीरहरण, पनघट प्रसंग, दानलीला, जलक्रीड़ा, बहुनायकत्व आदि प्रसगों में गोपियों के सौंदर्य की व्यंजना ही हो सकी है, उनका विशद नखशिख-वर्णन नहीं मिलेगा। कथा के स्वर शास्त्र के स्वर के

ऊपर बजते हैं। जहाँ सौन्दर्य-वर्णन है भी, वहाँ उपमान परंपरागत हैं—

गागरि नागरि जलभरि घर लीन्हे आवै
सखियन बीच भरयो घट शिर पर तापर नैन लचावै
ढुलित ग्रीव लटकटि नकवेसरि मंद मंद गति आवै
भृकुटी धनुष कटाक्ष बाण मनो पुनि पुनि हरिहि लगावै
जाका निरखि अनंग अनंगत ताहि अनंग पढ़ावै
सूरश्याम प्यारी छवि निरखत आपुहि धन्य कहावै
गागरि नागरि लिये पनिघट ते चली घरहि आवै
ग्रीवा डोलत लोचन लोलत हरि के चितहि चुरावै
ठिठकति चलै मटकि मुँह मोरै बंकट भौहें चलावै
मनहुँ कामसैना अँगशोभा अंचल ध्वज फहरावै
गति गयंद कुच कुम्भ किंकिनी मनहु घंट झहनावै
मोतिनहार जल्पजल मानों खुभी दंत झलकावै
मानहु चंद महावत मुख पर अंकुश वेसरि लावै
रोमावली सूंडि तिरनी लौं नाभि सरोवर आवै
पग जेहरि जंजीरनि जकरयो यह उपमा कछु पावै
घटजल छलकि कपोलनि किनुका मानहुँ मदहि चुवावै
वेनी डोलति दुहुँ नितंब हर मानहूँ पूँछ हिलावै
गजसरदार सूर को स्वामी देखि देखि सुख पावै

( पनघट-प्रसंग )

लेहौं दान इनन को तुम सों
मत्त गयंद हंस हम सोहैं कहा दुरावति तुम सो
केहरि कनक कलश अमृत के कैसे दूरै दुरावति
विद्रुम हेम वज्र के किनुका नाहिन हमें सुनावति
खग-कपोत कोकिला-कीर खंजनहुँ शुक-मृग जानति

मणि कंचन के चित्र जरे हैं एते पर नहिं मानति
सायक चाप तुरय बनि जति हौ लिये सबै तुम जाहु
चंदन चमर सुगन्ध जहाँ तहँ कैसे होत निबाहु

यह सुन चकित भई ब्रजबाला

तरुणी सब आपस में बूझति कहा कहत गोपाला
कहाँ तुरंग कहाँ गज केहरि कहाँ हंस सरोवर सुनिये
कंचन कलश गढ़ाये कब हम देखे धौं यह गुनिये
कोकिल कीर कपोत बनन में मृग खंजन शुक संग
तिनको दान लेत हैं हमसों देखहु इनको रंग
चंदन चौंर सुगध बतावत कहाँ हमारे पास
सूरदास जो ऐसे दानी देखि लेहु चहुँ पास

प्रगट करौ सब तुमहिं बतावें

चिकुर चमर घूँघट है बरबर भुव सारंग दिखावैं
बाण कटाक्ष नयन खंजन मृग नासा शुक उपमाउ
तीखन चक्र अधर विद्रुम छबि दशन बज्र कनकाउ
ग्रीव कपोत कोकिला बाणी कुचघट कनक सुभाउ
जोवन मदरस अमृत भरे हैं रूप रंग झलपाऊ
अंग सुगंध बसन पाटंबर गनि गनि तुमहिं सुनाउँ
कटि केहरि गयंदगति शोभा हंस सहित यकताउँ

(दानलीला)

अन्य प्रसंगों में राधा के नखशिख और सौन्दर्य चित्रण में सखियों के सौन्दर्य की व्यंजना हो जाती है या कथा को इतना अवकाश ही नहीं मिलता। सच तो यह है कि सूर ने गोपियों को आलंबन रूप में चित्रित नहीं किया है—यदि थोड़ा-बहुत चित्रित भी किया है तो कथा-प्रसंग आदि रूपकों की सिद्धि के लिये। अतः सूरसागर में गोपियों का नखशिख लगभग नहीं मिलता।

गोपियों का सामूहिक व्यक्तित्व और कवि का अध्यात्म इसमें बाधक होता है। गोपियाँ तो राधा का विकीर्ण-रूप ही हैं। उनकी सार्थकता तो यही है कि वे राधा के प्रेम को आदर्श मानें और राधा-कृष्ण की युगललीला के आनन्द में आत्मसमर्पण कर दें। वे कृष्ण के नखशिख पर, उनकी प्रत्येक झाँकी पर रीझ कर राधा की दशा को प्राप्त करने की चेष्टा करें इस आसक्ति के नाते ही उनमें विरह-भाव की अन्यतम प्रतिष्टा हो सके।

अतः गोपियों-कृष्ण का शृङ्गार बहुत कुछ एकांगी है। गोपियाँ कृष्ण के अंगप्रत्यंग पर रीझी हैं। उनमें प्रेमविकास का सुन्दरतम चित्रण कवि का ध्येय है। परन्तु नायक कृष्ण तो शुद्धाद्वैत के ब्रह्म ठहरे जो सर्वदा लिप्त होते हुए भी अलिप्त हैं। वे किस प्रकार गोपियों के प्रेम में भूल जाते! इसीलिये हमें गोपियों के प्रति कृष्ण की उत्कंठा, प्रेम और विरह का एक भी चित्र नहीं मिलेगा। गोपियों का प्रेम जब तन्मयासक्ति को पहुँच जाता है तो कृष्ण उनको भी प्राप्त होते हैं, उनसे संयोगलीला चलाते हैं- (देखिये जलक्रीड़ा, रास, खण्डिताप्रसंग, बसंत, हिंडोल) परन्तु फिर भी वे तो विरुद्ध धर्माश्रय ठहरे। अतः उनमें गोपियों के प्रति सहज आकर्षण की प्रतिष्टा नहीं हुई है। इसके अतिरिक्त प्रेमी के लिये व्यक्तित्व ही प्रधान है। गोपियों में व्यक्तित्व कहाँ है? वे १६ हजार हैं, परावस्था को पहुँच कर कृष्ण के रस को प्राप्त अवश्य कर सकती हैं, परन्तु कृष्ण के सतत विकसित प्रेम की पात्री कैसे बनें? स्पष्ट है कि सूर ने गोपियों को लेकर शृङ्गार-त्मक नहीं खड़ा किया, केवल धर्मभाव की सुन्दरतम अभिव्यक्ति की है। जो सूर को लांच्छना देते हैं, वे इस दृष्टिकोण से सूरसागर को देखें।

परन्तु राधाकृष्ण के संबन्ध में यह बात नहीं है। राधा में व्यक्तित्व का सुन्दर विकास हुआ है। सूर ने इस विकास की

रूपरेखा अत्यन्त विभिन्न और विस्तृत दी है। राधा-कृष्ण का प्रेम एकांगी नहीं है। इसी से दोनों के नखशिख की योजना है। कृष्ण का नखशिख-चित्रण गोपियों और राधा दोनों के दृष्टिकोणों से हुआ है। इस भूमिका को समझ कर ही आगे बढ़ना उचित होगा। गोपियाँ और राधा दोनों कृष्ण के सौन्दर्य पर मुग्ध हैं परन्तु कवि के दृष्टिकोण के कारण दोनों के कृष्ण के प्रति दृष्टि-कोण में अंतर पड़ जाता है। राधा के प्रेम का कहना ही क्या, वह तो एकदम रहस्यात्मक है, अलौकिक है, परन्तु गोपियों का प्रेम इतनी ऊँचाई तक उठ ही नहीं सकता। गोपियों में शृङ्गार भाव माखनचोरी के प्रसंग से शुरू होता है—

मैया री मोहि माखन भावै
मधुमेवा पकवान मिठाई मोहि नहीं रुचि आवै
ब्रजयुवती इक पाछे ठाढ़ी सुनति श्याम की बात
मन में कही कबहुँ मेरे घर देखों माखन खात
*बैठे जाय मथनियाँ के ढिग मैं तब रही छिपानी*
सूरदास प्रभु अंतरयामी ग्वालि मनहिं की जानी

इस पद में आध्यात्मिक अर्थ का शृङ्गार से जोड़ मिला दिया गया है। यहीं से कृष्ण का शृङ्गार रसपूर्ण चित्रण होता है और उसका आलंबन—कृष्ण का किशोर सौन्दर्य—हमारे सामने आता है—

गोपाल दुरे हैं माखन खात
देखि सखी सोभा जु बनी है श्याम मनोहर गात
उठि अवलोकि ओट ठाढ़े है जिहि विधि है लखि लेत
चकृत बदन चहुँ दिशि चितवत और सखन को देत
सुन्दर कर आनन समीप अति राजत इहि आकार
मनो सरोज बिधु बैर बेचिकरि लिये मिलत उपहार

गिरि गिरि परत बदन के ऊपर है दधिसुत के बिंदु
मानहु सुभग सुधाकन बरषत त्रिजगौ आगम इन्दु

यही गोपी का भी चित्रण है जिससे कवि कृष्ण में यौन मनोवृत्ति के आरंभ का संकेत करता है—

मथति ग्वालि हरि देखा जाइ
गये हुते माखन की चोरी छवि रहे नयन लगाइ
डोलत तनु शिर अंचल उघर्‍यो बेनी पीठि डोलत पाइ
बदन इंदु पय पान करन को मनहुँ उरग उठि लागत धाइ

जब यशोदा कृष्ण को रस्सी से बाँध देती है, तो गोपियाँ व्याकुल होकर कृष्ण की रोती हुई छवि पर रीझ जाती हैं—

मुख छवि देखिहो नंदघरनि
शरद निशि के अंशु अगणित इंदु आभा हरनि
ललित श्रीगोपाल लोचन लोल आँसू दरनि
मनहुँ वारिज बिलखि विभ्रम परे परवश परनि
कनक मणिमय मकर-कुण्डल ज्योति जगमग करनि
मित्र लोचन मनहु आये तरल गति दोउ तरनि
कुटिल कुन्तल मधुर मिलि मनौ कियौ चाहत लरनि
बदन कांति अनूप शोभा सकै सूर न बरनि

हरि मुख देखिहौं नँदनारि
महरि ऐसों सुभग सुतसों इतो कोह निवारि
जलज मंजुल लोल लोचन शरद चितवनि दीन
मनहुँ खेलत है परस्पर मकरध्वज द्वै मीन
ललित कण संयुत कपोलनि ललित कज्जल अंक
मनहुँ राजत रजनि पूरन कला अति अकलंक

गोपियाँ कृष्ण की प्रत्येक छवि पर मुग्ध हैं—उनकी वाणी थकती ही नहीं नेत्र थकते ही नहीं।

चकई-भौंरा-प्रसंग में राधा-कृष्ण का प्रथम परिचय होता है। इस छवि पर गोपियाँ भी मोहित हैं—

मेरे हियरे माँझ लगौ मनमोहन ले गयो मन चोरी
अबहीं इहि मारग ह्वै निकसे छवि निरखत दृग तोरी
मोर-मुकुट श्रवणन मणि-कुण्डल उर वनमाला पीत पिछोरी
दशन चमक अधरन अरुणाई देखत परी ठगोरी

इस प्रसंग में सूर राधा के दृष्टिकोण से कृष्ण का चित्रण नहीं करते—वहाँ प्रेम प्राकृत रूप से आप ही जन्म ले लेता है। फिर प्रसंगवश जहाँ गोपियों और कृष्ण का मिलन होता है, वही कृष्ण का सौन्दर्य-वर्णन जैसे आवश्यक हो जाता है—

नँदनँदन वर गिरिवरधारी। देखत रीझीं घोषकुमारी
मोर-मुकुट पीताम्बर काछे। आवत देखे गाइन पाछे
कोटि इन्दु छवि वदन विराजै। निरखि अंग प्रति मन्मथ लाजै
रवि शत छवि कुण्डल नहिं दूलै। दशन-दमक द्युति दामिनि भूलै
नैन कमल मृगशावक मोहै। शुकनासा पटतर को कोहै
अधर बिम्बफल पठतर नाहीं। विद्रुम अरु बंधूक लजाहीं

(चीरहरणलीला)

हौं गई ही जमुन जल लेन माई हो साँवरे से मोही॥ सुरङ्ग केसरि खौरि कुसुम की दाम अभिराम कंठ कनक की दुलरी झलकत पीतांबर की खोही॥ नान्ही नान्ही बूँदन में ठाढ़ो ही बजावै गावै मलार की मीठी तानैं मैं तो लाला की छवि नेकहु न जोहै॥ सूरश्याम मुरि मुसकानि छवीरी अँखियन में रही तब न जानौं हौं कोही॥

चटकीलो पट लपटानो कटि बन्सीवट यमुना के तट नागर भट। मुकुट लटकि अरु भृकुटि मटक देखै कुण्डल की चटक सों अटकि परी दृगनि लपट॥ आछो चरणनि कंचन लकुट टरकौली बनमाल कर टेके द्रुम डगर टेढ़े ठाढ़े नंदलाल छवि छाई घट घट। सूरदास प्रभु

की बानक देखे गोपीग्वाल टारे न टरत निपट आवै सौंधे की लपट ॥

(पनघटलीला)

पनघटलीला के बाद राधा सखियों के तानों का उत्तर देती हुई कहती है कि उसने कृष्ण को देखे ही नहीं, इसीसे अगली ग्रीष्म-लीला में कृष्ण का अत्यंत सुन्दर चित्रण है—

यमुना जल विहरत ब्रजनारी
तट ठाढ़े देखत नंदनंदन मधुर मुरलि कर धारी
मोर मुकुट श्रवणन मणि कुण्डल जलजमाल उर भ्राजत
सुन्दर सुभग श्याम तनु नवघन विच बगपाँति विराजत
उर बनमाल सुभग बहु पांतिनु श्वेत लाल सित पीत
मानों सुरसरि तट बैठे शुक बरन बरन तजि मीत
पीताम्बर कटि में छुद्रावलि बाजत परम रसाल
सूरदास मनों कनक भूमि ढिग बोलत रुचिर मराल

नटवर भेष काछे श्याम
पद कमल नख इंदु शोभा ध्यान पूरण काम
जानु जंघ सुघटनि करयो नाहिं रम्भा तूल
पीत पट काछनी मानहु जलज केसर भूल
कनक छुद्रावली पङ्क्ति नाभि कढ़ि के भीर
मनहूँ हँस रसाल पङ्क्ति रहे हैं ह्रदतीर
झलक रोमावली शोभा ग्रीव मोतिन हार
मनहुँ गंगा बीच यमुना चली मिलि त्रिय धार
बाहु दण्ड विशाल तट दोउ अंग चंदनु रेनु
तीरतरु बनमाल की छबि ब्रजयुवति सुखदेनु
चिबुक पर अधरनि दशनद्युति बिम्बु बीज लजाइ
नासिका शुक नयन खंजन कहत कवि शरमाइ

श्रवण कुण्डल कोटि रवि-छवि भृकुटि कामकोदंड
सूर प्रभु हैं नीप के तर शीश धरे श्रीखंड

ऐसे ही कितने उत्कृष्ट पद इस प्रसंग में हैं। सखियाँ और राधा इस रहस्यात्मक सौन्दर्य को देख कर मुग्ध हैं। इस प्रसंग के रूपवर्णन के पीछे सूर का दृष्टिकोण क्या है, यह हम पीछे लिखेंगे। यहाँ राधा के दृष्टिकोण से सूर का एक पद देकर आगे बढ़ते हैं—

थकति भई राधा ब्रजनारि
जो मन ध्यान करति अवलोकन ते अंतर्यामी बनवारि
रत्नजटित पग सुभग पाँवरी नूपुरध्वनि कल परम रसाल
मानहु चरण-कमल-दल लोभी निकटहि बैठे बाल मराल
युगल जंघ मरकत मणि शोभा विपरित भाँति सँवारे
कटि काछनी कनक छुद्रावलि पहिरे नंददुलारे
हृदय विशाल माल मोतिन बिच कौस्तुभमणि अति भ्राजत
मानहु नभ निर्मल तारागन ता मधि चंद्र विराजत
दुहुँ कर मुरलि अधर परसाये मोहन राग बजावत
चमकत दशन मटकि नासापुट लटकि नयन मुख गावत
कुण्डल झलक कपोलनि मानो मीन सुधासर क्रीड़त
भृकुटी धनुष नैन खंजन मनो उड़त नहीं मन ब्रीड़त
देखि रूप ब्रजनारि थकित भई क्रीट मुकुट शिर सोहत
ऐसे सूरश्याम शोभानिधि गोपीजन मन मोहत

अनुराग-समय के ये पद राधा के मुख से कहाये गये हैं और ये उसी प्रकार राधा के प्रेम के चित्र उपस्थित करते हैं जिस प्रकार भ्रमरगीत के पद गोपियों के प्रेम के अभिव्यंजक हैं।

रास-प्रसंग, जलक्रीड़ा और वसंत लीलाओं में राधाकृष्ण के युगल सौन्दर्य का साथ-साथ अनेक परिस्थितियों में चित्रण है। कवि को कुछ भी अग्राह्य नहीं है। पास बैठे हुए राधाकृष्ण

से लेकर सुरति और सुरतांत के चित्र तक निःसंकोच भाव से उपस्थित कर दिये गये हैं :—

किशोरी री अंग भेंटी शामहिं

कृष्णतमाल ताल भुज शाखा लटकि मिली जैसे दामहिं
अचरज एक लता गिरि उपजै सोउ दीने करुणमहिं
कछुक श्यामता साँवल गिरि की छायो कनक अगामहिं

रसना युगल रसनिधि बोल

कनक बेलि तमाल अरुझी सुभुज बंधन खोलि
भृंगयूथ सुधाकरनि मनो घन में आवत जात
सुरसरी पर तरनितनया उमँसि तट न समात
कोननद पर तरनि ताण्डव मीन खंजन संग
करत लाजै शिखर मिलि के युग्य संगम रङ्ग
जलद ते तारा गिरत मनो परत पयनिधि माहिं
युग भुजङ्ग प्रसन्न मुख ह्वै कनकघट लपटाहिं
कनकसंपुट कोकिलारव विवश ह्वै दे दान
विकच कञ्ज अनार लगि अधरलसि करत पयपान
दामिनी थिर घनघटा पर कबहुँ ह्वै एहि भाँति
कबहुँ दिन उद्योत कबहूँ होत अति कुहुराति

(संयोगचित्र)

वहाँ जोरी निकसे कुञ्ज ते प्रात रीझि रीझि कहैं बात कुण्डल झलमलात झलकत विविगात चकचौंधी-सी लागति मेरे इन नैननि आली रपटत पग नहिं ठहरात। राधा मोहन बने घन-चपला ज्यों चमकि चमकि मेरी पूतरीन में समात सूरदास प्रभु कै वै बचन सुनहु मधुर मधुर अब मोहि भूली री पाँच सात।

(प्रातः कुञ्ज से निकलना)

अरुझि रहे मुकुताहल निखारत सोहत घूँघर वारे बार
रति मानो सँग नँदनंदन कै छूटे बंद कंचुकी टूटे हार
निशि के जागे दोउ नैन ठटकि रहे चलति जोबन मद भार
सूर श्याम सँग इह सुख देखत रीझे बारम्बार
(प्रातः)

श्यामा श्याम सुभग यमुना जल निर्भ्रम करत विहार
पीत कमल इंदीवर पर मनो भौरहि नए विहार
श्रीराधा अंबुज कर भरि भरि छिरकत बारम्बार
कनकलता मकरन्द झरत मनु हालत पवन-सँचार
अतसी कुसुम कलोर बूँदै प्रतिबिंबित निरधार
ज्योति प्रकाश सुघन में खोलत स्वाति सुवन आकार
धाइ धरे वृषभानु-सुता हरि मोहे सकल शृङ्गार
विद्रुम जलद सूर मनों विधु मिलि स्रवत सुधा की धार
(जलविहार)

सूर के काव्य को साधारण पाठक शृङ्गार से लांछित समझते हैं और यह तो कितने ही आलोचक मानते हैं कि सूर रीतिशास्त्र से प्रभावित हैं या परवर्ती रीतिकाव्य को उनसे विशेष सहारा मिला है। यहाँ हमें सूर के शृङ्गार पर ही विचार करना है।

सूर का शृङ्गार गोपी-कृष्ण और राधा-कृष्ण को लेकर चलता है। अतः इनमें से प्रत्येक को अलग-अलग लेंगे। दोनों की कथायें पहले दे चुके हैं।

राधाकृष्ण की कथा रीतिशास्त्र की उपेक्षा करके स्वतंत्र रीति से गढ़ी गई है। उस पर जयदेव या विद्यापति का प्रभाव बहुत ही थोड़ा है। जयदेव (या ब्रह्मवैवर्त्त कहिये) से प्रेम-जन्म-प्रसंग ले लिया गया है, लेकिन प्रथम मिलन की कल्पना

नए ढंग से की गई है। विद्यापति का काव्य रीति पर खड़ा है—पूर्वराग, वयःसंधि, मिलन, अभिसार, मान, दूती, मानमोचन, पुनर्मिलन, विरह। सूर ने इस क्रम को नहीं रखा है। उन्होंने कथा को अत्यंत स्वाभाविक ढंग से विकसित किया है। यह हम देख चुके हैं। सूर में राधा का पूर्वराग और वयःसंधि नहीं है। राधा को हठ कर अष्टनायिका के रूप में चित्रित नहीं किया गया है यद्यपि प्रसंगवश नायिकाभेद आ अवश्य जाता है। राधा कई बार यशोदा के घर आती है, परन्तु इसे अभिसार नहीं कह सकते। सूर उसकी वेषभूषा, अभिसार की कठिनाइयों आदि का वर्णन नहीं करते। न अवसर के अनुसार अभिसारिका का भेद करते हैं। वास्तव में राधा का अभिसार-चित्रण सूर का ध्येय नहीं है। कथा के सहज विकास में राधा कई बार कृष्ण से स्वयं प्रयत्न करके मिलती है। एक बार तो हार खोजने के बहाने ही मिलती है। ऐसे ही रास के प्रसंग में भी अभिसार का चित्रण नहीं हुआ है। सूर की राधा और गोपियाँ अनेक परिस्थितियों में कृष्ण से मिलती हैं, परन्तु इस मिलन के पीछे अभिसार की योजना नहीं होती। मानप्रसंग में जहाँ सखी स्पष्ट कहती है—"चलो किन मानिनि कुंज कुटीर" वहाँ भी सूर अभिसार को शास्त्रीय विधि से नहीं लिखते वरन् उत्प्रेक्षाएँ लिख कर रह जाते हैं—

मनो गिरिवर ते आवति गङ्गा
राजत अति रमणीक राधिका यहि विधि अधिक अनूपम अंगा
गौरगात द्युति विमल वारिनिधि कटितट त्रिवली तरल तरङ्गा
रोमराशि मनो यमुन मिली अध भँवर परत मानो भ्रुवभङ्गा
भुजबल पुलिन पास मिलि वैठे चारु चक्कवै उरज उतङ्गा
मनो सुख मृदुल पाणि पंकरूह गुरुगति मनहूँ मराल विहङ्गा
मणिगण भूषण रुचिर तीरवर मध्यधार मोतिन में मङ्गा

सूरदास मनो चली सुरसरी श्री गोपाल-सोरि सुख सङ्गा ॥

संयोग-चित्रण के अनेक प्रसंग हैं—बाला, गोप, गाय-दुहव, रास, जलक्रीड़ा, कुंजलीला, दानलीला, हिंडोल, होली, वसंत, फाग, कुरुक्षेत्र-मिलन। रीतिशास्त्र में संयोग के संबंध में विशेष विस्तार नहीं है। सूर ने विस्तार-पूर्वक संयोग क्रीड़ाओं का वर्णन किया है, परन्तु स्थूल-स्थूल संयोग के चित्रण ( सुरति, विपरीत आदि ) भी आ गये हैं। कृष्ण-राधा को कामकलाविशारद चित्रित किया गया है। लगभग सभी स्थानों पर एक ही तरह की हाथापाई और सुरति का वर्णन है। सूर के काव्य पर लांछना इन्हीं प्रसंग के कारण है। सूर पर तीन दोष आते हैं:

( १ ) बालावस्था में शृङ्गार की कल्पना,

( २ ) गर्हित शारीरिक मिलन और उसके अनुभावों का विशद वर्णन,

( ३ ) विपरीत;

परन्तु हम जानते हैं कि मिलन-प्रसंगों में सूर परम्परा से प्रभावित हैं—

(१) नायक नायिका का रूप धर लेता है, नायिका नायक का रूप धर लेती है।

(२) नायक दूती के रूप में भेष बदल कर आता है ( देखिये गर्गसंहिता )।

(३) नायक अनेक प्रकार प्रच्छन्न रूप में नायिका से मिलता है। बाल्यावस्था में शृङ्गार की कल्पना के पीछे धार्मिक और आध्यात्मिक भावना है जिसकी विवेचना हम पहले कर चुके हैं। सूर ने शृङ्गाररति को नहीं, वरन् आध्यात्मिक रति को अपना विषय माना है। वह एक साथ वात्सल्यरति के उपासक नंद-यशोदा और मधुररति की भक्त गोपियों का चित्रण कर रहे हैं।

गोपियाँ कृष्ण को सर्वदा यौवन प्राप्त देखती हैं; यशोदा उनके वयप्राप्त हो जाने पर भी उन्हें बालक मानती हैं। यह है शुद्धाद्वैती दृष्टिकोण। सूर साहित्य का पाठक इस विचित्र दृष्टिकोण के कारण ही भ्रम में पड़ जाता है। वह नहीं समझ पाता कि बालक कृष्ण किस प्रकार गोपियों में प्रेम-वासना प्रदीप्त कर सकते हैं। एक ही साथ दो भिन्न दृष्टिकोणों के भक्तों के आराध्य का चित्रण होने के कारण ही यह भ्रामक परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। यदि केवल शृङ्गारशास्त्र के दृष्टिकोण से देखा जाय तो सूरदास अवश्य ही दोषी ठहरेंगे परन्तु जब सूर स्पष्टतः आध्यात्मिक अभिप्राय की अपेक्षा रखते हैं तो हम उनके काव्य को लौकिक भूमि पर उतार कर उनके साथ अन्याय करते हैं।

गर्हित शरीर-मिलन और उसके अनुभावों का चित्रण सूर के लिये ठीक ही लांछना है। यहाँ वे ब्रह्मवैवर्त्त पुराण और जयदेव की परम्परा का पालन कर रहे हैं। विपरीत रति के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है। हमें यह समझ लेना चाहिये कि अकेले सूर ही इन दोषों के दोषी नहीं हैं। दम्पति के केलि-विलास को हरिदास और हितहरिवंश भी इसी रूप में उपस्थित कर चुके थे। इस प्रकार का संयोग-चित्रण उस युग की कृष्ण-भक्ति की सामान्य प्रवृत्ति के भीतर आ जाता है। रीतिशास्त्र की दृष्टि से दैहिक मिलन और उसके अनुभावों का वर्णन अवश्य ही वर्ज्य है। इससे वासना के सिवा किसी भी बड़ी चीज की सृष्टि नहीं हो सकती।

सूरसागर में आलंबन के सौन्दर्य और उद्दीपन का विशद वर्णन मिलेगा। इनके विषय में सूर प्राचीन काव्यरूढ़ियों और परिपाटियों का बड़ी सतर्कता और तत्परता के साथ पालन कर रहे हैं।

विप्रलंभ में मान के कई प्रसंग हैं। इनमें तीन सहेतु हैं और एक निर्हेतु कारणाभास जहाँ राधा कृष्ण के हृदय में प्रतिबिंब देख कर ही मान करने लगती है। शृङ्गारशास्त्र के ढंग से मान-मोचन के लिये दूती की योजना भी है। मानमोचन के कुछ ढंग शास्त्रीय हैं, कुछ मौलिक। इनके अतिरिक्त सूर ने राधा के भवन-प्रवास का वर्णन किया है परन्तु उतनी विशदता से नहीं, जितनी विशदता से गोपियों का, यद्यपि जो है. वह वड़ा मार्मिक है।

संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि राधाकृष्ण के प्रेम-प्रसंग के चित्रण में सूरदास ने काव्यशास्त्र को अपना आधार नहीं माना है। उन्हें प्रेरणा भी काव्यशास्त्र से नहीं मिली है। परन्तु आध्यात्मिक अर्थ की पुष्टि के लिये उन्होंने कुछ ऐसे प्रसंग रचे हैं जो शृङ्गारशास्त्र के अंग हैं जैसे मान, खंडिता। इनमें रीतिकाव्य का सहारा लेना आवश्यक था। इसी से इन प्रसंगों पर रीतिशास्त्र की स्पष्ट और व्यापक छाप है। आलंवन के सौन्दर्य-वर्ण में रीतिशास्त्र की मान्यताओं को मान लिया गया है। सूरसागर का वड़ा भाग आलंवन के सौन्दर्य-वर्णन से भरा है। इससे यह भ्रांति होती है कि सूर शृङ्गारकाव्य ही रच रहे हैं। वस्तुतः वात ऐसी नहीं है। राधाकृष्ण का सौन्दर्य प्रकृत स्त्री-पुरुषों के सौन्दर्य से अधिक पूर्ण, अतः रहस्यमय है, परन्तु सूर एकदम शास्त्र की मान्यताओं की उपेक्षा किस प्रकार कर सकते थे? स्त्री-अंगों के उपमानों के संवंध में एक महान् प्रपंच खड़ा हो गया था। उसके वाहर से रचना कैसे हो सकती थी? संयोग-शृङ्गार में भी शृङ्गारशास्त्र का विशेष प्रभाव नहीं। अधिक प्रसंग मौलिक हैं। विप्रलंभ और उद्दीपन में अवश्य सूरदास के सामने शास्त्र और परंपरा है।

परन्तु गोपियों के संवंध में परिस्थिति दूसरी है। गोपियों को लेकर सूर ने रूपक खड़े किये हैं, लीला-गान उद्देश्य नहीं है, चाहे

बाद के कवियों में इन्हीं लीला को विषय ही बना लिया गया हो। अतः शृङ्गार की प्रेरणा और भी क्षीण हो जाती है।

आलंबन के रूप में कृष्ण के सौन्दर्य का विशद वर्णन है, परन्तु गोपियों का वर्णन बहुत कम है। दानलीला आदि के प्रसंगों में थोड़ा वर्णन है, परन्तु वैयक्तिक नहीं, अतः महत्त्वपूर्ण भी नहीं। सब गोपियाँ एक ही प्रकार सुन्दरी हैं—सब के अंगों के लिये एक ही उपमान एक ही ढंग से प्रयोग में आते हैं।

संयोग-शृङ्गार के संबंध में परिस्थिति वही है जो राधा-कृष्ण के विषय में पहले लिख आये हैं। अभिसार का विशेष चित्रण नहीं है। परिस्थिति के अनुसार कुछ गोपियों को वासकसज्जा, उत्कंठिता, विप्रलब्धा और खंडिता अवश्य चित्रित किया गया है। कहलंतारिता नहीं है। प्रोषित-भृतिका भी नहीं। स्वाधीनपतिका भी नहीं। भागवत की तरह कह तो दिया है कि कृष्ण ने रास में गोपियों को वरण किया था, परन्तु गोपियाँ वास्तव में प्रेमिका-मात्र ही रह गई हैं यद्यपि कुछ गोपियों से संभोग का भी वर्णन है। खंडिता-प्रसंग में कुछ गोपियों के मान का चित्रण है। दूर और अदूर प्रवास में गोपियों का विप्रलंभ विशद रूप से चित्रित किया गया है। भूत प्रवास नहीं है। सूर ने गोपियों में अनुराग की पूर्णता खूब दिखाई है। रूपानुराग, आपेक्षानुराग और रसोद्गार के लिये ही कई प्रसंगों की योजना की गई है, परन्तु इनका शृङ्गारशास्त्र से कोई संबंध नहीं। ये मौलिक योजनाएँ हैं। नयन और मन के प्रति कहे पद भी इसी श्रेणी के हैं। साधारण रूप से नेत्रों का आलंबन रूप से वर्णन शृङ्गार के अंतर्गत आ सकता है, परन्तु अपने नयनों के प्रति गोपियों की उक्तियाँ आपेक्षानुराग के भीतर ही आयेंगी।

गोपीविरह में विप्रलंभ की सभी दशाओं के दर्शन होते हैं। इस अवसर पर पत्र और दूत की भी योजना है जो शृङ्गार-काव्य

के आवश्यक अंग हैं। भागवत में उद्धव को दूत नहीं चित्रित किया गया, पत्र का तो नाम भी नहीं है। परन्तु सूर में स्पष्टतः शृङ्गार की अन्तर्धारा वह रही है। दूत (उद्धव) के आने पर गोपियों में प्रिय की स्मृति तीव्र हो जाती है, उनका हृदय व्यथा से भर जाता है—

तरुणी गईं सब बिलखाइ
जबहिं आए सुने ऊधो अतिहिं गईं झुराइ
परी व्याकुल जहाँ यशुमति गईं तहँ सब धाय
नीर नयनन बहत धारा लईं पोंछि उठाय
× × ×
भली भई हरि सुरति करी
पाती लिखि कछु श्याम पठायो यह सुनि मनहिं ढरी

पाती के संबंध में अतिशयोक्ति है—

कोउ ब्रज बाँचत नाहिंन पाती।
कत लिखि पठवत नँदनंदन कठिन विरह की काँती
नैन सजल कागज अति कोमल कर अँगुरी अति ताती
परसे जरे बिलोके भीजै दुहूँ भाँति दुख भाती

यहाँ स्पष्ट ही कवि की कल्पना रीतिशास्त्र के साहित्य द्वारा परिचालित हुई है। यही बात विप्रलंभ की उक्तियों में और भी स्पष्ट हो जाती है। सूर ने ऋतुओं आदि को स्पष्टतः उद्दीपन के रूप में रखा है—

अब वर्षा को आगम आयो
ऐसे निठुर भये नंदनन्दन संदेशो न पठायो
बादर घोर उठे चहुँदिश ते जलधर गरज सुनायो
एकै शूल रही जिय मेरे बहुरि नहीं ब्रज छायो
दादुर मोर पपीहा बोलत कोकिल शब्द सुनायो

सूरदास के प्रभु सों कहियो नैनन है भर लायो
(वर्षा)

शरद समैहू श्याम न आए
को जाने काहेते सजनी कहुँ विरहिन बिरमाए
अमल अकास कास कुसुमिन क्षिति लक्षण स्वाति जनाए
सर सरिता सागरजल उज्ज्वल अलिकुल कमल सुहाए
अहि मयङ्क मकरन्द कंददुति दाहक गरल जिवाए
त्रिय सब रङ्ग संग मिलि सुन्दरि रचि रचि सींच सिराए
सूनी सेज तुपार जमत चिरहास चन्दन वाए
अबलहिं आश सूर मिलिबे की भए व्रजनाथ पराए
(शरद)

रीतिपरम्परा के अनुसार "चन्द के प्रति" कहे पद भी मिलते हैं जैसे—

(१) छूटि गई शशि शीतलताई
मनु मोहि जारि भस्म कियो चाहत साजत मनों कलंक तनुकाई
(२) कर धनु लिए चन्द्रहि मारि
तब तोपै कछुवै न सिरैहै जब अति ज्वर जैहै तनु जारि
(३) हर को तिलक हरि बिनु दहत

इन स्थलों के सिवा संचारी भावों में रीतिशास्त्र का व्यापक प्रभाव मिलता है। सूर के काव्य में विप्रलंभ शृङ्गार के सभी संचारियों का अनेक बार प्रयोग हुआ है, परन्तु हमें यह समझ लेना चाहिये कि सूरदास संचारियों को सामने रखकर काव्यरचना में प्रवृत्त नहीं हुए थे। जो हो, सूर के काव्य से संचारी भावों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिये काफ़ी सामग्री मिल जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राधाकृष्ण और गोपी-कृष्ण

दोनों प्रेमकथायें कवियों और गायकों की रचनाएँ हैं। राधा का तो भागवत में उल्लेख भी नहीं, यद्यपि राधा शब्द का प्रयोग अवश्य है। कदाचित् इसी प्रयोग को लेकर "राधा" की सृष्टि की प्रेरणा हुई। सूर की राधाकृष्ण की कथा ब्रह्मवैवर्त पुराण, गर्गसंहिता, जयदेव और विद्यापति की कथाओं को स्वीकार करके आगे बढ़ती है, वस्तुतः उनकी कथा में अद्भुत पूर्णता है। उसकी स्थापना मौलिक खंडकाव्य के रूप में हुई है और उस पर रीतिशास्त्र का कुछ भी प्रभाव नहीं है। गोपीकृष्ण की कथा आध्यात्मिक भूमि पर प्रतिष्ठित है। परन्तु कुछ अंशों में स्पष्टतः रीतिशास्त्र से सहारा लिया गया है। इससे कथा और भी हृदय-ग्राहक हो गई। राधा के संबंध में कुछ सामग्री सूर को मिली भी, परन्तु गोपियों और कृष्ण का संबंध उनका अपना निर्माण किया है। भागवत की गोपियों में बालकृष्ण के प्रति रति नहीं है, न कृष्ण की गोपियों से कामकेलि का उल्लेख है। केवल चीर-हरण, रास और गोपिका-विरह ही भागवत में है। इन स्थलों के अतिरिक्त अनेक स्थल सूर ने स्वयं आविष्कार किये हैं। उन्होंने गोपियों और कृष्ण के संबन्ध को भागवत की अपेक्षा कहीं अधिक बृहद् चित्रपटी पर रखा है। इस मौलिकता के द्वारा ही सूर की सख्य और मधुर भक्तिभावना का प्रकाशन हो सका है।

---

७

# सूर के काव्य में आध्यात्मिकता

सूरदास के संबंध में जहाँ अनेक भ्रांतियाँ हैं, वहाँ एक यह भी है कि उनका काव्य उनकी ऐन्द्रियता का प्रच्छन्न रूप है। उसमें कवि की वासना के स्वर उसके धर्मभाव के ऊपर बोल रहे हैं। राधाकृष्ण और गोपियों के स्थूल प्रेमविलास (जो संयोग-शृङ्गार के भीतर है) ने यह भ्रांति उत्पन्न कर दी है। इसके अतिरिक्त विप्रलंभ भी शृङ्गारशास्त्र पर खड़ा किया गया है। उद्धव दूत है। पाती भी सूर की अपनी उपज है। भागवत में उसका अभाव है। स्पष्ट ही सूर यहाँ शृङ्गार-काव्य की परिपाटी से प्रभावित हैं। विप्रलंभ के सभी संचारियों का विस्तार सूरसागर में मिलेगा।

परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पिछली तीन शताब्दियों से सूर का काव्य आध्यात्मिक साधना रहा है। उसने भगवत्साक्षात्कार में सहायता ही नहीं दी है, वह उसका प्रधान साधन—बहुतों के लिए एकमात्र साधन—रहा है। ऐसी दशा में यह काव्य एक पहेली हो जाता है। पिछले अध्यायों में हमने सूर के काव्य के धार्मिक धरातल को सामने रखा है—कि उस पर शुद्धाद्वैत का कितना प्रभाव है? उसे धार्मिक काव्य कहाँ तक कहा जाय? परन्तु शृंगार के विस्तार ने जो समस्या खड़ी कर दी है, वह अभी बनी ही है।

यदि हम चाहें तो सारे काव्य को एक बड़े रूपक के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। कृष्ण परब्रह्म हैं। राधा उन्हीं की शक्ति या

प्रकृति हैं। गोपियाँ जीवात्माएँ हैं। मुरली योगमाया है या भगवान की "पुष्टि" है जो मनुष्य को जागरूक बना कर, संसार से नाता छुड़ा कर, ब्रह्म की ओर ले जाती है। रास जीवात्मा का परमात्मा के साथ आनन्दमय लय होना ही है। इस अवस्था में जीवात्मा-परमात्मा में द्वैत नहीं रहता। इस रास के लिए ही सारी साधनाएँ हैं। इसका माधुर्य अलौकिक है, अनिर्वचनीय है। इस रास की प्राप्ति कैसे हो? एक ही मात्र उपाय है—आनन्द-भाव से आत्मसमर्पित होकर कृष्ण (ब्रह्म) की कृपा पर अवलंबित रहे (पुष्टिभाव)। भागवत के चीरहरण में आनन्दभाव की आवश्यकता की ही पुष्टि नहीं की गई है उसमें नग्न जलक्रीड़ा का निषेध भर है। यह प्रसंग रस की भूमिका है क्योंकि यहीं कृष्ण गोपियों को पतिभाव से मिलन का वरदान देते हैं। परन्तु सूर ने इस प्रकार का निषेध नहीं किया। गोपियाँ आनन्दभाव से अपनी गोप्यतम निधि भगवान को अर्पित कर दें—तभी भगवान का नैकट्य प्राप्त हो, यही रूपक है। इसी से सूर के इस प्रसंग में आध्यात्मिकता स्पष्ट है। साथ ही सूर एक नया प्रसंग छेड़ देते हैं कि कृष्ण सहस्रों रूप रख कर अदृश्य भाव से प्रत्येक गोपी की पीठ मलते हैं। तात्पर्य है कि ब्रह्म तो सदैव ही जीवात्मा के इतने निकट है कि उसका कोई भी भाव उससे गोप्य नहीं। बाधा भक्त के मन की है जो इस बात को भूल जाता है और जान कर चकित होता है। केवल तमाशे भर के लिये इस नवीन उद्भावना की आवश्यकता नहीं थी, परन्तु सूर एक विशेष अर्थ उपस्थित करना चाहते हैं। वास्तव में चीरहरणलीला के इन दोनों प्रसंगों को पढ़ कर ही एक अर्थ की सिद्धि होती है।

इसी तरह दानलीला की बात लीजिये। उसमें भी यही मंतव्य है कि भक्त अपना अन्यतम भाव (सर्वस्व) भगवान के अर्पण करे। यह भाव 'गोरस' के श्लेष द्वारा पुष्ट होता है। गोरस के

दो अर्थ हैं—१ दधि, २ इन्द्रियों का रस अर्थात् इंद्रियानुभूत सुख। भक्त सारे इंद्रियों के सुख को भगवान के अर्पण करे। इंद्रियों के कर्म रुकते नहीं, उनसे सुख-दुःख की प्राप्ति तो होगी ही परन्तु उन्हें भगवतार्पण करके भक्त उनके साथ अलिप्त रह सकता है। यह कर्म में अकर्म का संदेश है। भक्त का द्विधा की इस प्रकार कहा गया है—

ग्वारिन तब देखे नंदनंदन
मोर मुकुट पिताम्बर काछे खौर किए तन चंदन
तब यह कह्यौ कहाँ अब जैहौ आगे कुँवर कन्हाई
यह सुन मन आनन्द बढ़ायौ मुख कहै बात डराई
कोउ कोउ कहति चलौ ही जाई कोऊ कहै फिर जाइ
कोउ कोउ कहति कहा करिहैं हरि इनकौ कहा हराइ
कोऊ कहति कालि ही हमकौं लूट लई नन्दलाल
सूरश्याम के गुन ऐसे हैं घरहिं फिरौं ब्रजबाल

परन्तु शुद्धाद्वैत में अनुकंपा ब्रह्म की ओर से होती है, इसी से कृष्ण ही आगे बढ़ कर गोरस छीनते हैं और इस द्विधा का फैसला करते हैं। वह दान माँगते हैं—दान लेहिहौं सबे अंगन को। अंत में उन्हें दान मिल जाता है। गोपियाँ कहती हैं—

नन्दकुमार कहा यह कीन्हौं
बूझति तुमहिं कहौ धौं हमसौं दान लियौं की मन हरि लीन्हौ
कछू दुराव नहीं हम राख्यौ निकट तुम्हारे आई
एते पर तुमहीं अब जानौ करनी भली बुराई
जो जासों अंतर नहिं राखै सो क्यों अन्तर राखै
सूरश्याम तुम अंतरजामी वेद उपनिषद भाषै

इसी प्रकार का एक नवीन आध्यात्मिक रूपक पनघट-प्रसंग है, जहाँ भक्त और भगवान में खींचातानी चलती है। एक ओर संसार है, दूसरी ओर परमात्मा सुख—भक्त बीच में है, निश्चय

नहीं कर पाता कि किधर जाय। अंत में भगवान स्वयं अनुग्रह कर उसे संसार के पथ से हटा कर अपनी ओर खींच लेते हैं। जो उसका ( परमात्म सुख का ) अनुभव कर लेता है, वह उस सखी की तरह हो जाता है—

घट भरि दियौ स्याम उठाइ

नैकुँ तन की सुधि न ताकौं चली ब्रज समुहाइ
स्याम सुन्दर नयन भीतर रहे आइ समाइ
जहाँ जहँ भरि दृष्टि देखै तहाँ तहाँ कन्हाइ
उतहिं तै एक सखी आई कहति कहा भुलाइ
सूर अब ही हँसत आई चली कहा गँवाइ

अर्थात्, सूर के शब्दों में द्वैत भूल कर अद्वैत भाव में स्थिर हो जाता है—

जनु बारिधि जलबूँद हिरानी

अंत में जीवात्मा को अपनी भूल ज्ञात होती है—

मेरे जिय ऐसी आनि बनी

बिनु गोपाल और नहिं जानैं सुनि मोसौं सजनी
कहा काँच संग्रह के कीन्हें हरि जु अमोल कनी
विरु सुमेरु कछु काज न आवै अमृत एक कनी
मन बच क्रम मोहि और न भावै अब मेरे श्याम धनी
सूरदास स्वामी के कारन तजी जाति अपनी

उस समय उसका यह भाव हो जाता है—

मोहिं तौ नाहिं और सूझत बिना मृदु मुसुकानि
रंग कापै होत न्यारौ हरद चूनौ सानि
इहै करिहौं और तजिहौं परी ऐसी बानि
सूर प्रभु पतिब्रत राखै मेटिये कुलकानि

खंडिता-प्रसंग में भी एक रूपक है—विरहतप के बाद प्राप्ति-सुख। ब्रह्म एक है, कृष्ण एक हैं। जीवात्माएँ (गोपियाँ) अनेक हैं। प्रत्येक जीवात्मा को विरह की अपेक्षा है, अंत में प्रतीक्षा के फलस्वरूप प्राप्ति। एक ही ब्रह्म अनेक जीवों में किस प्रकार उत्कंठा उठाता है, स्वयम् फिर निर्विकार, निर्लिप्त, निरासक्त रहता है—यही सिद्ध करना इष्ट है।

राधा के एक मान का कारण है कृष्ण के साथ में किसी तरुणी को देख कर ईर्ष्या भाव। इस प्रकार की ईर्ष्या अनुचित है। वास्तव में गोपियाँ राधा का ही अंश हैं। वे उनसे ईर्ष्या नहीं करतीं। परन्तु ईर्ष्या के कारण राधा को दुःख होता है। कृष्ण अनुनय-विनय कर मना लेते हैं। फिर कृष्ण के हृदय में अपनी ही छाया देख कर राधा कुंठित होकर मान कर बैठती है। अर्थ यह है कि भक्त को भगवान् से छाया भर का अन्तर नहीं भाता। जिस प्रकार वह अनन्यभाव से आत्मसर्पण करता है उसी प्रकार अनन्य भाव अपने प्रति भी चाहता है। यह व्यक्तिगत शुद्धाद्वैत के ब्रह्म और भक्त का विशिष्ट सम्बन्ध हुआ। सूरदास का कहना है—

रहि री मानिनि मान न कीजै
यह जोबन अंजुरी कौ जल है ज्यौं गुपाल माँगे त्यों दीजै

भक्त और भगवान के बीच में मान कैसा? परस्पर भक्तों में श्रेणियाँ कैसी, ईर्ष्या कैसी? यह तो पराया अंश है (प्यारी अंस परायो दे री) जो हम भगवान के अर्पण करते हैं।

इन स्पष्ट रूपकों के अलावा रास, बसंत, हिंडोला, फाग, होली, जलक्रीड़ा के प्रसंग हैं। इन सब के ऊपर निकुञ्ज विहार है जिसमें केवल राधाकृष्ण ही भाग लेते हैं, गोपियाँ दर्शन से ही आनंद लेती हैं। स्पष्ट है कि यह संयोग-बिलास गोप्य नहीं। इन सब लीलाओं में जीवात्मा परमात्मा का पूर्ण मिलन चित्रित किया

गया है। तथ्य एक है रूपक के माध्यम इतने! रास के सम्बन्ध में श्री नंददुलारे बाजपेयी लिखते हैं—"रास की वर्णना में सूरदास का काव्य परिपूर्ण आध्यात्मिक ऊँचाई पर पहुँच गया है। केवल श्रीमद्भागवत की परम्परागत अनुरति कवि ने नहीं की है, वरन् वास्तव में वे अनुपम आध्यात्मिक रस से विमोहित होकर रचना करने बैठे हैं। उन्होंने रास की जो पृष्टभूमि बनाई है, जिस प्रशांत और समुज्ज्वल वातावरण का निर्माण किया है, पुनः रास की जो सज्जा, गोपियों का जैसा संगठन और कृष्ण की ओर सब की दृष्टि का केन्द्रीकरण दिखाया है और रास की वर्णना में संगीत की तल्लीनता और नृत्य की बँधी गति के साथ एक जागरूक आध्यात्मिक मूर्च्छना, अपूर्व प्रसन्नता के साथ प्रशांति और दृश्य के चटकीलेपन के साथ भावना की तन्मयता के जो प्रभाव उत्पन्न किये हैं, ये कवि की कला-कुशलता और गहन अंतर्दृष्टि के द्योतक हैं"। (सूरसंदर्भ पृ० २६) सच तो यह है कि उपरोक्त सभी प्रसंगों के सम्बन्ध में यही बात कही जा सकती है। इनमें सूर ने अपने विषय से अत्यंत निकट का तादात्म्य स्थापित कर लिया है; रहस्य की भावना भी, जो रास में उपस्थित थी, जाती रही है। वे स्वयं लीला में भाग लेने लगे हैं। इस प्रकार वे भावसृष्टि, उल्लास, नृत्यक्रीड़ा, गीत, छंदालय—सभी के सहारे अपनी आध्यात्मिक व्यंजना सामने लाते हैं। वल्लभाचार्य ने लिखा है कि नित्य लीला में भाग लेने वाले भक्त के वश में भगवान् रहते हैं, यद्यपि वे कर्म में भी अकर्मी हैं। यहाँ सूर इसे ही चित्र द्वारा खड़ा करते हैं—

दुरि रही इक खोरि ललिता उततें आवत श्याम
धरे भरि अंकवारि औचक आइ कै ब्रजवाम
बहुत ढीठौ दै रहे हौ जानिबी हम आज
राधिका दुरि हँसति ठाढ़ी निरखि पियमुखलाज

लई काहूँ मुरलि कर तैं काउ गह्यौ पट पीत
गूँथि वेनि माँग पारे नैन आँजि अनीति
गए कर तैं झटकि मोहन नारि सब पछ्ताति
सीस धुनि कर मींजि बोलति भली लै गए भाँति

परन्तु यह मिलन तो आगे की भूमिका है। सूरदास जानते हैं कि प्रेम की सच्ची अभिव्यक्ति संयोग में नहीं वियोग में है जो आत्मा की प्रकृत दशा है। अतः इतने मिलन-प्रमोद के बाद विरह की साधना आरंभ होती है। गोपियों की बहुसंख्यता, उनकी प्रगाढ़ प्रेम-भावना, उनका अनन्यभाव, उनकी विरह की साधना, प्रकृति का उनके प्रेम में योग देना—ये सब बातें मिलकर सूर के विप्रलंभ को अत्यंत विशद चित्रपटी पर रखती हैं। इससे गोपियों के प्रेम और उसके आलंबन में रहस्यमयता और आध्यात्मिकता का आना निश्चित है। उस गहरी आकुलता के लिये जो भ्रमरगीत और गोपिका-विरह में प्रकट हुई है, वह अत्यंत निकट का केलि-विलास आवश्यक था जो सूर पर लांच्छन है। उतने मिलनोल्लास निकट के संबंध के बाद यह वियोग-साधना! यहीं पर सूर गोपियों को छोड़ देते हैं। विरह ही तो सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक साधना है। कृष्ण लौटते हैं, परन्तु गोपियों को अंगसुख फिर नहीं मिलता, न उन्हें चाहिये ही। अब रास, होली आदि मन के भीतर होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सारे सूरसागर में जहाँ एक ओर वल्लभाचार्य के आदर्शों को निभाया गया है—नंद, यशोदा और गोपियों के महान् सुख और महान् दुःख का वर्णन किया गया है—वहाँ स्वतंत्र रूप से कई रूपक जोड़ कर आध्यात्मिक अर्थों का विस्तार भी किया गया है। ये आध्यात्मिक अर्थ हैं—

(१) सम्पूर्ण आत्मसमर्पण—मन-वच-क्रम से ही नहीं, इंद्रियों के सुखों से भी ( दानलीला, जलक्रीड़ा )

(२) अत्यंत आनन्द भाव जिसमें ईश्वर सम्पूर्णतः व्यक्तिगत हो जाये ( राधा का मान )।

(३) विरह की साधना ( खंडिता, गोपिका विरह )।

(४) आदर्श मानसिक मिलन की स्मृति ( रास, होली जलक्रीड़ा आदि )

(५) गर्वहीनता ( रास )।

(६) आध्यात्मिक संदेश की शक्ति और आकर्षण "संसार" से द्वन्द ( पनवट )

महाप्रभु ने कहा है "संसार" है अहंमता और ममता। आत्मसमर्पण से दोनों का नाश हो जाता है। आत्मसमर्पण का फल होता है ईशानुकंपा ( पुष्टि )। उसके द्वारा निरंतर प्रेम ( प्रीति ) की प्राप्ति होती है जिसकी महिमा गाते सूर थकते नहीं—

ऊधौ प्रीति न मरन विचारै
प्रीति पतंग जरै पावक परि जरत अंग नहिं टारै
प्रीति परेवा उड़त गगन चढ़ि गिरत न आप सम्हारै
प्रीति मधुप केतकी कुसुम बसि कण्टक आपु प्रहारै
प्रीति जानु जैसे पयपानी जानि अपनपो जारै
प्रीति कुरंग नादरस लुब्धक तानि-तानि सर मारै
प्रीति जान जननी सुत कारन को न अपनपो हारै
सूर श्याम सों प्रीति गोपिन की कहु कैसे निरुवारै

इस प्रीति का रूप है—

नाहिंन रह्यौ मन में ठौर
नंदनन्दन अछत कैसे आनिए उर और

चलत चितवत, दिवस जागत, सपन सोवत राति
हृदय तैं वह श्याम मूरति छनन इत उत जाति

यह "श्याम मूरति" जो भक्त की साधना का आलंबन है, स्वयं अत्यंत रहस्यात्मक है। राधा को छोड़ कर कोई अन्य गोपी भी उस तक नहीं पहुँच सकती। इसकी योजना सूर राधा के द्वारा यह कहला कर कराते हैं कि वह तो नंदनंदन को देख ही नहीं सकती। एक ही अंग देखने में लग जाती है। राधा गोपियों से कहती है—

तुम देखे मैं नहिं पत्यानी
मैं जानी मेरी गति सबहीं यहै साँच अपनैं मन आनी
जो तुम अंग-अंग अवलोक्यौ धन्य धन्य अस्तुति मुखमानी
मैं तौ एक अंग अवलोकति दोऊ नैन गये भरि पानी
कुंडल झलक कपोलनि आभा इतनैहि माँझ बिकानी
एकटक रही नैन दोऊ रूँधे सूरश्याम न पिछानी

श्याम सौं काहे की पहचानि
निमिष निमिष वह रूप न वह छवि रति कीजै जेहि जानि
इकटक रहत निरन्तर निसिदिन मन मति सौं चित सानि
एकौ पल सोभा की सीवा सकति न उर महँ आनि
समुझि न परे प्रगट ही निरखति आनँद की निधि खानि
सखि यह बिरह संजोग कि समरस दुख-सुख लाभ की हानि
मिटति न घृत तैं होम-अग्नि सचि सूर सुलोचन बानि
इत लोभी उत रूप परम निधि कोउ न रहत मिति मानि

कब री मिले श्याम नहिं जानौ
तेरी सौं कहि कहति सखी री अबहूँ नहिं पहिचानौ
खरिक मिले की गोरस बेंचत की अबहीं की कालि
नैननि अंतर होत न कबहूँ कहत कहा री आलि
एकौ पल हरि होत न न्यारे नीकै देखे नाहिं
सूरदास प्रभु टरत न टारै नैननि सदा बसाहिं

सूर के आध्यात्मिकता की साधना का आदर्श है "ब्रजनारि"—

श्याम रंग राची ब्रजनारि । और रंग सब दीन्हो डारि
कुसुम रङ्ग गुरुजन पितु माता । हरित रङ्ग भैनी अरु भ्राता
दिना चारि मैं सब मिटि जैहै । श्याम रङ्ग अजरामर रैहै
उज्ज्वल रङ्ग गोपिका नारी । स्याम रङ्ग गिरवर के धारी
स्यामहि में सब रङ्ग बसेरौ । प्रगट बताइ देउँ कहि बेरौ

परन्तु प्रश्न यह होता कि क्या इस अनन्यावस्था को इसी रूप में प्रगट किया जा सकता था, या यह वांन्छनीय था । यह कहना ही पड़ेगा कि जीव-ब्रह्म की इस पूर्ण मिलन अथवा अद्वैतावस्था का रूपक दूसरा नहीं हो सकता था। जहाँ ब्रह्म के लिये पुरुष ( राम, कृष्ण ) को स्वीकार किया गया, जहाँ आत्मा के लिये "राम की बहुरिया" या गोपी कहा गया, वहाँ "अद्वैतावस्था" भी दिखलानी होगी । कबीर ने कहा भी है—

एक में एक है जो नहिं सोवे, केहि विधि मिलना होई

सूर 'कथा' कह रहे थे । अतः उन्हें स्पष्ट रीति से चुम्बन, आलिंगन कुचकुचस्पर्श और अंततः संयोगविलास का वर्णन करना पड़ा इसके सिवा बात यह है कि सूर के रूप जुदे-जुदे नहीं खड़े हैं । वे सब एक कथा में सूत्रबद्ध हैं, जिससे सब ले देकर एक स्थूल जारत्व की छाया बचाई ही नहीं जा सकती । यह भी हो सकता है कि सूर इस विषय में जयदेव के काव्य से प्रभावित हों, विशेषकर राधाकृष्ण के केलिविलास के विषय में । गोपियों की अवतारणा उन्होंने स्वयं की, परन्तु यहाँ भी उन्होंने जयदेव की ही शैली ग्रहण की । वास्तव में सूर दो आध्यात्मिक साधनाओं को स्वीकार कर रहे हैं । एक वल्लभाचार्य की बालकृष्ण की सेवा, लीलागान, नंद-यशोदा-गोपियों के मिलन-वियोग के मानसिक अनुभव की साधना । दूसरे, उस युग की सामान्य

"युगल भक्ति", जिसमें भक्त मधुर भाव से राधा-कृष्ण की लीलाओं में रस लेता था। इस मधुरभाव का आश्रय जयदेव, विद्यापति और चंडीदास के काव्य थे। सूरदास इनसे अवश्य ही परिचित थे। जान पड़ता है, वृन्दावन में कृष्णभक्ति के इस रूप का जन्म चैतन्य के पूर्व के बंगाली वैष्णवों द्वारा हुआ, परन्तु उसका विकास स्वतंत्र रूप से हुआ। इसीसे मूल भावनाओं का आदान-प्रदान होते हुए भी हिन्दी और बंगला-मैथिल के कृष्ण-काव्य में महान् अंतर है। वल्लभाचार्य इससे अधिक प्रभावित नहीं थे, परन्तु उनके बाद पुरी-यात्रा के उपरांत गोसाईं विट्ठलनाथ ने "राधाष्टक" आदि ग्रंथों की जो रचना की, उससे स्पष्ट है कि वल्लभसंप्रदाय में भी राधा-कृष्ण की मधुरोपासना सूर के सामने विकसित हो गई थी। वास्तव में सूर का काव्य राधा-कृष्ण के प्रेम का विशद चित्रण होने के कारण ही वल्लभ-संप्रदाय से इतर कृष्ण-भक्त संप्रदायों में मान्य हो सका। सूर स्वभावतः ही "कैथोलिक" थे। उन्होंने हितहरिवँश और हरिदास की प्रशंसा की है; रामावतार और कृष्णावतार को उन्होंने एक सूत्र में गूँथ दिया है; शिव का बालकृष्ण के रूप में वर्णन किया है शुद्धाद्वैती मान्यताओं के साथ पौराणिक भावनाओं को रखा है जैसे गोपियों को वल्लभाचार्य ने श्रुति भी माना है और देवताओं का अवतार भी—

ब्रजसुन्दरि नहिं नारि ऋचा श्रुति की सब आहि

× × ×

प्राकृत लै भए पुरुष जगत सब प्रकृत समाइ
रहैं एक बैकुण्ठ लोक तहाँ त्रिभुवनराइ
अच्छर अच्युत निर्विकार है निराकार है जोई
आदि अंत नहिं जानिअत आदि अंत प्रभु सोई

फिर भी सूर के उपास्य "दंपति" हैं, केवल बालकृष्ण नहीं—

मैं कैसे रस रासहिं गाऊँ

श्री राधिका श्याम की प्यारी तुव बिन कृपा बास ब्रज पाऊँ
अन्य देव सपनेहुँ न जानौं दम्पति कौ शिर नाऊँ
भजन प्रताप शरन महिमा ते गुरु की कृपा दिखाऊँ
नव निकुंज नव धाम निकट इक आनंद कुटी रचाऊँ
सूर कहा विनती करि बिनवै जन्म जन्म यह ध्याऊँ

अन्य संप्रदायों में राधा की मान्यता कृष्ण से अधिक है। सूर के लिये तो दंपति समान हैं ही, अतः उन्हें यह भी कहने में संकोच नहीं कि

सूर की स्वामिनी नारि ब्रजभामिनी

इस प्रकार सूरदास राधाकृष्ण-संबंधी सभी भावनाओं को अनायास ही समेट कर चलते हैं।

वल्लभाचार्य ने पहली बार वेद और भागवत के प्रस्थानत्रयी को साथ लेकर पाँच प्रामाणिक ग्रंथ माने। इससे पहले केवल उपनिषद, ब्रह्म-सूत्र और गीता—यही प्रस्थानत्रयी प्रमाण थी। वेद से उन्होंने कर्मकांड लिया, उपनिषद और ब्रह्मसूत्र से ज्ञान एवं गीता और भागवत से भक्ति। ऐसी परिस्थिति में पुष्टिमार्ग में यदि भागवत का ही आधार विशेष हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। सच तो यह है आचार्य भागवत को ही अंतिम प्रमाण कहते थे। इसलिए उन्हें भागवत के अर्थ अत्यन्त सतर्कता से करने पड़े। कठिनाई मधुरस के प्रसंगों में ही विशेष थी। उन्हें शुद्ध आध्यात्मिकता का रूप देने के लिये उन्होंने प्रत्येक वस्तु में प्रतीक स्थापित किया। उन्होंने गोपी, रास, वंशी आदि के नवीन आध्यात्मिक अर्थ किये और इन्हें स्पष्टतः आध्यात्मिक धरातल तक उठाया। यह स्पष्ट है कि सूर वल्लभाचार्य के प्रतीकों से पूर्ण रूप से परिचित थे:

( १ ) वल्लभाचार्य ने गोपियों को कृष्ण की शक्ति[१], श्रुति का अवतार[२] और समुदायरूपा लक्ष्मी कहा है[३]। सूर तो विस्तार-पूर्वक गोपियों को कृष्ण की शक्ति या श्रुति का अवतार मानते हैं। इसी अध्याय में हम पहले यह बात सिद्ध कर चुके हैं।

( २ ) वेणु को वल्लभाचार्य नामलीला का प्रतीक मानते हैं[४]। सूर भी उसे अप्राकृतिक, अलौकिक और रहस्यमय ही समझते हैं। नामलीला का आस्वाद ही भगवान के प्रति पहला आकर्षण है जैसे वेणुवादन रास की भूमिका है।

( ३ ) रास, फगुआ, होली, निकुंजविहार—इन सबमें सूर ने वल्लभाचार्य की "नित्यलीला" का ही वर्णन किया है। यह लौकिक लीला है ही नहीं। ब्रह्म और जीव का निरंतर का संबंध है। इस लीला में भाग लेना ही मोक्ष है[५]। "पुष्टि" (ईशानुग्रह) द्वारा ही इन लीलाओं में भाग लिया जा सकता है जैसे गोपियाँ लेती हैं।

( ४ ) शुद्धाद्वैत में माया का स्थान नहीं है, परन्तु फिर भी वल्लभाचार्य उसके अस्तित्व से एकदम इंकार नहीं कर सके हैं। उन्होंने माया की दो परिभाषाएँ दी हैं—

निराकारमेव ब्रह्म माया जवनिकाच्छन्नम्
या जगत्कारण भूता भगवच्छक्तिः सा योगमाया।

---

१—स ही वाच त हि नारायणो देव इत्युपक्रम्य मधुरास्वरूपं निरूप्य निभद्यत यत्रासौ संस्थितः कृष्णः स्त्रीभिः शक्तिया समाहित।

२—अस्मिन्नर्थे श्रुत्यन्तर रूपाणां गोपिकानां......।

३—बहुवचनेन समुदायरूपा लक्ष्मीरप्यनेन सूचिता,तदेशाश्वत एव समागतः।

४—नामलीलारूपं वेणुनादं निरूपयति।

५—न हि लीलायां किञ्चित्प्रयोजन अस्ति। लीलाय एव प्रयोजनत्वात्. ईश्वरत्वादेव न लीला पर्यनुभाक्तुं शक्या। सा लीला कैवल्यं मोक्षः।

सूरदास ने उन परिभाषाओं को समझा है, परन्तु उन्होंने माया की प्रचलित कल्पना को ही स्थान दिया है जो गुणों के द्वारा संसार की उत्पत्ति, अवस्थिति और लय का कारण है, जो ब्रह्म की दासी है, अविद्या और विद्या जिसके दो रूप हैं, जो कंचन और कामिनी आदि का रूप धर कर मनुष्य को घुमाती है। तुलसी और सूर की माया की कल्पना में कोई भेद नहीं है।

१—सूर ने प्रत्येक लीला के पहले उसका आध्यात्मिक संकेत उपस्थित कर दिया है। इस संकेत को न समझ कर सूर पर उच्छृङ्खल शृङ्गार का दोष लगाना अनुचित है। "खंडिता" प्रसंग के अंत में सूर कहते हैं—

राधिका गेह हरिदेह वासी। और त्रिय घरन घर तनु प्रकासी
ब्रह्म पूरन एक द्वितीय नहिं कोऊ। राधिका सबै हरि सबै कोऊ
दीप से दीप जैसे उजारी। तैसे ही ब्रह्म घर घर बिहारी
खंडिता-वचन-हित यह उपाई। कबहूँ तहँ जात कहुँ नहिं कन्हाई
जन्म को सफल हरि इहै पावैं। नारि रस वचन श्रवणन सुनावैं

और इसी प्रकार रासारंभ के पहले—

( १ ) जाको व्यास वर्णत रास
है गंधर्व विवाह चित्त दै सुनो, विविध विलास

( २ ) रास रसलीला गाइ सुनाऊँ
यह यश कहैं सुनैं मुख श्रवणन तिन चरणन शिर नाऊँ
कहा कहौं वक्ता-श्रोता-फल इक रसना क्यों गाऊँ
अष्टसिद्धि नवनिधि सुखसम्पति लघुता करि दरशाऊँ
जो परतीति होइ हिरदय में जगमाया धिग देखै
हरिजन दरश हरिहि सम पूजै अंतर कपट न मेषै
धनि धनि वक्ता तेहि धनि श्रोता श्याम निकट हैं ताके
सूर धन्य तिनके पितु माता भाव भजन है जाके

८

# सूरदास का धार्मिक काव्य

सूरदास का काव्य काव्य की सीमा को लाँघ कर उसी तरह धर्म के क्षेत्र में पहुँचा जाता है, जिस तरह तुलसी का काव्य, विशेषतः रामचरितमानस जो श्रेष्ठ काव्य होते हुए भी भक्तों के लिए आध्यात्मिक साधना का सर्वोत्तम सहारा है। परन्तु कुछ आलोचकों को सूरदास के काव्य को धार्मिक काव्य कहने में संकोच है। इसका कारण स्पष्ट ही है—

(१) उसमें नैतिक भावनाओं, आचार-विचार, विधिनिषेध को स्थान नहीं मिला है, जिस प्रकार रामचरितमानस में मिला है। शताब्दियों से धर्म और नैतिकता के अटूट संबंध और धर्म की पूतकारिणी शक्ति की जो भावना जनता में चली आ रही है, वह सूर के काव्य के विरुद्ध पड़ती है।

(२) उसमें राधाकृष्ण और गोपीकृष्ण के संबंध को लेकर लौकिक शृङ्गार के ऐसे वर्णन मिलते हैं जो नीतिवादियों में एकदम जुगुप्सा उत्पन्न कर देते हैं। वे आश्चर्य में पड़ जाते हैं कि इस प्रकार के स्थूल संयोग के चित्रणों का धर्म से संबंध ही क्या हो सकता है? जहाँ मर्यादा नहीं, संयम, नहीं घोर शृङ्गार है, उसे धार्मिक काव्य कैसे कहा जाय? आख़िर धार्मिक काव्य में कुछ संदेश तो होना चाहिये। संदेश न भी हो तो कोई बात नहीं, उच्च श्रेणी की आत्माभिव्यक्ति होनी चाहिये जैसी मीरा के काव्य में है।

परन्तु वास्तव में दोनों दृष्टिकोण दूपित हैं, भ्रांत हैं। सूरदास के काव्य में नैतिक भावनाओं, आचार-विचार और विधि-निषेध को जिस कारण से स्थान नहीं मिला, उसे हम पहले लिख आए हैं। सूरदास इनकी आवश्यकता स्वीकार करते हैं ( देखिए विनय के पद ) परन्तु वे इनसे ऊपर उठकर एक दूसरा ही मार्ग सामने रखते हैं जहाँ भक्त भगवान का सीधा और इतने निकट का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है कि इस प्रकार की भावनाओं पर बल देने की आवश्यकता ही नहीं रहती। प्रत्येक धार्मिक काव्य-प्रणेता के दार्शनिक विचारों से प्रभावित होता है—उसके प्रेम या भक्ति का आश्रय कौन है, कैसा है, उसके साथ भक्त का सम्बन्ध किस प्रकार का है। सूरदास लीलामय, प्रेममय, राधापति, गोपी-वल्लभ कृष्ण से अनन्य भाव से सखा का सम्बन्ध रखते हैं, अतः काव्य में मर्यादा को उस तरह स्थान नहीं मिलता जिस तरह तुलसी के काव्य में जो रावणादि दाशरथि राम से सेवक का सम्बन्ध रखते हैं। दूसरे जहाँ तुलसी की भक्ति वैधी है, वहाँ सूरदास की भक्ति रागानुगा है। इन दोनो कारणों से दोनों के भक्ति काव्यों में भी भेद हो जाना चाहिये था।

इसके अतिरिक्त सूर के काव्य में आत्माभिव्यक्ति का कोई निश्चित रूप मिलना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है यद्यपि विनयपदों को छोड़ कर भी स्थान-स्थान पर आत्माभिव्यक्ति मिलती है, विशेपतयः पद की अन्तिम पंक्ति में, जैसे—

सूरदास कौ ठाकुर ठाढ़ो हाथ लकुट लिए छोटी
सूर कितौ मन सुख पावत है देखे स्याम तमाल
सूरदास बलि बलि जोरी पर नन्दकुंवर वृपभानु दुलरिया
सूरदास प्रभु के गुन ऐसे दधि के माट भूमि ढरकाए
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि विलसहु स्याम सुजान
सूरदास स्वामी पियप्यारी झूलत हैं झकझोल, आदि

यह आत्माभिव्यक्ति उस ढंग की नहीं है जैसी तुलसी और मीरा में है और "विलसहु स्याम सुजान" जैसी भावना से नीतिवादी उचक सकते हैं। कारण यह है कि जिस प्रकार की आत्माभिव्यक्ति नीतिवादी चाहते हैं उसे तो महाप्रभु ने पहले ही 'घिघियाना" बता दिया था, अतः सूर उस ओर नहीं बढ़ सकते थे। उनको तो कथा का सहारा मिल गया था जो मीरा ने अस्वीकार कर दिया था। इस कथा में उनकी अपनी आत्माभिव्यक्ति के लिये पर्याप्त स्थान था। वे वात्सल्य, सख्य और मधुर भावों के उपासक थे। उनके लिये नंदयशोदा, गोपीगोप, गोपबाला, राधाकृष्ण और गोपीकृष्ण के चरित्र और तत्सम्बन्धी कथा-प्रसंग खुले थे। इसी से उन्होंने प्रच्छन्न रूप से इन्हीं के द्वारा अपनी भक्तिभावना का प्रकाशन किया। नंदयशोदा और गोपीगोप के प्रसंगों में सूर के वात्सल्य भाव की अभिव्यक्ति हुई है; सुदामा, सुबल आदि गोप-बालकों को लेकर सूर का सख्य भाव प्रगट हुआ है और राधाकृष्ण एवं गोपीकृष्ण को लेकर मधुर भाव की भक्ति चरित्रार्थ हुई है। अनेक पद ऐसे हैं जिन्हें हम संदर्भ से हटा कर सीधे सूर के मुख में रख सकते हैं, जैसे—

सोभित कर नवनीत लिए
घुटुरुन चलत रेनुतनुमंडित मुख दधि लेप किए
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए
लट लटकनि मनौ मत्त मधुपगन मादक मदहिं पिए
कठुला कंठ वज्र केहरिनख राजत रुचिर हिए
धन्य सूर एकौ पल यह सुख का सत कल्प जिए

हरि जू की बाल छबि कहौं बरनि
सकल सुख की सींव कोटि मनोज-सोभा-हरनि

भुज भुजंग, सरोज नयननि, बदन विधु जित लरनि
रहे बिवरनि सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि
मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरत भूषन भरनि
मनौं सुभग सिंगार सिसुतरु फल्यौ अद्भुत फरनि
चलत पद प्रतिबिंब मनि-आँगन घुटुरुवनि करनि
जलज-संपुट सुभग छवि भरि लेति उर-जनु धरनि
पुन्यफल अनुभवति सुतहिं विलोकि कै नन्दघरनि
सूर प्रभु की बसी उर किलकनि मधुर लरखरनि

(वात्सल्य)

छबीले मुरली नेक बजाउ
बलिबलि जात सखा यहि कहि कहि
अधर-सुधा-रस प्याउ
दुर्लभ जन्म, दुर्लभ वृन्दावन,
दुर्लभ प्रेम - तरंग
ना जनिये बहुरि कब ह्वैहै
श्याम तुम्हारो संग

(सख्य)

कृष्ण के तरुण रूप और उनकी शृङ्गार चेष्टाओं के प्रति अनेक आसक्तिमय पद हैं जिनमें सूर स्वयं स्पष्ट रूप से आनन्द ले रहे हैं। दृष्टकूट सम्बन्धी कितने ही पद इसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं यद्यपि उनकी सामग्री नीतिवादी आलोचकों को उलझन में अवश्य डाल देगी।

(मधुर)

परन्तु वास्तव में सारे सूरसागर में इन्हीं तीन भावों से सूर विराजमान हैं। कहीं नंदयशोदा के रूप में, कहीं गोप-बालकों के, कहीं गोपियों के। जिस तन्मयता से सूर ने पद रचे हैं, उससे

परिचित होकर कोई भी यह नहीं कह सकता कि सूर ने तटस्थ भाव से चरित्रों के मुख में उन्हें रख दिया है। इसी तन्मयता और सूर की व्याप्ति के कारण सूरसागर में चरित्रों का कोई विशिष्ट रूप खड़ा नहीं होता जैसा रामचरितमानस में या किसी भी चरित्र-काव्य में। सारे चरित्र तीन बड़े विभागों में बँट जाते हैं जिनका चरित्रनायक से क्रमशः वात्सल्य, सख्य और मधुर प्रेम का नाता है। उनमें परस्पर किसी प्रकार की श्रेणी या विभाजन सम्भव नहीं है। सब कृष्ण के सङ्ग से एक ही प्रकार से सुखी हैं, उनके विछोह में एक ही प्रकार से दुःखी हैं। इसीसे मोटे रूप में हम कह सकते हैं कि सूरसागर में कृष्ण के संयोग और वियोग के सुख-दुःख-पूर्ण वर्णन हैं। सूर की अपनी भावना इन वर्णनों में इतनी मिल जाती है कि जैसे वे ही उस संयोग और विछोह का अनुभव कर रहे हों।

अब जब यह बात है तो नीतिवादियों का तर्क ही ढह जाता है। स्पष्ट है कि उन्हें एक नए प्रकार के धार्मिक काव्य का सामना करना पड़ रहा है जिससे उनकी आलोचना कुंठित हो जाती है। वे मीरा के काव्य और ईसाइयों के सॉलोमन के गीतों को धार्मिक काव्य या भक्ति काव्य कह सकते हैं परन्तु इस कथात्मक आत्माभिव्यक्ति को समझ नहीं पाते। कथा को सूरदास से बाहर प्रतिष्ठित कर वे भ्रांति में पड़ जाते हैं। फिर भी जहाँ तक कृष्ण की बाल-लीलाओं और गोप-बालकों के साथ वन-लीलाओं का सम्बन्ध है, उन्हें कुछ कहना नहीं है। कहना तो उन्हें है कृष्ण की मधुर लीलाओं के सम्बन्ध में।

जो अधिक सतर्क और सहिष्णु हैं वे इन लीलाओं को रूपक कह कर छुट्टी पा जाते हैं। कृष्ण ब्रह्म हैं, राधा उनकी शक्ति है या प्रकृति है या कौशल्यप्राप्त जीव है, गोपियाँ जीवात्माएँ हैं। चीरहरण-लीलाओं में यह दिखाया गया है कि भगवान से

गोप्य गुह्य भी नहीं और एक ही ब्रह्म समस्त जीवात्माओं को एक ही साथ गएय है। दानलीला का अर्थ है कि अपना सर्वोत्तम भाव, सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति भक्त भगवान् को अर्पण करने में तनिक भी विलंब न करे। रासलीला में जहाँ एक ओर ब्रह्म की अखंडता और एक ही समय में अनेक भक्तों को प्राप्ति का संदेश है, वहाँ गर्वहीनता का उपदेश भी है। राधा के मान में कहा गया है कि अहंमन्यता की छाया भी भगवान् को भक्त से दूर कर देती है अथवा भक्त को इतना भी विछोह कठिन होता है कि वह भगवान् के हृदय में अपनी छाया भी नहीं देख सकता। बहुनायकत्व में फिर एक बार ब्रह्म की अनेक भक्तों को प्राप्ति और विरह-साधना की आवश्यकता का निर्देश है। बस, उनका काम समाप्त हो गया। इस प्रकार वे नीतिवादिता और सूरदास के काव्य में सामंजस्य स्थापित करना चाहते हैं, परन्तु शेष रह जाते हैं संयोग के वे स्थूल प्रसंग—सुरति, सुरतारम्भ, सुरतांत के वर्णन—जो उनके आगे अब भी प्रश्न बने रहते हैं।

परन्तु हमें धार्मिक काव्य के सम्बन्ध में अपनी परिभाषा ही ठीक करनी होगी। धार्मिक काव्य और धर्म-काव्य में भेद है। संत-काव्य धर्म-काव्य ही अधिक है, तुलसी का मानस और सूर का सूरसागर धार्मिक काव्य हैं। यह इसलिये कि उनमें कवि-भक्त का अभिध्येय धार्मिक सिद्धान्तों का निरूपण नहीं है। वह पाठक को ऊँची भूमि पर पहुँचाना चाहता है जहाँ विधिविधान गौण होते हैं या होते ही नहीं। यह भावभूमि है जितना भी उच्च धार्मिक कवि होगा, वह उतनी ही ऊँची भावभूमि पर पाठक को पहुँचा सकेगा। इस भावभूमि पर पाठक को पहुँचाने के दो साधन हैं—

(१) या तो वह (कवि) भावात्मक अभिव्यक्ति द्वारा पाठक को उस उच्च भूमि पर पहुँचा दे जहाँ वह काव्य के आलम्बन के बिल्कुल सन्मुख खड़ा हो जाय;

(२) या आलम्बन के रूप, गुण और चरित्र का इस भावाकुलता, तन्मयता और सरसता से वर्णन करे कि पाठक उस पर मुग्ध होकर अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को उसमें भूल जाय।

मीरा और विनयपत्रिका में तुलसी ने पहला और सूरसागर में सूर ने दूसरा भाग ग्रहण किया है। उन्होंने विषय से एकदम तादात्म्य स्थापित कर लिया है। सारी कृष्णलीला में सूर एक ही भाँति ऊँचे आध्यात्मिक धरातल पर टिक नहीं सके हैं, परन्तु रास, दान, हिंडोल, फाग गोपियों के विरह जैसे अवसरों पर उनके काव्य में अगाढ़ रस मिलेगा जो पाठक को ऐन्द्रियता से ऊपर उठाने की क्षमता रखता है। इसके लिये सूर के पास कई साधन हैं :

(१) कृष्ण का ऐश्वर्य—यद्यपि सूर इससे कुछ भी सहायता नहीं लेते। भागवत में कृष्ण के चमत्कारिक शौर्य और अलौकिक ऐश्वर्य को ही भक्तिभावना के दृढ़ करने का साधन बनाया गया है।

(२) कृष्ण का रूपसौन्दर्य—सूर ने कृष्ण के रूपसौन्दर्य को रहस्यात्मक ढंग से प्रगट किया है। उस रूप की एक झाँकी ही राधा देख पाती है, किसी भी एक अङ्ग पर उसकी आँख टिक नहीं पाती। जो सखियाँ कृष्ण के रूप को देखने का दावा करती हैं, वे इस प्रेमभावना के आगे लज्जित हैं। ऐसा रहस्यमय रूप है वह जो क्षण-क्षण बदलता रहता है—

"ऐसी दशा भई री इनकी श्याम रूप में मगन रए री
सूरदास प्रभु अगनित सोभा ना जानौं केहि अंग छए री"

"जो जेहि अग सो तहाँ भुलानी
सूरश्याम गति काहु न जानी"
"देखो माई सुन्दरता को सागर"

"देखि सखी हरि स्वरूप अनूप"
"सखी री सुन्दरता को रंग" इत्यादि

यही नहीं उसकी वाणी ऐसी ही रहस्यात्मक है—

सुन्दर बोलत आवत बैन

ना जानौ तेहि समय सखी री सब तन स्रवन की नैन
रोम-रोम में शब्द सुरति की नखसिख ज्यों चख ऐन
एते मान बनी चंचलता सुनी न समुझी सैन
तब तकि जकि ह्वै रही चित्र-सी पल न लगत चित चैन
सुनहु सूर यह साँच कि सम्भ्रम सपन किधौं दिन रैन

कृष्ण तो सदैव सुकुमार ही है, बालक ही है, यह बतलाते हुए भी सूर नहीं अघाते।

(३) उनकी चिरनिर्लिप्तता—सूर के कृष्ण ब्रह्म हों या नहीं, पुष्टिमार्ग के निर्लिप्त इष्टदेव अवश्य हैं। वे सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करते।

(४) उनकी वंशी-ध्वनि का प्रभाव अलौकिक है—

मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी
सुनि ध्वनि सिद्ध समाधि टरी

सुनि थके देव विमान। सुरबधू चित्र समान
ग्रहनक्षत्र तजत न रास। याही बँधे ध्वनिपास
सुनि आनँद उमगि भरे। जलथल के अचल टरे
चराचर गति विपरीति। सुनि वेनु कल्पित गीत
झरना झरत पासान। गन्धर्व मोहे कलगान
सुनि खग-मृग मौन धरे। फल तृण सुधि बिसरे
सुनि धेनु अति थकित रहीं। तृण दन्तहु नहीं गहीं
बछरा न पीवे छीर। पंछी न मन में धीर

द्रुम बेलि चपल भए। सुनि पल्लव प्रगटि नए
जे विटप चंचल पात। ते निकट को अकुलात
अकुलित जे पुलकित गात। अनुराग नैन चुचात
सुनि चंचल पवन थके। सरिता जल चलि न सके

(५) सूर के प्रेम की कल्पना भी रहस्यात्मक है। जैसा हम कह चुके हैं राधा कृष्ण को संपूर्ण रूप से देख भी नहीं पाती। मिलन के समय भी उसे मिलने का विश्वास नहीं है—

राधे मिलेहु प्रतीति न आवति

सूर ने जहाँ गोपियों के सामूहिक प्रेम को विश्वव्यापी क्रन्दन का रूप दे दिया है, वहाँ राधा के प्रेम को मौन बनाकर उतना ही रहस्यात्मक कर दिया है। किसका प्रेम अधिक है किसका कम, यह नहीं कहा जा सकता। विप्रलंभ काव्य की दृष्टि से तो सूर का विरहवर्णन पूर्ण है ही, शुद्ध आध्यात्मिक काव्य की दृष्टि से भी उसका मूल्य कुछ कम नहीं है।

सूर ने सँयोग-शृङ्गार में सुरति आदि की उद्भावना इसलिये की है कि वे एक तो पूर्व परम्परा से परिचालित थे जिसमें इस तरह के प्रसङ्ग वर्जित नहीं थे। उदाहरण के लिए, जयदेव, गोवर्धन, विद्यापति के काव्य हैं जो स्वयं शिव-उमा को लेकर चलने वाली एक पुरानी परम्परा से सहारा लेकर और शिव का स्थान कृष्ण को देकर आगे बढ़ रहे थे। दूसरे इससे वे अपने उपास्यदेव के इतने निकट आ जाते हैं जितना निकट अन्य प्रसङ्गों में वे कभी नहीं आ सकते थे। पुष्टिमार्ग के कृष्ण तो निर्लिप्त हैं, उन्हें तो कोई दोष लगता ही नहीं, वे जो करते हैं भक्त के आनन्द के लिए लीलामात्र के रूप में। राधा कृष्ण की रति में भक्त स्वयं उनके अधिक निकट आ जाता है। दम्पति के निकुंजविहार का ध्यान भी परवर्ती पुष्टिमार्ग और हितहरिवंश के संप्रदाय के

लिए वैध था। इष्टदेव से तादात्म्य स्थापित करने का अर्थ यही है कि भक्त उनके अन्यतम संपर्क में आ जाँय। ठीक हो या गलत भक्तों ने इस अन्यतम संपर्क स्थापित करने की भावना से ही सुरति, सुरतारम्भ और सुरतांत एवं चुम्बन, आलिङ्गन आदि का वर्णन किया। काव्य, आचारशास्त्र और शील की दृष्टि से ये प्रसंग अवांछित थे, वास्तव में काव्य की दृष्टि से इनका कोई मूल्य नहीं है। नाटककारों और कवियों ने इनकी एकान्त अवहेलना की है। पुराणों में इनका वर्णन अवश्य है, परन्तु वहाँ अलौकिकता प्रदर्शन, चमत्कार या रहस्य की भावना से प्रभावित होकर। जयदेव, विद्यापति और सूर स्पष्टः इसे काव्य का अंग समझ कर नहीं लिख रहे हैं। इसके द्वारा वे केवल अध्यात्म जगत् की स्थापना कर रहे हैं।

धार्मिक साहित्य के लिए यह आवश्यकता है कि वह धार्मिक सिद्धान्तों को स्पर्श करता हुआ भी केवल प्रचार साहित्य नहीं बन जाय। उसमें भक्त अपनी स्थायी मनोवृत्तियों को भली भाँति परिस्फुट करे या धार्मिक भावना का आलंबन जो चरित्र हो उसमें एवं उससे संबंधित कथा में इस प्रकार की वृत्तियों का चित्रण एवं पोषण हो। सूरदास के काव्य में नन्द-यशोदा, गोपी-गोप, राधा-कृष्ण के हृदयों की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावना को गीतबद्ध कर दिया गया है। वात्सल्य, सख्य, प्रेम और विलास के संबन्धी मनोविकार मनुष्य की प्रकृति से चिरकाल से मिले हुए हैं, और कदाचित् अंत तक मिले रहेंगे। प्रेतपात्र की चेष्टाओं में आनन्द, उसके अमङ्गल की आशंका से भय, उसके वियोग में दुःख और पुनर्मिलन की आशा—में सब बातें साहित्यशास्त्र के समस्त संचारियों के साथ सूर के काव्य में प्रगट हुई हैं। प्रेमोल्लास और विरहचीत्कार का इतना बड़ा संग्रह और कहीं भी सुलभ नहीं है। अपने साहित्य के कारण

ही सूरकाव्य आध्यात्मिक साधना का विषय हो है। उसका एक-एक पद आत्मजिज्ञासुओं के लिए साक्षात्कार का साधन है। जो काव्य का रस है, वही भक्ति का रस भी हो गया है। यह वल्लभाचार्य के मार्ग की विशेषता है कि उन्होंने पूर्णपुरुषोत्तम में सच्चिदानन्द के साथ रसगुण की भी कल्पना की है। तैत्तिरीय उपनिषद् में रस को भी भगवान का गुण माना गया है। महाप्रभु ने इस संदर्भ को लेकर धर्म और साहित्य के जगत् में एक क्रांति ही उत्पन्न कर दी। सच्चिदानन्द रसमय पूर्णब्रह्म और भक्त में रस का ही तो संबंध हो सकता है। इसीलिए रसास्वादन को भगवान की प्राप्ति में पहला स्थान दिया गया। इसीसे कृष्ण-काव्य में साहित्यशास्त्र की रससंबन्धी मान्यताओं से पूर्णतः लाभ उठाया गया है जिससे वह सर्वोच्च काव्य की श्रेणी तक जा पहुँचा है।

परन्तु स्वयम् पुष्टिमार्ग की धार्मिक मान्यताओं ने भी उच्च धार्मिक साहित्य बनाने में सहायता दी है। सूर के काव्य के कारण पुष्टिमार्ग की धार्मिक मान्यताओं ने सार्वभौमिक रूप ग्रहण कर लिया है। वे मान्यताएँ क्या हैं ?

( १ ) कृष्ण स्वयं भोगी और भुक्ता हैं। वे अपनी लीलाओं द्वारा अपना ही आस्वादन करते हैं। फिर भी वे निर्लिप्त हैं, सहज स्वतन्त्र हैं। इस भावना ने सूर को कृष्ण के अत्यन्त उच्च धरातल पर पहुँचा दिया है। इसी से लीलाभाव की प्रतिष्ठा हो सकी है। गोपियों के एक बड़े समूह के बीच में रह कर उनसे प्रेम-प्रसंग चलाते हुए भी शुद्धाद्वैत के ये कृष्ण उनमें बँध नहीं जाते। इससे उनके कार्यों में एक प्रकार की महानता आ जाती है।

( २ ) पुष्टिमार्ग के कृष्ण आनन्दमय हैं। सूर ने कृष्ण को इसी रूप में चित्रित किया है। केवल कुछ एक पदों में ही उनके

विषाद का चित्रण है जो कथाप्रसंग के कारण आवश्यक हो गया।

( ३ ) कृष्ण के प्रति आत्मसमर्पण ही सर्वोच्च भाव है। इसी से सूर के काव्य में नंद-यशोदा, गोपी-गोप सभी प्रेमपूर्ण आत्म-समर्पण कर देते हैं। कृष्ण के व्यक्तित्व में वे इतने डूब जाते हैं कि उनका स्वयम् अपना व्यक्तित्व जरा भी नहीं रह जाता। गोपियाँ तो इस आत्मसमर्पण का ज्वलंत उदाहरण हैं ही। चीर-लीला, दानलीला, रासलीला—सभी में उनका यही रूप सामने आता है।

(४) इस आत्मसमर्पण के मूल में भगवान की दृढ़ अनुकम्पा के लिए दृढ़ विश्वास रहता है। इस विश्वास से ही प्रेम उत्पन्न होता है। और उसके फलस्वरूप भक्त भगवान की सेवा में लग जाता है। इस सेवा का रूप वही है जो वल्लभाचार्य ने निश्चित किया था। इसमें बालकृष्ण इष्टदेव हैं और उनके गोपाल रूप की ही सेवा का आयोजन है। इस सेवा के आठ अंग हैं—मङ्गला, शृङ्गार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या-आरती, शयन। कथा-प्रसंग में जहाँ सूरदास को अवसर मिला है, वहाँ उन्होंने इन-इन सेवाओं के विषय में भी पद रख दिए हैं जिनका निर्माण कदाचित् स्फुटरूप में हुआ होगा।

वल्लभसंप्रदाय में दो प्रकार की सेवाएँ हैं—नित्य और नैमित्तिक। नित्य सेवाएँ कृष्ण की दिनचर्या से सम्बन्ध रखती हैं। नैमित्तिक सेवाएँ उत्सवों और विशेष दिनों से संबन्ध रखती हैं। नित्य सेवाओं में मंगला और शयन के सम्बन्ध के पद सूर में नहीं मिलते। कदाचित् "जगायवे को पद" और "कलेऊ के पद" मंगला समय में ही गाये जाते हों। "नित्य कीर्तन-पदों" के संग्रह में नित्यसेवा का आरंभ वल्लभ और विट्ठल की स्तुति से

होता है, फिर यमुना की विनती के बाद जगायवे और कलेऊ के पद गाए जाते हैं। इसके उपरांत मंगला आरती होती है। अब मङ्गला समय में खंडिता के पद, व्रतचर्य्या के पद ( चीरहरण ), हिलङ्ग के पद ( नयन और मन के प्रति उक्तियाँ ) और दधि-मथन के पद गाये जाते हैं। यह अवश्य वल्लभाचार्य के बाद का विकास है।

शृङ्गार में रूप-वर्णन और कूटपद हैं। आजकल पनघट-प्रसंग भी चलता है। यह भी बाद का जोड़ होगा। ग्वाल में खेलकूद, गोदोहन, माखनचोरी, भोजन, पालने के पद और वीरी के पद, छाक और गोचारण के पद रहते हैं। सूर के समय में शृङ्गार-सेवा इतनी विकसित नहीं होगी। उसके पूर्वरूप में गोचारण के पद ही होंगे। राजभोग में इस समय रूपवर्णन के पद, कुञ्ज के पद, पाट के पद, बहुनायक पद, मान, पांडेलीला है। पूर्व में केवल छाक, गोचारण और खेलकूद के पद ही रहे होंगे। इनमें से पांडेलीला केवल सूर में ही मिलती है। बहुनायकत्व और मान के पद भी सूर के ही अधिक हैं।

उत्थापन के समय गाये जाने वाले पद अनेक प्रसंगों से लिए हुए हैं—गोचारण, रूपवर्णन, नयन के प्रति, गाय का बुलाना, वन से लौटना। इनमें पहले अंतिम ही रहे होंगे अर्थात् राजभोग की आरती के बाद कृष्ण आराम-क्रीडा आदि करते होंगे।

सन्ध्या-आरती में रूपवर्णन, खरिक में गायदुहना, चन्द्र-प्रस्ताव और व्यालू के पद हैं। पहले "आवनी के पद" ही रहे होंगे।

शयन के समय के पद भी अनेक प्रसंगों से इकट्ठे किये गये हैं। उनके विषय अभिसार, मुरली के प्रति, मन के प्रति, राधा का शृङ्गार, रूप-वर्णन, मान आदि हैं। इन पदों में सूरदास

के पद बहुत थोड़े हैं—वे भी विशेष दिवसों पर ही गाये जाते हैं। स्पष्ट है यह बाद का विकास है।

यह स्पष्ट है कि सूर के बहुत कम पद नित्यसेवा के पदों में स्थान पाये हैं। इसका कारण है कि सूर ने सांप्रदायिकता को विशेष प्रश्रय नहीं दिया—केवल "सेवा" के लिए पद उन्होंने नहीं बनाए। हाँ, उनके पदों ने ही सेवा के वर्तमान रूप की प्रतिष्ठा कराई। इसीसे विट्ठलनाथ ने उन्हें "पुष्टिमार्ग का जहाज" कहा है। "मानसागर", "वामन की कथा", "महराने के पांडे की कथा" इसी ओर संकेत करते हैं। बाद में कृष्ण का बालरूप उनके शृङ्गार-रूप के पीछे छिप गया। इससे शृङ्गार के कितने ही पद भिन्न-भिन्न नित्य सेवाओं के साथ जोड़ दिए गए।

नैमित्तिक पदों में वसन्त, होली, हिंडोला और फूलडोल के पद अवश्य ही सम्प्रदाय की नैमित्तिक सेवा से प्रभावित जान पड़ते हैं, परन्तु बहुत सम्भव है कि सूर के ही पदों ने इन सेवाओं को चलाया, नहीं तो इनकी आवश्यकता ही क्या थी? इनके अतिरिक्त सूरसागर की कथा ने सम्प्रदाय को जन्माष्टमी की बधाई पालना, ढाढ़ी, मासदिवस का चोक, अन्नप्रासन, कनछेदन, करवट आदि के कितने ही हृदयग्राही प्रसंग दिये जिनमें आज सेवा का महान आयोजन होता है। नालछेदन और दसोधी के पद सूर में नहीं हैं। दान, नवविलास, मान, रथयात्रा, सखीभेष, मानमोचन, दीवाली, अन्नकूट, इन्द्रमानभंग, गौचारण, ब्याह—इनमें सूर के पद अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। हमारा तो विचार है कि बाद की सेवाएँ सूर की कथा का आधार लेकर ही खड़ी की गईं। कालांतर में ऐसी कथाएँ भी सेवा में सामग्री देने लगीं जिनका सूरसागर में कोई संकेत भी नहीं है जैसे चन्द्रावली और राधा की जन्मबधाई, राधाजी का पालना और बाललीला। सूर में राधा का जन्म नहीं है। चंद्रावली और ललिता भी

महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। ये केवल संगिनियाँ हैं। करवा, दशहरा, धनतेरस, रूपचतुर्दशी, कानजगाय, हटरी, भाइदूज, देव-प्रबोधिनी भी सूर में नहीं हैं। ये साधारण लोक-उत्सवों से संप्रदाय के भीतर आये हैं। गुसाईंजी और उनके पुत्रों (गिरधर, गोविंदराय, बालकृष्ण, गोकुलनाथ, रघुनाथ, घनश्याम और हरिराय) एवं बलदाउ का जन्मबधाई, पालना आदि भी संप्रदाय की उपज हैं। मीनसंक्रांति, फूलमडला, संवत्सर उत्सव, गनगोर, अक्षयतृतीया और रामनवमी का भी यही हाल है। सूर ने राम-कथा गाई है परन्तु संप्रदाय ने कृष्णजन्म के ढंग पर राम की बधाई, पालना और बाललीला का भी विस्तृत आयोजना की है। आचार्य वल्लभ की बधाई, पालना और बाललीला भी नवीन उपज है। इसी प्रकार अनेक प्रसंग हैं जैसे अक्षयतृतीया, नृसिंह, नाव के पद, गंगादशमी, चुन्दरी, कृष्ण का शृङ्गार, घटायें पवित्रा, राखी। इनसे कृष्ण साधारण लोक-जीवन में भली भाँति प्रतिष्ठित हो सके हैं।

आधुनिक समय में वल्लभसंप्रदाय में जो पूजायें (सेवायें) प्रचलित हैं उनका वर्गीकरण इस प्रकार होगा—

१—वल्लभी सेवायें—नित्य सेवाएँ, यद्यपि इनमें शृङ्गार भावना के मिलने के साथ अनेक अन्य विषय भी आ गये हैं—कदाचित सूर के प्रभाव के कारण ही।

२—सूरदासी सेवायें—नैमित्तिक सेवाओं का विशेष आयोजन सूर की सामग्री के आधार पर ही खड़ा किया गया। ये सेवायें हैं—जन्म और लौकिक संस्कार, असुरवध, पांडे और वामन की कथायें, दान, मानमोचन, रास हिंडोला, बसंत, होली, बहुनायकत्व, पनघट, चीरहरण, गोवर्धन, अन्नकूट।

३—सूर की कृष्ण-कथा के ढंग पर श्री रामचंद्र, वल्लभ और उनके पुत्रों की जन्मवधाई, ढाढ़ी और बाललीला की मौलिक प्रतिष्ठा हुई।

४—कुछ सेवायें लौकिक त्योहारों का कृष्ण से संबंध जोड़ कर गढ़ी गईं जैसे दशहरा, धनतेरस, रूपचतुर्दशी, दिवाली, हटरी, भाईदूज, देवप्रबोधिनी, मौनीसंक्रांति, संवत्सर, गनगोर, अक्षयतृतीया, पवित्रा, राखी, गंगा-दशमी, स्नानयात्रा, वसंत, होली।

५—कितनी ही सेवाओं का आविष्कार स्वयम् संप्रदाय की भावुकता ने किया है जैसे रथयात्रा के कलेऊ, मुकुट, टिपारा, सेहरा, घटायें, काँच और फूल के हिंडोले, फूल-मंडली वास्तव में सारी सेवाओं के पीछे वल्लभाचार्य के पीछे सूर का हाथ ही सबसे महत्त्वपूर्ण है—सबसे अधिक भी है। संभव है नैमित्तिक सेवाओं की सूझ भी सूर ही ने की है। दो बातें संभव हैं—

या तो सूर ने जैसे-जैसे पदसमूहों का निर्माण किया। वैसे-वैसे नैमित्तिक कार्यों का विस्तार होता गया।

या पहले सूरसागर तैयार हो गया, फिर उसकी लीलाओं के आधार पर नैमित्तिक सेवाओं का सूत्रपात हुआ।

जिन लीलाओं के सम्बन्ध में सूर के पद नहीं मिलते वे निश्चय ही अष्टछाप के अन्य कवियों की भावुकता और जनता के निकट पहुँचने की भावना के कारण नैमित्तिक सेवा के लिये आविष्कृत की गईं। जनता के सारे तीज-त्योहारों और उत्सवों को कृष्ण से जोड़ दिया गया।

जो हो, हम देखते हैं कि सूरसागर में जहाँ एक ओर कवि धर्म की उच्चतम भावभूमि को स्पर्श करने में सफल हुआ है जिसने

उसके ग्रंथ को व्यापक रूप दिया है, वहाँ दूसरी ओर उसमें अपने विशेष संप्रदाय ( पुष्टिमार्ग ) की धार्मिक मान्यताओं पर ही उसका ढाँचा खड़ा किया है एवं उसी संप्रदाय की पूजापद्धति से उसे सरस बनाया है। इससे उसका ग्रंथ एक विशेष संप्रदाय की संपत्ति भी है और व्यापक रूप से वह सभी कृष्ण-भक्तों के लिये भी है। यही नहीं, उसने परवर्ती पुष्टिमार्ग की पूजापद्धति के विकास में भी महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

९

# शुद्धाद्वैत की दार्शनिक मान्यताएँ और सूरसागर

सूरदास वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में दीक्षित थे जिसके दार्शनिक मतवाद को शुद्धाद्वैत कहा जाता है। इसी से उनकी कविता में उक्त मतवाद का प्रभाव होना असंभव नहीं है। नीचे हम इसी सम्बन्ध में विचार करेंगे।

१—वल्लभाचार्य ने चरमसत्ता को परब्रह्म, पूर्णब्रह्म या पूर्ण-पुरुषोत्तम कहा है। यही ब्रह्म कृष्ण के रूप में अवतार लेते हैं। इनमें और गोपालकृष्ण में कुछ भी अन्तर नहीं। इनके गुण हैं—सत, चित्, आनन्द और रस। वे स्वयं कर्ई हैं, स्वयं भोक्तृ हैं। लीला के लिये ही वे अवतार लेते हैं। इस अवस्था में वे अनेक जीवों में प्रविष्ट होकर भोक्तृ बन जाते हैं। मूल में वे अजन्मा, अजर-अमर, निर्गुण, निःस्पृह, अकर्मी और निराकार हैं। इन्हीं सिद्धान्तों को सूर कई प्रकार से काव्य का सफल रूप देते हैं : कृष्ण कहते हैं—

को माता को पिता हमारे
कब जनमत हमको तुम देख्यो हँसी लगत सुनि बात हमारे
कब माखन चोरी करि खायो कब बाँधे महतारी
दुहत कौन की गैया चारत बात कही यह भारी

"निजसुख" (लीला के आनन्द) के लिए ही ब्रह्म कृष्ण-राध के दो रूपों में अवतार लेता है—

(१) व्रजहि बसे आपुहि बिसरायो
द्वै तनु जीव एक तुम दोऊ सुख कारण उपजायो
ब्रह्मरूप द्वितिया नहिं कोई तव मन त्रिया जनायो
(२) तब नागरि मन हरप भई
प्रकृति पुरुप नारि मैं वे पति काहे भूलि गई
को माता को पिता बंधु को यह लोमेंट नई
(३) समुझि री नाहिन नई सगाई
प्रकृति पुरुप श्रीपति सीतापति अनुपम कथा सुनाई
सूर हती रसरीति श्याम सों तैं व्रज बसि बिसराई
(४) निरखि तीय रूप प्रिय चकित भारी
किधौं वै पुरुष की नारि मैं, नारि वै पुरुप मैं भई तनु सुध बिसारी

भगवान स्वयं कर्तृ हैं, स्वयं भोक्तृ, इसे सूर ने कृष्ण और राधा एवं गोपियों के सम्बन्ध में दिखाया है। वह स्वयं इनका रूप धारण कर अपने में रस लेता है। वह निर्लिप्त है, इसे माखनचोरी और शृंगार-लीलाओं द्वारा प्रगट किया गया है।

वल्लभाचार्य ने ज्ञान और क्रिया को ब्रह्म के समस्त गुणों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कहा है; परन्तु सूरदास जी को ही सब से महत्त्वपूर्ण मानते जान पड़ते हैं जो आनन्द सुख है। महाप्रभु ने तैत्तिरीय उपनिषद के आधार पर भगवान में रससुख की अवस्थिति बताई है, अतः रसानन्द भगवत्प्राप्ति का साधन बन गया है। आठों रसों में शृंगार ही सर्वश्रेष्ठ है। साहित्यशास्त्र में इसके दो प्रकार हैं—संयोग, विप्रलंभ। इसीसे भक्त भगवान के प्रति जिस माधुर्य सुख का अनुभव करता है, उसमें भी दो भेद होजाते हैं। भगवान की लीला में भाग लेता हुआ सान्निध्य प्राप्त भक्त संयोग के रस का आनन्द लेता है। उनके वियोग में वह विप्रलंभ भाव को प्राप्त होता हुआ सदैव उन्हीं का ध्यान करता रहता है, यहाँ तक कि उसे कृष्ण के सिवा और कुछ दिखलाई ही नहीं

पड़ता। यह दूसरी दशा पहली दशा से ऊँची कही गई है। वल्लभाचार्य ने "यच्चदुःखं यशोदाय"—वाले श्लोक में इस मानसिक संयोग-वियोग-जन्य सुख-दुःख की अनुभूति को ही मानसिक सेवा कहा है। इस प्रकार उन्होंने वात्सल्य, और शृङ्गार भाव से भगवान के संयोग और वियोग में रस लेने का आदेश कर ही दिया था। इसी से सूरदास के काव्य में इनका विशद विस्तार है। वास्तव में राधाकृष्ण लीला को छोड़ कर और कुछ रूपकों को छोड़ कर सारा सूरसागर इसी ढाँचे पर खड़ा है। व्रज की सारी लीलाएँ वात्सल्य अथवा शृङ्गार के संयोगपक्षों को ही सामने रखती हैं। कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरागमन के बाद नंद यशोदा और गोपियों का विरह विप्रलंभपक्ष को उपस्थित करता है। स्पष्ट है कि सूर ने सारे सूरसागर में वल्लभाचार्य की साधना को भी स्वीकार किया है। सूरसागर स्वयं उनकी साधना है। वह केवल बालकृष्ण और किशोर कृष्ण की लीलाओं का वर्णन मात्र नहीं है, जैसा भागवत में है। वह तो उसी प्रकार की मानसिक साधना है: हृदय, मन, बुद्धि का तप है जिस प्रकार की साधना और तप की योजना वल्लभाचार्य ने ऊपर संकेत किये गये छंद में की है। अन्तर केवल इतना है कि इस छंद में व्यक्तिगत भावना का प्रकाशन हुआ है और सूरसागर में इस भावना को साधना का रूप दे दिया गया है।

वल्लभाचार्य के कथन में जिस आध्यात्मिक उत्कण्ठा और तीव्रता के दर्शन होते हैं, सूर के काव्य में उससे कम उत्कंठा और तीव्रता नहीं है वे स्वयं ही नंद, यशोदा, गोपीगोप बन गए हैं। इस बात का साक्षी चाहिये तो स्वयं सूरदास के पद उपस्थित हैं जिनमें वस्तुव्यंजना और कथावर्णन के साथ अत्यन्त तीव्र आत्माभिव्यक्ति चलती है। गोपियों की तरह सूर भी सर्वात्मभाव से कृष्ण को समर्पण कर देते हैं—वे कृष्ण में ही सब कुछ देखते

हैं। तभी तो चतुर्भुजदास के प्रश्न पर उन्होंने कहा था कि वे गुरु और भगवान को अलग करके नहीं देखते। तुलसी जहाँ ज्ञान-वादियों की तरह कहते हैं—

सियाराम मय सब जग जानी
करउँ प्रणाम जोर जुगपानी

वहाँ सूर सच्चे भक्तों का तरह संसार को कृष्ण की सत्ता में ही अधिष्ठित कर देते हैं। किम्वदन्ती के अनुसार जब उन्हें कुएँ में कृष्ण के दर्शन हो गए तो उन्होंने यही तो माँगा था कि मैं इस रूप के सिवा कुछ न देख सकूँ। यह चाहे सच नहीं हो, परन्तु इस दन्तकथा में जो भावना है उसकी पुष्टि तो सूरदास के काव्य से होती ही है।

वल्लभाचार्य पूर्णपुरुषोत्तम या परब्रह्म से नीचे उतर कर एक अक्षरब्रह्म की भी प्रतिष्ठा करते हैं जिसमें सत् चित् और कुछ मात्रा में आनन्द के अंश हैं। यही अक्षरब्रह्म वैकुण्ठ, चरण आदि के रूप में ज्ञानी को प्राप्त होता है। वास्तव में अक्षर, काल, कर्म स्वभाव सब परब्रह्म के विभिन्न रूप हैं और उससे अभिन्न हैं। ज्ञान का लक्ष्य है मोक्षप्राप्ति, अतः ज्ञानी के लिये अक्षर प्रकृति और पुरुष के रूप में प्रगट होता है। प्रकृति २८ तत्त्वों या "पदार्थों" में होकर जगत् को जन्म देती है। ये तत्त्व हैं—सत्त्व, रजस, तमस, पुरुष, प्रकृति, महत्, अहंकार, ५ सूक्ष्म इंद्रिया, ५ स्थूल इंद्रियाँ, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, मन। ये तत्त्व सांख्य के तत्त्वों से भिन्न हैं यद्यपि इनका नाम वही है। ज्ञान के द्वारा जो यह जानता है कि प्रत्येक वस्तु ब्रह्म है वह अक्षरब्रह्म को प्राप्त होता है (या अक्षरब्रह्म से सायुज्ज्य प्राप्त करता है)।

सूर के काव्य में यह सब कुछ नहीं है, क्योंकि वे ज्ञानमार्ग पर चल ही नहीं रहे। उन्हें अक्षरब्रह्म से क्या, वे तो पूर्णपुरुषोत्तम को जानने वाले भक्त हैं।

२—वल्लभाचार्य का मत है कि जब ब्रह्म आनन्द के लिए लीला करना चाहता है तो उससे जीवात्माओं की उसी प्रकार सृष्टि होती है, जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग। इस प्रकार जीवात्मा परमात्मा का ही अंश है। वह अनन्त और "अणु" है। लीला के लिए ही ब्रह्म ने उसमें आनन्द का तिरोभाव कर दिया है, जिसका फल है कि वह बन्धन और अविद्या का शिकार है। जीवात्माएँ तीन प्रकार की हैं। ये प्रकार-भेद वास्तव में महत्त्वशून्य हैं। ब्रह्म लीला के लिए ही यह विभाजन करता है :

(१) प्रवाह—जो संसार में लिप्त हैं,

(२) मर्यादा—जो वैदिक कर्मकांड पथ का पालन करती हैं.

(३) पुष्टि—जो भगवान से प्रेम का नाता जोड़ती है जो स्वयं भगवान की अनुकम्पा (पुष्टि) से उनमें अंकुरित हो जाती है।

सूर ने इनका उल्लेख भी नहीं किया है। उनका ग्रन्थ भक्ति-ग्रंथ है, सिद्धान्त-ग्रंथ नहीं। अतः उन्हें इसकी आवश्यकता ही नहीं थी। वे स्वयं "पुष्टि" जीव की श्रेणी में आते हैं।

वल्लभाचार्य ने पुष्टि और मर्यादा मार्गों को स्वीकार किया है। मर्यादामार्ग से चलता हुआ साधक वैदिक आदेशों का पालन करता है, श्रवणादि से भगवद्भक्ति प्राप्त करता है, अन्त में उसकी साधना का ध्यान रखते हुए भक्त को भगवान सायुज्य दे देते हैं। पुष्टिमार्ग में पहले भगवान अनुग्रह (पुष्टि) है। पुष्टिमार्गी भक्त प्रेम के कारण श्रवणादि का पालन करता है उनके द्वारा प्रेम की उत्पत्ति हो, इसलिये नहीं। मर्यादामार्ग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए है। पुष्टि में वर्णाश्रम का कोई विचार नहीं परन्तु पुष्टिप्राप्त भक्त के लिए भी सेवा "आवश्यक" है। यदि वह असाध्य या दुसाध्य हो, तो प्रवृत्तिमार्ग, जिसमें केवल आत्म-समर्पण भाव ही आवश्यक है, सेवा की भी आवश्यकता नहीं रह जाती।

३—वल्लभ के अनुसार यह संसार सत् है। लीला ही सृष्टि का कारण है। ब्रह्म ही उपादान कारण है। प्रलय के बाद यह जगत् उसी में लय हो जाता है। यह जगत् ही ब्रह्मस्वरूप है, इसकी सृष्टि में ब्रह्म अपना स्वरूप नहीं बदलता। इसे "अविकृत परिणाम" कहते हैं। इस जगत् को ब्रह्म का ही आधिभौतिक रूप समझना चाहिये जिसमें चित् और आनन्द का तिरोभाव है। स्वप्न में जिस संसार की सृष्टि हम करते हैं, वह इससे भिन्न होता है, अतः मिथ्या है। यह संसार ब्रह्म में ही आरम्भ, अवस्थित और प्रलय को प्राप्त होता है। परन्तु आधिभौतिक ब्रह्म (संसार—ब्रह्म का सत् स्वरूप) और मिथ्या संसार (जिसका कारण अविद्या है) में अन्तर है। इस अविद्या से ही "मेरे-तेरे" का जन्म है।

तो क्या यह अविद्या सत्य है? हाँ, लीला के लिए ही ब्रह्म अविद्या का विस्तार करता है। अविद्या ब्रह्म की ही शक्ति है। लीला के लिए ब्रह्म जीवात्मा को अविद्या में ग्रसित करा देते हैं। यह संसार अहंमता और ममता से बना है जो अविद्या के दो रूप हैं। जीवात्मा इस संसार से ऊपर उठ कर ही मोक्ष प्राप्त करती है। अविद्या के सम्बन्ध में सूरदास का प्रसिद्ध पद है—

अब नाच्यों बहुत गुपाल

काम-क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल
महामोद को नेपुर बाजत निंदा शब्द रसाल
भरम भये मन भयो पखावज चलत कुसंगत चाल
तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दे ताल
माया को कटि फेंटा बाँध्यो लोभ तिलक दियो भाल
कोटिक कल काँछि देखराई जलथल सुधि नहिं काल
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करो नन्दलाल

४—वल्लभाचार्य मोक्ष के लिये कर्मयोग, ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग तीनों को स्वीकार करते हैं। कर्ममार्ग में अग्निहोत्र दशापूर्णमांश पशुयज्ञ, चातुर्मास्य, सोमयज्ञ (पूर्वकांड) और ज्ञान (उत्तरकांड) निहित हैं। इन यज्ञों को करता हुआ मनुष्य ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर देवत्व का अधिकारी होता हुआ शनैः-शनैः मोक्ष को पहुँचता है। परन्तु यदि उसे "पुष्टि" प्राप्त है तो वह मृत्यु के बाद सीधे मोक्ष प्राप्त करता है। परन्तु यदि उसे ब्रह्मज्ञान न भी हो और वह श्रुति के अनुसार कर्मकांड करता जाय तो आत्मानन्द की प्राप्ति उसे होगी। यदि वह किसी विशेष फलाकांक्षा से कर्मकांड में लगा है तो वह स्वर्गलोक को प्राप्त करेगा। पुण्य-शेष होने पर वह फिर आवागमन के चक्र में पड़ जायगा।

ज्ञानी अक्षरब्रह्म में लय हो जायगा परन्तु ब्रह्मज्ञान के साथ यदि वह भक्त भी है तो पूर्ण पुरुषोत्तम में लीन होगा। यह स्थिति पहली स्थिति से अच्छी है।

परन्तु इससे भी ऊँची स्थिति है जब स्वयम् परब्रह्म किसी विशेष जीवात्मा पर पुष्टि करता है। उसे वह अपने समान सूक्ष्म दैवी शरीर देकर निरंतर लीला (नित्यलीला) में स्थान देता है। इस लीला में भगवान भक्त की आज्ञा में रहता है, उसके इशारे पर नाचता है और उस भक्त को भजनानन्द या स्वरूपानंद की प्राप्ति होती है। यह अवस्था किसी भी साधना से प्राप्त नहीं होती है। यह केवल पुष्टि द्वारा प्राप्त होती है। सूर इसको समझते हुए ही कहते हैं :

सूर की स्वामिनी नारि ब्रजभामिनी
गोपी पदरजमहिमा विधि भृगुसों कही
वरस सहसन कियो तप मैं तेऊ न लही

५—शुद्धाद्वैत में माया को स्थान नहीं मिला है। शंकर के अनुसार अद्वैतस्थिति में माया ही भ्रमात्मक अथवा मिथ्या अन्तर

डाल देती है। माया स्वयं मिथ्या है। ब्रह्म, जीव, और प्रकृति का तज्जन्य भेद भी मिथ्या है। वल्लभाचार्य कहते हैं—माया यदि मिथ्या है तो सत्स्वरूप ब्रह्म से उसका किस प्रकार संबन्ध हो सकता है। इसी से उन्होंने माया को स्वीकार न करते हुए ही जगत् की द्विधात्मक सत्ता का रहस्योद्घाटन करने की चेष्टा की। उन्होंने कहा : ब्रह्म है सच्चिदानन्द, जीव ब्रह्म ही है परन्तु उसमें साधारणतः ब्रह्म के एक तत्त्व, आनन्द, का लोप है। प्रकृति ब्रह्म ही है परन्तु उसमें सत् और आनन्द दो गुणों का लोप हो जाता है। इसी लिए साधारण परिस्थिति में अन्तर है।

सूरदास माया की सत्ता को स्वीकार कर लेते हैं—

"अविगत अगम अपार आदि नाहिं अविनासी
परम पुरुष अवतार माया जिनकी दासी"
"अलख निरंजन निर्विकार अच्युत अविनासी
सेवत जाहि महेश शेष सुर माया दासी"

दूसरे स्थान पर वे माया की विशद विवेचना करते हुए कहते हैं—

"... सो हरि माया जा वश माँही"
माया को त्रिगुणात्मक जानो। सत रज तम ताको गुण मानो
तिन प्रथमैं महतत्त्व उपजायो। ताते अहंकार प्रगटायो
(स्कं० ३, कपिल-देवहूति-प्रसंग)

सृष्टि के प्रलय का वर्णन करते हुए सूर कहते हैं—

शत सम्वत् भये ब्रह्मा मरै। महाप्रलय नित प्रभुजू करै
माया माँहि नित्य लै पावै। माया हरिपद माँहि समावै
हरि को रूप कह्यो नहिं जाइ। अलख अखंड सदा इक भाइ
बहुरि जब हरि की इच्छा होय। देखे माया के दिसि जोय
माया सब तबहीं उपजावै। ब्रह्मा सों पुनि सृष्टि उपावै
(स्कं० १२)

स्पष्ट है कि यहाँ सूरदास वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों से दूर जा पड़े हैं, उन्होंने माया को एक व्यक्तित्व प्रदान कर दिया जो यद्यपि ब्रह्म से भिन्न नहीं, उसी पर आश्रित है, क्योंकि माया ब्रह्म का ही अंश है, उससे ही निकलती है, उसमें ही लय हो जाती है, परन्तु है सत्य, मिथ्या नहीं, छलावा नहीं। माया द्वारा ही कारण कार्य में बदलता भासता है। वास्तव में जनसमुदाय में मायावाद की इतनी प्रधानता थी कि कोई भी कवि-भक्त उससे अछूता नहीं रह सका है। दूसरे, भक्तिवाद में माया का अस्तित्व स्वीकार ही करना पड़ता है, क्योंकि भक्ति तो माया का ही बाध है।

वल्लभाचार्य ने अविद्या का अस्तित्व स्वीकार किया है जिसके दो अङ्ग हैं—अहंसता और ममता। इनके कारण ही "संसार" (दुःख-सुख) का अस्तित्व है। इस अविद्या का आवरण ही आधि-भौतिक ब्रह्म (संसार) के सत्य रूप को छिपा देता है। इसीसे महाप्रभु कहते हैं—

निराकारमेव ब्रह्म माया जवनिकाच्छन्नम्
अभिव्यक्तेर्हेतो साकारत्वमपि मायाय गमनकृतत्वान्न स्वाभाविकत्वम्।
(अणुभाष्य)

सूरदास ने "सूरदास की सबै अविद्या दूर करो नंदलाल"—कह कर इस मतवाद को स्वीकार किया है। परन्तु जहाँ इस अविद्या का कोई दृढ़ आधार नहीं है, भागवान केवल लीलामात्र के लिये उसको ओढ़ लेते हैं, वहाँ सूर उसे भगवान की शक्ति का दृढ़ आधार देते हैं। कृष्ण कहते हैं—

वह कमरी-कमरी करि जानति
जाके जितनी बुद्धि हृदय में सो तितनी अनुमानति
या कमरी के एक रोम पर वारौ चीर नील पाटम्बर

सो कमरी तुम निन्दति गोपी जो तीनि लोक आडम्बर
कमरी के बल असुर संहारे कमरिहि ते सब भोग
जाति पाँति कमरी सब मेटी सूर सबहि यह योग
( स्कं० १० )

सूर कहना चाहते हैं कि वास्तव में ब्रह्म माया के बल पर ही लीला करता है, यद्यपि वल्लभाचार्य ऐसा नहीं कहते। परन्तु सूर ने इस अविद्या का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

माधव जू मेरी इक गाइ ( स्कं० १ )
माधव जू नेकु हरको गाइ ,,

वे कवि हैं, अतः उनकी कल्पना ने निराधार माया को ही व्यक्तित्व का आधार दे दिया है। स्पष्ट है कि सूरदास वल्लभ के सिद्धांतों की रक्षा करते हुए आगे बढ़ते हैं, परन्तु भक्तिमतवाद की विशेषताओं को नहीं छोड़ते। इसी से उन्होंने दार्शनिक मतवाद में मानी हुई 'माया' और वल्लभाचार्य की अविद्या को एक कर दिया है।

विनयपदों में सूरदास ने माया को बड़ी महत्ता दी है और उसकी व्यापक विनाशकारिणी शक्ति को बार-बार स्मरण किया है—

हरि तुव माया को न बिगोयौ
सौ जोजन मरजाद सिंधु की पल में राम बिलोयौ
नारद मगन भये माया में ज्ञान बुद्धि बल खोयौ
साठि पुत्र अरु द्वादस कन्या कंठ लगाये जोयौ
संकर का मन हर्यौ कामिनी सेज छाँडि भू सोयौ
चारु मोहिनी आइ अँध कियो तब नखसिख तै रोयौ
सौ भैया दुरजोधन राजा पल में गरद समोयौ
सूरदास कंचन अरु काँचहि एकहि धाग पिरोयौ

हरि तेरो भजन कियौ न जाइ

कहा करौं तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ
जबै आवौं आधुसङ्गति कछुक मन ठहराइ
ज्यों गयंद अन्हाइ सरिता बहुरि बहै सुभाइ
वेस धरि हरि हर्‍यौ परधन साधु साधु कहाइ
जैसे नटवर लोभ-कारन करत स्वाँग बनाइ
करौं जतन न भजौं तुमकौ कछुक मन उपजाइ
सूर प्रभु की सबल माया देति मोहि भुलाइ

इत पदों में गर्व और सांसारिक प्रलोभनों ( कामिनी, कंचनादि) को कहा गया है। वास्तव में ये अहंमता और ममता के ही अंतर्गत आते हैं।

परन्तु इन शुद्धाद्वैती दार्शनिक मान्यताओं के साथ कितनी ही पौराणिक भावनाएँ भी मिश्रित हैं। इसके कई कारण हैं :

( १ ) युग के पौराणिक वातावरण का प्रभाव जिससे सूरदास वल्लभाचार्य संपर्क में आने से पहले प्रभावित हो चुके होंगे,

( २ ) भागवत पुराण का प्रभाव,

( ३ ) कृष्ण-कथा की पौराणिक परंपरा का प्रभाव,

( ४ ) सूरदास की अपनी भक्तिभावना का प्रभाव जिसके कारण कितनी ही पौराणिक मान्यताओं को ( जैसे माया का अस्तित्व ( थोड़ा-बहुत स्वीकार करना आवश्यक हो गया है। जहाँ एक ओर सूर के कृष्ण ब्रह्म हैं, वहीं दूसरी ओर वे कहते हैं—

कंस हेतु हरि जन्म लियो

पापहि पाप धरा भइ भारी तब हम सबनि पुकार कियो
शेषशयन जहँ रमासङ्ग मिलि तहाँ अकाश भई यह बानी

असुर मारि भुव भार उतारौं गोकुल प्रगटौं आनी
गर्भ देवकी के तनुधरिहौं जसुमति को पय पीहौं
पूरब तप बहु कियौ कष्ट करि इनको बहुत ऋणी हौं
यह बानी कहि सूरसुरन को अब कृष्ण अवतार
कह्यो सबनि व्रजजन्म लेहु सङ्ग हमरे करहु बिहार

यहाँ कृष्ण विष्णु के अवतार हो जाते हैं। उनके अवतार का कारण भी "लीला" नहीं रहता। ऐश्वर्य की ही प्रधानता हो जाती है—

ब्रह्म जिनहिं यह आयसु दीन्हों
तिनि तिन संग जन्म लियो ब्रज में सखी सखा करि परगट कीन्हों
गोपीग्वाल कान्ह दुइ नाहीं ये कहुँ नेक न न्यारे
जहाँ-जहाँ अवतार धरत हरि ये नहिं नेक बिसारे
एकै देह बिहार करि राखे गोपी गोप मुरारि
यह सुख देखि सूर के प्रभु को थकित अमर संग नारि

इस पद में शुद्धाद्वैत के दार्शनिक सिद्धान्त और पौराणिक भावना को विचित्र रूप से मिला दिया गया है। इसीलिए सूरदास अनेक स्थानों पर कृष्ण के लिए वे संबोधन कर देते हैं जो विष्णु के लिए प्रचलित हैं।

स्पष्टतः सूरदास दो पथों पर चल रहे हैं—

( १ ) कथा पौराणिक चलानी पड़ी जिसमें भक्तों के त्राण के हेतु असुरवध के लिए, भगवान को अवतार लेना पड़ा। ऐश्वर्य प्रधान था। यह भागवदीय कथा है।

( २ ) इसके साथ ही उन्हें नई कथाओं का आविष्कार भी करना पड़ा जिनमें शुद्धाद्वैत की पुष्टि हो—ब्रह्म लीला मात्र के लिए अवतर ले; गोपियाँ, नंदयशोदा, राधा सब उसी के अंग हों, ब्रह्म कर्तृ से भोक्तृ बने; शुद्धाद्वैत में जिस वात्सल्य और

शृङ्गार समन्वित संयोगविप्रलंभ-प्रधान मानसिक साधना की बात है, वह पुष्ट हो; भागवत के चीरहरण, रास जैसे मधुर स्थलों को विकास मिले तथा इसी रूपक श्रेणी की अन्य कथाएँ जोड़ी जायें एवं कृष्ण की मानवता की प्रतिष्ठा हो साथ ही सूर ने कृष्ण-राधा के प्रेमविकास की भी विशद कल्पना कर ली। इस प्रकार तीन श्रेणी की कथाओं का गठबन्धन हुआ। वह भी पदों में।

यदि सूर पौराणिक कथा को छोड़ देते तो वे अधिक सफल होते, परन्तु भागवत की प्रतिष्ठा के कारण ऐसा असंभव था। अतः सूरदास ऐसा नहीं कर सके। फलतः उनका काव्य न लीला-काव्य रहा, न चरित्र-काव्य न रूपक-काव्य। वह एक साथ सब कुछ हो नहीं सकता था। कथा की पौराणिकता उसे लीलाकाव्य होने से रोकती है क्योंकि उसमें अवतार धारण करने का विशेष उद्देश्य आ जाता है। धार्मिकता और रूपकों की सृष्टि चरित्र के विकास में बाधक है। अनेक ऐसी कथाओं का समावेश जो रूपक नहीं हैं सूरसागर को रूपक-काव्य नहीं बनने देता। संक्षेप में, हम सूरसागर का विश्लेषण इस प्रकार कर सकते हैं :

राधाकृष्ण की कथा—प्रेम-प्रधान चरित्र-काव्य या खंड-काव्य

गोपियों और कृष्ण की कथा—रूपक-काव्य ( दानलीला ) चीरहरण, रास और खंडिता-प्रसंग में यह रूपक, स्पष्ट है।

पौराणिक कथा—असुरवध, कालियदमन जैसी कथाएँ जिनसे कृष्ण के अलौकिक ऐश्वर्य की पुष्टि होती है।

लीलाकाव्य—वात्सल्य-प्रधान अंश एवं कृष्ण से दृष्टिकोण से रास, चीरहरण आदि।

शुद्धाद्वैती काव्य—सारी कथा में, विशेषकर नंद-यशोदा
गोपी-कृष्ण (वात्सल्य) और गोपियों-
कृष्ण के (शृङ्गार) प्रसंग में ;

परन्तु फिर भी सूर ने प्रयत्न किया है कि प्रत्येक लीला को लौकिक धरातल से उठा कर आध्यात्मिक धरातल पर पहुँचा दें और वे वल्लभाचार्य द्वारा स्पष्ट किए अर्थों से खूब परिचित जान पड़ते हैं—

मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी
सुनि ध्वनि सिद्ध समाधि टरी

वल्लभाचार्य ने मुरली को "नामलीलारूप" (वेणुगीतम् : सुबोधिनी) कहा है उसी स्थान पर वे कहते हैं—सा हि सर्वेषां भगवदीयत्वं सम्पादयति आनन्द एव सा प्रकटा द्रवीभूता। ब्रह्मानन्दादप्यधिका। आनन्दसारभूता रास और वृन्दावन के सम्बन्ध में महाप्रभु के सिद्धान्तों को सूरदास ने काव्य का सुन्दर रूप दे दिया है—

रास रस रीति नहिं बरनि आवै
कहाँ वैसी बुद्धि कहाँ वह मन लहौं
कहाँ इह चित्त जिय भ्रम भुलावै
जो कहौं कौन माने निगम अगम जो
कृपा बिनु नहिं या रसहिं पावै
भाव सों भजै, बिनु भाव में यह नहीं
भाव ही माँह याको बसावै

(रास)

नित्यधाम वृन्दावन श्याम। नित्यरूप राधा वृजबाम
नित्यरास जल नित्यविहार। नित्यमान खंडिताभिसार

ब्रह्म एई करतार । करनहार त्रिभुवन संसार
नित्यकुञ्ज सख नित्यहिंडोर । नित्यहिं त्रिविध समीर झकोर

(वृन्दावन)

काव्य की दृष्टि से सूरदास ने वात्सल्य और शृङ्गार कथाओं में साहित्यशास्त्र का सहारा लेकर नई सृष्टियाँ की हैं जैसे नेत्रों के प्रति पद, मुरली के प्रति उपालंभ, दृष्टकूट, संचारी भावों के साथ रसपुष्टि की चेष्टा, भ्रमरगीत, गोपिका-विरह-गीत। यहाँ भावना की गहराई और तीव्रता के कारण कवि एक साथ ही काव्य और अध्यात्म को छूता है। परन्तु हमें यह भी समझ लेना चाहिये कि सूरदास का ध्येय आध्यात्मिक साधन ही अधिक है काव्यरचना गौण है। इसी से काव्य की दृष्टि से अनेक दोष मिलेंगे। जैसे—

( १ ) स्थूल संयोग ( रति, सुरतांत आदि ) के चित्रण।

( २ ) बालकृष्ण में शृङ्गार का सम्मिश्रण।

सूर का दृष्टिकोण तो था—

वे हरि सकल ठौर के बासी
जाको जैसो रूप मन रुचै अपबस करि लीजै

और

काम क्रोध में नेह सुहृदयता काहू विधि करै कोई
धरैं ध्यान हरि को जै दृढ़ करि सूर सो हरि सो होई

इसी से गोपियाँ बालकृष्ण को शृङ्गार भाव से देखती हैं। वात्सल्यभाव : यशोदा उनकी बातें समझ नहीं पातीं—

"मेरो हरि कहँ दशहि बरस को तुम्हरी यौवन मद उदमानीं"
"ऐसी बातें कहति मानो हरि बरस तीस को"
"तुम तरुणी हरि तरुण नहिं मन अपने गुनि लेहू"

इस द्विधा को लेकर सूर ने अनेक सुन्दर कथनोपकथन का सृजन किया है। कृष्ण के रहस्य को ठीक-ठीक तो सख्यभाव के उपासक ही जानते हैं जो दोनों की परिस्थितियों को समझ सकते हैं। सारे सूरसागर के पीछे सूर की यही अनन्यभाव की सख्य भावना है।

(३) राजभोग संबंधी पदों में भोजन पदार्थों की अनर्थक सूची।

(४) विषय और भाव की अनेक बार पुनरुक्ति।

---

# सूरदास का भक्ति-काव्य

सूरदास के काव्य के दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं, भक्तिपक्ष और काव्य-पक्ष। जहाँ केवल भक्तिभावना ग्रहण करने की बात है; अव्यभि-चारिणी भक्ति है, वहाँ काव्य किस कोटि का है, यह प्रश्न ही नहीं उठता, परन्तु उच्च कोटि का काव्य निश्चय ही भक्तिभावना को अधिक ऊँची भूमि पर प्रतिष्ठित करने में सहायक होगा। भक्तों के लिए तो सूर का प्रत्येक पद भगवत्साक्षात्कार में सहायक हो सकता है। परन्तु यहाँ हमें सूर के काव्य को भक्ति सम्बन्धी आदर्शों पर आँकना है। स्फुट पदों की अलोचना करना हमारा उद्देश्य नहीं है।

सूर की भक्ति के आलंबन कृष्ण हैं, स्वयं सूर भक्ति के आश्रय हैं, कृष्ण के रूप-गुण, लीलाएँ उद्दीपन विभाव हैं।

सूर के इस आलंबन का रूप क्या है? सूरदास के कृष्ण उसी तरह परब्रह्म हैं जिस तरह तुलसी के राम। जहाँ राम पर-ब्रह्म भी हैं और परब्रह्म के अवतार दाशरथि राम भी हैं, वहाँ सूर और भी आगे बढ़ कर कृष्ण को परब्रह्म से उतर कर कुछ भी मानने को तैयार नहीं हैं। उनके कृष्ण गोपियों से स्वयं कहते हैं—

अविगत हैं, मन-वाणी को अगम-अगोचर हैं। वास्तव में वे

को माता को पिता हमारे
कब जनमत हमको तुम देख्यो हँसी लगत सुनि बात तुम्हारे

कब माखन चोरी करि खायो कब बाँधे महतारी
दुहत कौन की गैया चारत बात कही यह भारी

परन्तु सूर जानते हैं कि इन निर्गुण, अनादि, अनन्त परब्रह्म कृष्ण से भक्ति का संबंध नहीं जोड़ा जा सकता वे गोपियों के मुँह से कहलाते हैं—

कान्ह कहाँ की बात चलावत
स्वर्ग पताल एक करि राखौ युवतिन को कहि कहा बतावत ?

गोपियों की तरह सूरदास भी परब्रह्म कृष्ण की अनुमोदनता स्वीकार कर लेते हैं और अपने काव्य का आरम्भ इसी स्वीकृति से करते हैं—

अविगत-गति कछु कहत न आवै
ज्यौं गूँगे मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै
परम स्वाद सब ही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै
मन बानी कौ अगम अगोचर सो जानै जो पावै
रूप-रेख-जुग-जाति-जुगति बिनु निरालंब कित धावै
सब बिधि अगम विचारहिं तातैं सूर सगुन पद गावै

अतः सूरदास परब्रह्म कृष्ण को पहचानते हुए भी उनके सगुण रूप के रहस्यात्मक स्वरूप की कल्पना से ही परिचालित हैं।

यह भगवान भक्त के हेतु अवतार धारण करते हैं। यही लीला का महत्व है, यही उसका रहस्य है—

भक्त हेतु अवतार धर्‌यो
धर्म कर्म के बस मैं नाहीं योग जाग्य मन मैं न कर्‌यो
दीन गुहारि सुनौ श्रवणनि भरि गर्व वचन सुनि हृदय जढ़्यो
भाव अधीन रहौ सबही के और न काहू नेक डरौं
ब्रह्मा कीट आदि लौं व्यापक सबको सुख दै दुखहि हरौं
सूर श्याम तब कही प्रगट ही जहाँ भाव तहँ ते न टरौं

इसी लिए भक्त और भगवान का प्रेम और भाव का नाता है जिसे दोनों को अपनी-अपनी ओर से निभाना है। भक्त अनन्य भाव से भगवान को प्रेम करता है—

स्याम बलराम को सदा गाऊँ
स्याम बलराम बिनु दूसरे देव कौ स्वप्न हूँ माहिं नहिं हृदय ल्याऊँ
यहै जप यहै तप यहै मम नेम व्रत यहै मम प्रेम फल यहै ध्याऊँ
यहै मम ध्यान, यहै ज्ञान, सुमिरन यहै, सूर प्रभु देहु हौं यहै पाऊँ

इस प्रेम का रूप है आत्मसमर्पण और शरणागति भाव—

जौ हम भले बुरे तो तेरे
तुम्हें हमारी लाज बड़ाई बिनती सुनि प्रभु मेरे
सब तजि तुम सरनागत आयौ, दृढ़ करि चरन गहे रे

या—

मेरी तौ गतिमति तुम अनतहिं दुख पाऊँ
हौं कहाय तेरौ अब कौन को कहाऊँ !
कामधेनु छाँड़ि कहा अजा लै दुहाऊँ !
हय गयंद उतरि कहा गर्दभ चढ़ि धाऊँ !

इसी प्रकार—

तुम तजि और कौन पै जाऊँ ?
काकैं द्वार जाइ सिर नाऊँ, परहथ कहाँ बिकाऊँ
ऐसो को दाता है समरथ जाके दिये अघाऊँ
अन्तकाल तुम्हरैं सुमिरन गति अनत कहूँ नहिं पाऊँ
रंक सुदामा कियौ अजाची, दियौ अभय पद ठाऊँ
कामधेनु, चिन्तामनि, दीन्हौं कल्पवृच्छ तर छाऊँ
भव समुद्र अति देखि भयानक मन मैं अधिक डराऊँ
कीजै कृपा सुमरि अपनौ प्रन, सूरदास बलि जाऊँ

परन्तु केवल भक्त की ओर से चेष्टा होने पर ही सब कुछ नहीं हो जाता। इष्टदेव की कृपा भी तो चाहिये। सच तो यह है कि इस कृपा के बिना भक्ति अंकुरित ही नहीं हो सकती। भक्त की ओर से सदाचार शुद्धाचरण तभी काम कर सकते हैं जब भगवान की अनुकंपा मिले, नहीं तो वह उनमें सफल ही नहीं हो सकता। पुष्टिमार्ग में इस भगवान के अनुग्रह को विशेष स्थान मिला है, वैसे प्रत्येक भक्ति संप्रदाय में भगवान की भक्तवत्सलता और उनकी अनुकंपा पर विश्वास किया गया है। पुष्टिमार्ग में इस अनुग्रह को "पुष्टि" कहा गया है जिससे भक्तों का पोषण होता है। भगवान के अनुग्रह के कारण ही भक्त की भावना का उत्तरोत्तर विकास होता जाता है। सूरदास कहते हैं—

प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ

अति गंभीर उदार उदधि हरि, जान सिरोमनि राइ
तिनका सौं अपने जन कौ गुन मानत मेरु समान
सकुचि गनत अपराध समुद्रहि बूँद-तुल्य भगवान
वदन प्रसन्न-कमल सन्मुख ह्वै देखत हौं हरि जैसें
विमुख भये अकृपा न निमिषहूँ फिरि चितयौं तौ तैसें
भक्त-विरह-कातर करुणामय डोलत पाछैं लागे
सूरदास ऐसे स्वामी कौ देहिं पीठि सो अभागे

सूरदास ने अपने विनयपदों में बारबार भगवान की अनुकंपा और भक्तवत्सलता का गुणगान किया है। इस अनुकंपा में विश्वास के बिना भक्ति एक पद भी आगे नहीं बढ़ सकती।

परन्तु साधना के अंत में भक्त क्या चाहता है—क्या मुक्ति? ऐसा नहीं है। भक्त तो निरंतर भक्ति की ही याचना करता है। सूरदास कहते हैं—

अपनी भक्ति देहु भगवान
कोटि लालच जो दिखावहुँ नाहिनै रुचि आन

गोपियाँ उद्धव से तर्क-वितर्क न कर कहती हैं—

नाहिन रह्यौ मन में ठौर
नंदनंदन अछत कैसे आनिए उर और
चलत, चितवत, दिवस जागत, सपन सोवत राति
हृदय तें वह स्याम मूरति छन न इत-उत जाति
कहत कथा अनेक ऊधौ लोकलाभ दिखाय
कहा करौं तन प्रेम-पूरन घट न सिंधु समाय ?
स्यामगात सरोज आनन ललित अति मृदु हास
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास

और—

वै अति ललित मनोहर आनन कैसे मनहिं बिसारौं
योग युक्ति औ मुक्ति विविध विधि वर मुरली पर वारौं

इस भक्ति के साधन क्या हैं—

(क) नामकीर्तन

भागवत में कहा है—"कलौ केशव कीर्तनात"

सूरदास भी कहते हैं—

तुम्हरौ नाम तजि प्रभु जगदीसर सुतौ कहौ मेरे और कहा बल
बुधि-विवेक-अनुमान आपनैं सोधि कह्यौ सब सुकृतनि कौ फल
वेद पुरान सम्रृति सन्तन कौ यह अधार मीन कौं ज्यौं जल
अष्टसिद्धि, नवनिधि, सुरपति, तुम बिनु तसकन कहु न कछु तल
अजामील, गनिका, सु व्याध, नृग जासौं जगधि तरे ऐसेउ खल
सोइ प्रसाद सूरहिं अब दीजै नहीं बहुत तौ अन्त एक पल

अथवा

जो तू राम-नाम धन धरतौ
अब को जनम, आगिलौ तेरो, दोऊ जनम सुधरतौ
जम को त्रास सबै मिट जातौ भक्त नाम तेरो परतौ

तंदुल-घिरत समर्पि स्याम कौ सन्त परोसौ करतौ .
हौतौ नफा साधु की सङ्गति मूल गांठि नहिं टरतौ
सूरदास वैकुण्ठ पैंठ में कोउ न फैंट पकरतौ

(ख) गुरुभक्ति

पुष्टिमार्ग में गुरु और कृष्ण का एक ही स्थान है। गुरु ही जीव का ब्रह्म-संबंध कराता है। गुरु को कृष्ण मान कर भक्त उसे आत्मसमर्पण कर देता है। सूर के प्रसंग से यह बात पुष्ट हो जाती है। सूर का अंत समय आ पहुँचा था। उस समय चतुर्भुजदास ने कहा—"सूरदास तुमने भगवत्यश का वर्णन तो किया, परन्तु आचार्य महाप्रभून का जस वर्णन नहीं किया। सूरदास ने कहा—जु मैंने तो सारा ही आचार्य महाप्रभु को यश ही गाया है। जो विलग देखता तो विलग करता।" यह कह कर उन्होंने यह पद गाया—

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो

श्रीवल्लभ नखचन्द्र-छटा बिनु सब जग माहिं अँधेरो
साधन और नहीं या कलि में जासों होत निवेरो
सूर कहा कहि दुविधि आँधरो बिना मोल को चेरो

(ग) लीलागान

सारा सूरसागर ही कृष्णलीला का गान है।

(घ) नित्य और नैमित्तिक कर्म

इनके संबंध में अन्य स्थान पर लिखा जा चुका है।

(ङ) भगवान के रूप का ध्यान

सूर के काव्य में भगवान के बाल और किशोर रूप के अनेक चित्र हैं। उन्होंने उन्हें सैकड़ों परिस्थितियों में देखा है और उनका ध्यान किया है—

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत

मणिमय कनक नंद के आँगन मुख प्रतिबिम्ब पकरिबेहि धावत
कबहुँ निरखि हरि आप छाँह को कर सों पकरन को चित चाहत
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ पुनि पुनि तिहिं अवगाहत
कनक भूमि पर कर पग छाया यह उपमा एक राजत
कर कर प्रति पद प्रति मणि बसुधा कमल बैठकी साजत
बाल-दशा सुख निरखि यशोदा पुनि पुनि नन्द बुलावत
अंचरा तर लै ढाकि सूर के प्रभु को जननी दूध पियावत

( बालकृष्ण )

सखी री नन्दनन्दन देखु

धूरि धूसरि जटा जूटलि हरि किए हर भेषु
नील पाट पुरोइ मणिगण फणिज धोखे जाइ
खुनखुना कर हँसत मोहन नचत डौंरु बजाइ
जलज माल गोपाल पहिरे कहौं कहा बनाइ
मुंडमाला मनोहर गर ऐसि शोभा पाइ
स्वातिसुत माला विराजत श्याम तन मों भाइ
मनो उमग गौरि उर हर लिए कंठ लगाइ
केहरी के नखहि निरखत रही नारि विचारि
बाल शशि मनो भाल तें लै उर धर्‌यो त्रिपुरारि

( कृष्ण-शंकर )

मुख छबि देखि हो नंदघरनि

शरद निशि के अंशु अगणित इंदु आभा हरनि
ललित श्रीगोपाल लोचन लोल आँसू ढरनि
मनहुँ वारिज बिलखि विभ्रम परे परवश परनि
कनक मणिमय मकर कुंडल ज्योति जगमग करनि
मित्रलोचन मनहुँ आये तरल गति दोउ तरनि

कुटिल कुन्तल मधुप मिलि मनौ कियो चाहत लरनि
वदन करति अनूप शोभा सकै सूर न बरनि
(दाँवरी से बँधे कृष्ण)

देखुरी नंदनंदन ओर

त्रास ते तनु त्रसित थोर हरि तकत आनन तोर
बार बार डरात तोको बरन बदनहि थोर
मुकुर मुख दोउ नैन ढारत छणहि छण छवि छोर
सजल चपल कनीन पलकैं अरुण ऐसे दोर
सरस अंबुज भँवर भीतर भ्रमत है जनु भौंर
लकुट के डर देखि जैसे भये शोणित बोर
उर लगाइ विहाय रिस जिय तजहु प्रकृति कठोर
(वही)

आवत उरग नाथे श्याम

नन्द यशुदा गोप गोपनि कहत हैं बलराम
मोर मुकुट विशाल लोचन श्रवन कुंडल लोल
कटि पिताम्बर भेष नटवर नृतत फन प्रति डोल

× × ×

कन्हैया, निर्तत फन प्रति ऐसे
मनो गिरिवर पर बादर देखत मोर अनन्दत जैसे
डोलत मुकुट शीश पर कुण्डल मंडित गंड
पीत बसन दामिनि तनु घन पर ता पर सुरकोदंड
(नागदमन)

साँवरो मनमोहन माई

देख सखी बनते ब्रज आवत सुन्दर नन्दकुमार कन्हाई
मोरपंख शिर मुकुट विराजत मुख मुरली सुर सुभग सुहाई
कुंडल लोल कपोलन की छवि मधुरी बोलनि बरणि न जाई

लोचन ललित ललाट भ्रकुटि बिच ताकि तिलक की रेख बनाई
मनो मर्याद उलंघि अधिक बल उमँगि चली अति सुन्दरताई
कुञ्चित केश सुदेश बदन पर मानौं मधुप माल घिरि आई
मन्द मन्द मुसुकात मनौ घन दामिनि दुरि दुरि देत दिखाई
शोभित सूर निकट नासा के अनुपम अधरनि की अरुनाई
जनु शुक सुरङ्ग विलोकि बिंबफल चाखन कारन चोंच चलाई
(गोचारण-प्रसङ्ग)

देखि री देखि आनंदकंद

चित्त चातक प्रेम घन लोचन चकोरक चन्द
चलित कुंडल गंड मंडल झलक ललित कपोल
सुधारकर जनु मकर क्रीड़त इन्दु दहदह डोल
सुभग कर आनन समर्पै मुरलिका एहि भाइ
मानो हनै अंभोज भाजन लेत सुधा भराइ
श्याम देह दुकूल द्युति छबि लसत तुलसी माल
तड़ित घन संयोग मानो सेनिका शुकजाल
अलक अविरल चारु हास विलास भ्रकुटी भङ्ग
सूर हरि की निरखि शोभा भई मनसा पङ्ग

(किशोर कृष्ण)

इस किशोर रूप के प्रत्येक अंग के वर्णन मिलेंगे—

देख री हरि के चञ्चल नैन

खञ्जन मीन मृगज चपलाई, नहिं पटतर एक सैन
राजिवदल, इंदीवर, शतदल, कमल कुशेशम जाति
निसि मुद्रित प्रातहि वै विगसत, ये विगसे दिनराति
अरुन असित सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाय
मनो सरस्वति गङ्ग जमुन मिलि आगम कीन्हों आय
(नैत्र)

रोमावली रेख अति राजत
सूक्ष्म शेष धूम की धारा नव घन ऊपर भ्राजत
भृगु पदरेख श्याम उर सजनी कहा कहौं ज्यों छाजत
मनहुँ मेघ भीतर शशि की द्युति कोटि कामतनु लाजत
मुक्तामाल नन्दनन्दन उर अर्ध सुधाघट कांति
तनु श्रीखंड मेघ उज्ज्वल अति देखि महाबल भाँति
वरही मुकुट इन्द्रधनु मानहु तड़ित दशन छवि छाजत
यकटक रही विलोकि सूर प्रभु तनु की है कहा हाजत
(रोमावली)

इसी तरह अन्य अङ्गों का वर्णन भी है। परन्तु सूर जानते हैं कि उनके इष्टदेव लौकिक नायक नहीं है। यह वे पाठक को भी बता देते हैं। वे उनकी सुन्दरता की रहस्यमयता की ओर इंगित करते हैं—

सखी री सुन्दरता को रङ्ग
छिन छिन माँह परत छवि और कमल नयन के अङ्ग
श्याम सुभग के ऊपर वारौं आली कोटि अनङ्ग
सूरदास कछु कहत न आवै गिरा भई मति पंगु

या उसके अलौकिक प्रभाव की बात कहते हैं—

श्याम अंग युवती निरखि भुलानी
कोउ निरखति कुंडल की आभा यतनेहिं माँझ बिकानी
ललित कपोल निरखि कोउ अटकी शिथिल भई ज्यों पानी
देह गेह की सुधि नहिं काहू हरपन को पछतानी
कोउ निरखति रही ललित नासिका यह काहू नहिं ज़ानी
कोउ निरखति अधरन की सोभा फुरत नहीं मुख बानी
कोउ चकृत भई दशन चमक पर चकचौंधी अकुलानी
कोउ निरखति द्युति चिबुक चारु की सूर तरुनि बिततानी

यही नहीं, सूरदास सुरतांत की छवि को भी नहीं छोड़ते—

सोभा सुभग आनन ओर
त्रास से तनु त्रसित तिरछे चितैं देत अकोर
निरखि सम्मुख कियो चाहत वदन विधु की जोर
तुला बिच लोकेश तौले गरुअ आनन गोर
दरशपति रुचि मुदित मनसिज चपल दृग दृगकोर
कोस क्रीड़त मीन मानों नीर नारज भोर
श्यामसुन्दर नैन युगवर झलक कज्जल कोर
सुधारस संकेत मानो कूप दानव चोर
श्रवण मणि ताटंक मंजुल कुटिल कुन्तल छोर
मकर संकट काम वार्पी अलकि फन्दनि डोर
चिकुर अधर नव मोति मंडल तरल लट दृग तोर
जनु विध्वंसित व्याल बालक अमी की झकझोर
श्रम स्वेद सीकर गण्ड मण्डित रूप अम्बुज कोर
उमँगि ईपद यो श्रम तज्यो पीयूप कुम्भ हिलोर
हसत दशननि चमक विद्युत लसित कठिन कठोर
मुदित मधु पर बिन्दुगन मकरन्द मध्य न थोर
निरखि सोभा समर लज्जित इन्दु भयो श्रम भोर
सूर धन्य सुनव किसोरी धन्य नन्दकिसोर

(च) भक्ति का रूप

आलम्बन के सौन्दर्य और गुण से चलकर भक्त का रूप स्थिर होता है। भगवद्विषयक रति के पाँच प्रकार हैं—

शांति, प्रीति, प्रेम, अनुकम्पा, कान्ता, या मधुरा-भगवन्रति, भक्ति के रूप और काव्यरस में अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है जो निम्न तालिका से प्रगट हो जायगा :

| भगवन्रति | भक्ति का रूप | काव्य रस |
|---|---|---|
| शान्ति | शांत | शांत रस |

| भगवत्‌रति | भक्ति का रूप | काव्य रस |
|---|---|---|
| प्रीति | दास्य | दास्य रस |
| प्रेम | सख्य | सख्य रस |
| अनुकंपा | वात्सल्य | वात्सल्य |
| कान्ता या मधुरा | मधुर | शृङ्गार |

काव्य में दास्य रस और सख्य रस की व्यवस्था नहीं है, अतः इन रसों की सामग्री को शांतरस के अंतर्गत ही रखेंगे। अन्य रसों की सामग्री इन्हीं रसों के भीतर गौण रूप से उपस्थित की जा सकती है जैसे शांत रस के भीतर रौद्र, भयानक, वीभत्स की सामग्री का समावेश संभव है। दास्य भक्ति में अद्भुत, वीर, करुण रसों की सामग्री उपादेय होगी। शृङ्गार में अद्भुत और हास्य का मेल हो सकता है, परन्तु मुख्य रूप से भगवत्‌रति में शांत रस, वात्सल्य और शृङ्गार रस की ही व्यवस्था है।

सूर के ग्रंथ में इन सब प्रकारों के उदाहरण मिलेंगे—

(१) शांतभक्ति में वैराग्य की भावना की प्रधानता है, परन्तु यह वैराग्य केवल संसार के प्रति हो सकता है। इष्टदेव के प्रति तो राग रहेगा ही। अतः इस प्रकार की भक्ति का कोई अधिक मूल्य नहीं। सूर की भक्ति शास्त्रीय पद्धति पर नहीं चलती। वह पराभक्ति है। रागानुगा भक्ति है। वैधी नहीं। अतः इस भक्ति का स्वरूप उनमें प्रस्फुट नहीं हुआ है यद्यपि विनय के पदों में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो शांत भक्ति के अंतर्गत रखे जा सकते हैं, जैसे—

हरि बिनु मीत नहीं कोउ तेरे
सुनि मन, कहौ पुकारि तोसों हौं भजि गोपालहि मेरे
या संसार विषय-विष-सागर रहत सदा सब घेरे
सूरश्याम बिनु अंतकाल में कोउ न आवत नेरे

(२) दास्यभक्ति—महाप्रभु से मिलने से पहले सूर दास्य भाव

के भक्त ही थे जैसे वार्ता से पता चलता है। दास्यभक्ति में विनय और दैन्य प्रकाशन की प्रधानता है। सूर के विनयपदों के केन्द्र में यही भावनाएँ हैं, जैसे

"हरि हौं सब पतितन कौ नायक"

"प्रभु, मैं सब पतितन कौ टीकौ"

तुलसीदास की तरह उन्होंने भी राम के दरबार में पत्रिका भेजी है—

बिनती केहि बिधि प्रभुहि सुनाऊँ
महाराज रघुवीर धीर को समय न कबहूँ पाऊ
याम रहत यामिनी के बीते तिहि औसर उठि धाऊँ
सकुच होत सुकुमार नींद से कैसे प्रभुहि जगाऊँ
दिनकर किरण उदित ब्रह्मादिक रुद्रादिक इक ठाऊँ
अगणित भीर अमर मुनिगन की तिहि तैं ठौर न पाऊँ
उठत सभा दिन मध्य सियापति देखि भीर फिरि आऊँ
न्हात खात सुख करत साहिबी कैसे कर अनुसाऊँ
रजनीमुख आवत गुण गावत नारद तुम्बर नाऊँ
तुम्हीं कहा कृपण हौं रघुपति किहि बिधि दुख समझाऊँ
एक उपाय करौं कमलापति कहो तो कहि समझाऊँ
पतित उधारन सूर नाम प्रभु लिखि कागद पहुँचाऊँ

वास्तव में, तुलसी को "विनयपत्रिका" की बीज यहीं मिला जान पड़ता है।

(२) शख्यभक्ति—सूरसागर में प्रेम, अनुकम्पा और मधुरारति का ही प्राधान्य है। इसी से वह सख्य. वात्सल्य और मधुर भावों का एक बृहद् संग्रह है। सख्य भक्तों का आदर्श गोपों और कृष्ण का संबंध है। सूर ने भी कृष्ण से प्रधानतम, यही संबन्ध स्थापित किया है, इसीसे वे कृष्ण की अतिगोपनीय लीलाओं को भी निःसंकोच भाव से कह जाते हैं। इसी सख्य

भावना के कारण सूर भगवान से हठ भी कर लेते हैं—

(४) अनुकंपा रति ( या वात्सल्य भक्ति )—इसके लिये नंद यशोदा आदर्श हैं। ग्वालिनें भी यही भाव रखती हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य इसी भक्ति को प्रधानता देते थे। इसी से निरोध-लक्षणम् में उन्होंने कहा है—

यच्च दुःख यशोदाय नन्दादीनां च गोकुले
गोपिकानां च यद्दुःखं तद्दुःखं स्याममय क्वचित्
गोकुले गोपिकानं च सर्वेषां व्रजवासिनाम्
यत्सुखं सम्भुक्तन्ये भगवान् किं विधास्यति।
उद्धवा गमने जात उत्तवः सुमहान् यथा
वृन्दावने गोकुले वा तथा वे मनसि क्वचित्।

नंदयशोदा और गोपीग्वालों के वात्सल्य को संयोग और वियोग की दोनों परिस्थितियों में सविस्तृत अङ्कित कर सूरदास ने स्वयं आध्यात्मिक सुख-दुःख की साधना की है जिसकी ओर महाप्रभु ने संकेत किया है। इसी लिये सूर का वात्सल्य रस संबन्धी काव्य शृङ्गार रस के संयोग और वियोग दशाओं की भाँति सञ्चारियों और व्यभिचारियों के अनेक भेदों से पुष्ट होकर हमारे सामने आता है।

( ५ ) मधुरभक्ति—भगवद्विषयक रति का सर्वोच्च विकास मधुरारति में है जो मधुरभक्ति की जननी है। मधुर भाव के उपासक कृष्ण-भक्त राधाकृष्ण और कृष्ण-गोपियों के प्रेम में सम्मिलित होकर उनकी लीलाओं-क्रीड़ाओं में आनन्द लेते हैं। युगल दम्पति की प्रत्येक प्रेम-चेष्टा उनके हृदय में एक आनन्द हिलोर उठा देती है जिसका सुख अनिर्वचनीय है। भक्त स्वयं गोपी बनना चाहता है। गोपियों की तरह वह भी कृष्ण के प्रेम का इच्छुक है। उसे राधा से ईर्ष्या नहीं। वह राधा को धन्य समझता है जो कृष्ण के इतने निकट है। इसी नाते उसे

गोपियों से भी प्रेम है। राधाकृष्ण के मिलन और वियोग की कहानी सूर की मौलिक कल्पना है। केवल इसी एक नवीन उद्‌भावना के नाते उनका स्थान हिन्दी कवियों में अग्रगण्य होता। राधाकृष्ण के प्रेम सम्बन्ध में सूर अपनी आत्मा का अत्यंत विशद चित्रण कर जाते हैं जिसे कृष्ण के सङ्ग में इतना सुख है कि दुःख की लेशमात्र छाया भी उस पर नहीं पड़ती है और कृष्ण के विरह में सुख का केवल यत्किंचित् स्मरण हो आता है। सूर की मधुरभक्ति दो खंडों में प्रगट हुई है :

(क) राधाकृष्ण का प्रेम-प्रसङ्ग,

(ख) गोपियों और कृष्ण का प्रेम-प्रसङ्ग;

इन्हीं प्रसङ्गों में सूर ने कई अभिनव रूपकों की सृष्टि की है। इसे सूर की कल्पना की उत्कृष्टता ही कहना होगा कि हम इन रूपकों को लीला भी कह सकते हैं और परवर्ती काव्य में उनका प्रयोग इसी रूप में हुआ है। दानलीला, मानलीला, बहुनायकत्व लीला, पनघटलीला—इन सभी में कवि-भक्त भगवान् की लीलाओं का वर्णन करता हुआ परमात्मा और जीवात्मा (भक्त) के सम्बन्धों को स्पष्ट करने में लगा है। इसके अतिरिक्त सूर ने भागवत के रास और भ्रमरगीत के प्रसङ्गों को अत्यन्त विशद रूप से चित्रित कर कृष्ण के संयोग-वियोग की अभिव्यंजना की एक नवीन शैली ही स्थापित कर दी है। परवर्ती कवियों ने इसी शैली में अपनी भक्ति-भावना की अभिव्यंजना की है। रासलीला में भक्त भगवान के साथ योगमाया (मुरली) के द्वारा सम्बन्ध स्थापित करता है। भ्रमरगीत में वह विरह की अन्यतम दशा को पहुँच जाता है और गोपियों के भ्रमर-उपालंभ के द्वारा अपने ही विरहाकुल हृदय की बात कहता है। वास्तव में सूरसागर गोपियों और कृष्ण के संयोग-वियोग के रूप में मधुर भक्ति की वह वृहद्

साधना है जिसका जोड़ संसार के भक्ति-काव्य में मिलना असम्भव है।

वल्लभाचार्य ने वात्सल्यभाव को ही एकमात्र उपादेय माना था और वे बालकृष्ण के उपासक थे, परन्तु पुष्टिमार्ग के कवियों ने सख्य और मधुरभाव को भी अपनाया। इनमें भी माधुर्य भाव को विशेष रूप से ग्रहण किया गया। सारा कृष्णकाव्य ही इस तथ्य के समर्थन में उपस्थित किया जा सकता है। इस माधुर्य भाव की उपासना ने ही कृष्णभक्ति को रामभक्ति के समकक्ष एक विशिष्ट रूप दिया है। नीचे हम देखेंगे कि इस मधुरभाव : भक्ति की विशेषताएँ क्या हैं :

(१) भक्त भगवान के इतना ही निकट है, जितने निकट पति-पत्नी। अत: वह भगवान पर उसी तरह मुग्ध है जिस तरह पत्नी पति पर मुग्ध होती है। भक्ति की सर्वोच्च दशा में तो वह परकीया भाव का अनुभव करने लगता है—

जब ते सुन्दर बदन निहार्‌यो

ता दिन ते मधुकर मन अटक्यो बहुत करी निकरै न निकार्‌यो
मात पिता पति बन्धु सजन जन तिनहूँ को कहिबे सिर धार्‌यो
रहा न लोकलाज मुख निरखत दुसह क्रोध फीको करि डार्‌यो
है सो होय सो होय करम बस अब जी को सब सोच निकार्‌यो
दासी सूरदास परमानन्द भलो पोच अपनो न बिचार्‌यो

(२) कृष्ण-भक्त मन के संयम के स्थान पर मन को कृष्ण की ओर उन्मुख करता है। यह सच है कि सूर ने विनयपदों में मन के नियमन की चेष्टा की है—

मन तोसों कितो कही समुझाइ
नन्दनँदन के चरणकमल भजि तजि पाखंड चतुराइ

सुख-संपति, दारा-सुत, हय-गय, झूठ सबै समुदाइ
छनभंगुर यह सबै श्याम बिनु अन्त नाहिं संग जाइ

परन्तु इन विनय के पदों को सूर ने पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पहले लिखा था। सूर तो मन को सांसारिकता (विषय-वासना) के निम्न स्तरों से उठाकर सहजरूप से कृष्ण में इस तरह लगा देते हैं कि गोपियों के शब्दों में

नाहिंन रह्यो मन में ठौर
नंदनंदन अछत नाहिंन आनिवे उर और

अतएव, मधुर भाव के उपासकों के लिए इंद्रियों के नियमन का प्रश्न ही नहीं उठता। इंद्रियों को कृष्ण का परिचय कराते हैं जो उन्हें स्वत: अपनी ओर खेंच लेते हैं। जब भक्त की इंद्रियों का उस रूप-सिंधु, गुणसिंधु, लीलामय, हास-विलासमय कृष्ण से परिचय हो जाता है तो वे लौकिक विषय के आश्रयों की ओर मुड़ कर भी नहीं देखतीं। उनके लिये सारा संसार लोप हो जाता है। जहाँ ऐसा भाव है, वहाँ विधि-निषेध, आचार-विचार, संयम-मर्यादा का स्थान ही कहाँ है? यही रागानुगा भक्ति है। तुलसी की रामभक्ति वैधीभक्ति है। वह विधिनिषेध, आचार-विचार, लोक-परलोक सबको समेट कर चलती है। सूरदास की भक्ति भावना इससे कहीं गहरी है। उसे इनमें से किसी से तात्पर्य ही क्या? वह तो कृष्ण के सिवा किसीको जानती ही नहीं, फिर इतर वस्तुओं के लिये वह क्यों सोचे? वास्तव में, कृष्णभक्ति में व्यक्तिगत प्रेम-भावना का सर्वोच्च विकास है। उसने आचार और मर्यादा की उपेक्षा नहीं की, परन्तु उनपर बल भी नहीं दिया। उसने मन को नियंत्रण से मुक्त किया। कृष्ण के रूप-गुण को उसे रिझाने दिया उससे कृष्ण के व्यक्तित्व और उनकी लीलाओं में नित्य नये आकर्षण ढूँढे। रामभक्ति में श्रद्धा और आदर की भावना वीन

रही, सामाजिक विधि-निषेध मानने का उपदेश दिया गया, परन्तु कृष्णभक्ति ने इनसे ऊपर उठ कर इष्टदेव से और भी निकट का संबंध जोड़ा। सूरदास जानते हैं कि इंद्रियों के नियमन का मार्ग शुष्क, नीरस और कठिन है; इसके समकक्ष भगवान के रूप-गुण में इंद्रिय-समर्पण का मार्ग सरल और सरस है। अतः सहज भी है। सारे भ्रमरगीत-प्रसंग में इसी संदेश की तो प्रतिष्ठा की गई है। गोपियाँ कहती हैं—

उलटी रीति तिहारी ऊधो सुनो सो ऐसी को है
अल्प वयस अबला अहीर सठ तिनहिं योग कत सोहै
कच सुबि आँधर काजर कानी नकटी पहरै बेसरि
मुडंली पटिया पारि सँवारै कोढ़ी लावै केसरि
बहिरी पति सौं बात करै तौ तैसोइ उत्तर पावै
सो गति होय सबै ताकी जो ग्वारिन योग सिखावै

और

हमरे कौन जोग व्रत साधै
मृगत्वच, भस्म, अधारि, जटा को को इतनी अवराधै
जाकी कहूँ थाह नहिं पैए अगम अपार अगाधै
गिरिधर लाल छबीले मुख पर इतै बाँध को बाँधै
आसन, पवन, भूति, मृगछाला, ध्याननि को अवराधै
सूरदास मानिक परिहरि कै राख गाँठि को बाँधै

वे तो प्रेम के सीधे मार्ग को जानती हैं—

काहे को रोकत मारग सूधो ?
सुनहु, मधुप ! निर्गुन-कंटक तैं राजपंथ क्यों रूधौं ?

उन्हें तो सरल प्रेमोपासना ही रसयुक्त जान पड़ती है। इसी से वे ऊधो से कहती हैं—

तेरो बुरो न कोऊ मानै
रस की बात, मधुप नीरस सुन, रसिक होत सो जानै

इसीलिये वे कुब्जा के कृत्य को सराहती हैं—

अब वै कुब्जा भलो कियो
सुनि सुनि समाचार ऊधो यो कछुक सिरात हियौ
जाको गुन, गति, नाम रूप हरि हार्‌यो फिरि न दियौ
तिन अपनो मन हरत न जान्यौ हँसि हँसि लोग जियौ
सूर तनिक चन्दन चढ़ाय तन ब्रजपति बस्य कियौ
और सकल नागरि नारिन को दासी दाँव लियो

सच तो यह है कि इसी मन को कृष्णोन्मुख करने की साधना ने सूरदास द्वारा गोपियों के मुख से उद्धव को उलाहने दिलाये हैं। उनका न योग से विरोध था, न इंद्रिय-निग्रह से। वास्तव में, वे तो इस भाव के भक्त हैं—

काम क्रोध में नेह सुहृदता काहू विधि करै कोई
धरै ध्यान हरि को जे दृढ़ करि सूर सो हरि सो होई

भज जेहि भाव जो मिले हरि ताहि लों
भेदभेदा नहीं पुरुष नारी
सूर प्रभु श्याम ब्रजवाम आतुर काम
मिली अनधाम गिरिराजधारी

और भी—

निगम ते अगम हरि कृपा न्यारी
प्रीति वश्य श्याम कि राइ कि रंक कोउ पुरुष कि नारि नाहिं भेद कारी

---

११

# सूर के काव्य की विशेषताएँ

सूरसागर के काव्योपयोगी स्थल हैं :

(१) विनय के पद (स्कंध १)

(२) कृष्ण-जन्म, बालकृष्ण की क्रीड़ायें और नंद-यशोदा एवं गोपियों का वात्सल्य ( स्कंध १०, पूर्वार्द्ध )

(३) राधाकृष्ण का प्रेम-प्रसंग (वही)

(४) गोपियों संबंधी निम्न स्थल—मुरली के प्रति कहे पद, नेत्रों के प्रति कहे पद, राधाकृष्ण के रूप-वर्णन संबंधी पद, भ्रमरगीत, गोपिका-विरह (वही)

(५) कूटपद (वही)

शेष स्कंध और १०वें स्कंध का शेष भाग काव्य की दृष्टि से कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता, भले ही धार्मिक दृष्टि से उसका कितना ही महत्त्व हो। कूटपदों को छोड़ कर शेष को हम शांत, वात्सल्य और शृङ्गार के अंतर्गत रख सकते हैं। विभिन्न शीर्षकों के नीचे हम इन पर विशेष रूप से विचार भी कर चुके हैं। यहाँ केवल सामान्य रूप से सूर के काव्य का विश्लेषण करेंगे।

## १—वर्णन

सूर का काव्य गीतात्मक है, अतः उसमें वर्णनों को विशेष स्थान नहीं मिला है। फिर भी वह उससे एकदम अछूता तो नहीं है। दशमस्कंध के सिवा सूर का अधिक काव्य वर्णनात्मक ही कहा जायगा, क्योंकि उसमें सूर विषय को भावना की ऊँचाई

पर नहीं उठाते, न उसमें इस प्रकार तन्मय हो जाते हैं, जिस प्रकार दशमस्कंध पूर्वार्द्ध में। इस सारे वर्णनात्मक काव्य की विशेषता है—

( १ ) अत्यंत संक्षेप में कथा कहने की प्रवृत्ति,
( २ ) रस, अलंकार आदि काव्य-गुण-हीनता,
( ३ ) भाषा की सरलता और क्षिप्रता और शैली में कथा-वाचकपन।

परन्तु दशमस्कंध का वर्णनात्मक काव्य इससे भिन्न है उसमें हमें कई प्रकार के वर्णन मिलेंगे।

( १ ) उत्सवों और लीलाओं के वर्णन।
( २ ) रूप-वर्णन।
( ३ ) प्रकृति-वर्णन।

इन वर्णनों में चित्रोपमता, अलंकार-विधान और रससृष्टि पर ध्यान दिया गया है। कृष्ण-जन्मोत्सव का अत्यंत सुन्दर वर्णन सूर की वर्णनक्षमता का उदाहरण है—

ब्रज भयो महर को पूत जब यह बात सुनी
सुनि आनंदे सब लोग गोकुल गनक गुनी
अति पूरब पूरे पुण्य रूप कुल अटल थुनी
ग्रहलग्न नक्षत्र बल शोधि कीनी वेदध्वनी
सुनि धाई सबै ब्रजनारी सहज शृङ्गार किए
तनु पहिरे नौतन चीर काजर नैन दिए
कसि कंचुकि तिलक लिलार शोभित हार हिए
कर कंकन कंचन थार मंगल साज लिए
शुभ श्रवणनि तरल बनाइ बेनी शिथिल गुही
सुर बर्षत सुमन सुदेश मानौ मेघफुही
मुखमंडित रोरी रंग सेंदुर माँग छुही
ते अपने अपने मेलि निकसीं भाँति भली

मनु लाल मनिन की पाँति पिंजर चूरि चली
गुण गावहिं मंगलगीत मिलि दश पाँच अली
मनु भोर भए रवि देखि फूली कमलकली
पिय पहिले पहुँची जाइ अति आनंदभरी
लई भीतर भवन बुलाइ सबै शिशु पाइ परी
एक बदन उघारि निहारि देहि अशीश खरी
चिर जियो यशोदानंदन पूरणकाम हरी
धनि धनि दिन धनि रात धनि यह पहर घरी
धन धन्य महर की कूख भाग सुहाग भरी
जिन जायो ऐसो पूत सब सुख फलनि फरी
थाप्यो शिर परिवार मन की शूल हरी
सुन ग्वालिन गाय बहोरि बालक बोलि लिये
गुहि गुंजा घसि बनधातु अंगनि चित्राए
शिर दधि-माखन के माट गावत गीत नए
कर झाँझ मृदङ्ग बजाइ सब नंदभवन गये
मिलि नाचत करत किलोल छिरकत दूध दही
मानो बर्षत भादों मास नदी घृत दूध-दही

आजु नंद के द्वारे भीर
एक आवत एक जात विदा होइ एक ठाढ़े मंदिर के तीर
कोउ केसर कोउ तिलक बनावत कोउ पहिरत कंचुकी चीर
एकन कोई दान समर्पित एकन को पहिरावत चीर
एकन को भूषण पाटम्बर एकन को जो देत नग हीर
एकन को पुहुपन की माला एकन को चंदन घिसि नीर

लगभग सारा ही सूरसागर वर्णनात्मक काव्यके अंदर आ जायगा यद्यपि अनेक वर्णनों के साथ आत्माभिव्यक्ति और गीतात्मकता मिली हुई है। यह स्पष्ट है कि सूर वर्णनोपयोगी स्थलों को खोजने में बड़े चतुर हैं और वे अत्यंत विशद, सूक्ष्म, सरस और

अलंकृत वर्णन करते हैं। वर्णन शुद्ध नहीं रह सके हैं, इसका कारण यह है कि सूर ने उन स्थलों को अत्यन्त निकट से देखा है, उनकी भक्तिभावना उनमें मिल गई है। बालकृष्ण की लीला में तो वे स्वयम् उपस्थित ही हैं—

नंद जू मेरे मन आनंद भयो हौं गोवर्धन ते आयो
तुमरे पुत्र भयो मैं सुनिकै अति आतुर उठि धायो

× × ×

कोटि देहु तौ रुचि नहिं मानों बिन देखे नहि जैहौं
नंदराय सुनि बिनती मेरी तबहिं बिदा भले ह्वैहौं
दीजै मोहि कृपा करि सोई जोहौं आयो माँगन
यशुमति सुत अपने पाँइन जब खेलत आवै आँगन
जब तुम मदनमोहन करि टेरो इहि सुनि के घर जाऊँ
हौं तो तेरो घर को ढाढ़ी सूरदास मेरो नाऊँ

शेष सूरसागर में भी वे सख्य भाव से उपस्थित हैं, अथवा प्रसंग से गोपियों आदि के पक्ष को ग्रहण कर अत्यन्त निकट हो जाते हैं। इस प्रकार वे एक ऐसे काव्य को जन्म देने में सफल हुए हैं जिसे एक ही साथ वर्णनात्मक और आत्मव्यंजनात्मक कहा जा सकता है। अतः हम सूर के वर्णनों को शुद्ध वर्णन न कह भावनात्मक वर्णन कहेंगे। इसी निजत्व और नैकट्य के कारण वे एक ही वर्णन को कई बार रखने से भी नहीं चूकते।

रूपवर्णन के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। शुद्ध रूपवर्णन नहीं है, कवि की भक्तिभावना के साथ वह और भी सुन्दर हो गया है। रूपवर्णन में सूर या तो कूटों का प्रयोग करते हैं या उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं का, जो साहित्यशास्त्र और कविपरंपरा से ग्रहण की गई हैं। इन्हीं के कारण सूर का रूपवर्णन अद्वितीय हुआ है। परन्तु सारे सूरसागर में वह एक ही

तरह का है। वही उपमाएँ-उत्प्रेक्षाएँ। सूर के पुष्टिमार्ग में रूप-ध्यान का विशेष स्थान था, इससे सूर कृष्ण और राधा के सौन्दर्य-वर्णन से अघाते नहीं। उन्होंने दम्पति का प्रत्येक अवस्था और प्रत्येक परिस्थिति में वर्णन किया है, कहीं स्वतंत्र, कहीं कथा में लिपटा हुआ। सूर के काव्य का यह एक अंग ही इतना पुष्ट है कि संसार के साहित्य में उसका जोड़ नहीं।

स्वतंत्र प्रकृति-वर्णन के भी दर्शन नहीं होते। सूरकाव्य में प्रकृति नायक-नायिकाओं के क्रियाकलाप के साथ मिलकर सामने आती है। अन्य हिन्दी कवियों की भाँति सूर में षट्ऋतु या बारह-मासा नहीं है; केवल रूपकों और लीलाओं की अवतारणा के लिये ही प्रकृति का अस्तित्व है—

प्रभात का वर्णन ( कृष्ण के जागरण के सम्बन्ध में )
संध्या ( गोचारण " " )
निशागम ( शयन " " )
वर्षा ( राधाकृष्ण प्रथम मिलन और इंद्र-गर्व-हरण के प्रसंगों में )
बसन्त ( बसन्तलीला, फाग, फगुआ और हिंडोला-लीलाओं की भूमिका के लिये )
शरद् ( रास की भूमिका के लिये )
यमुना ( स्नान आदि के प्रसंग में केवल गौण वर्णन व विरहावस्था का रूपक )

स्पष्ट है कि प्रकृति का स्वतंत्र चित्र एक भी नहीं है। इसका कारण सूर की भक्तिभावना है। भागवत के वर्षा और शरद-वर्णन से ( जिनकी एक लम्बी पौराणिक परंपरा है ) सूर ने जरा भी लाभ नहीं उठाना चाहा। जहाँ प्रकृति का कुछ वर्णन है भी, वहाँ वस्तु-नामावली मात्र उपस्थित करने की परिपाटी को निभाया

गया है, संश्लिष्ट चित्र नहीं मिलेंगे। उद्दीपन रूप में भी प्रकृति-वर्णन है, जैसे गोपिका-विरह में बादल, कालिन्दी, चंद्रोदय आदि के वर्णन :

बरुवे बदरा बरसन आए ( बादल )
हमारे माई मोरउ बैर परे ( मोर )
देखियत कालिंदी अति कारी ( यमुना )
कोउ माई बरजे या चंद्रहि ( चंद )
हरि परदेस बहुत दिन लाए ( वर्षा )
आजु घनश्याम की उनहारी (बादल)
ऐसे सुनियत वै सखन ( बादल )
कोकिल, हरि के बोल सुनाव (कोकिल)

जो हो, सूर का प्रकृति-वर्णन अधिक विशद नहीं है और उसमें नवीनता की मात्रा भी अधिक नहीं है।

सूरदास केवल प्रसंगवश ही नगर-वर्णन किया, परन्तु वह भी रूपक के रूप में। उनके काव्य के नायक शृङ्गार-रस के देवता भी हैं, अतः वे मथुरा का वर्णन युवती-रूप में करते हैं—

स्री मथुरा जी ऐसी आजु बनी
देखहु हरि जैसे अति आगम सजति शृंगार घनी
मानहु कोटि कसी कटि किंकिन उपवन बसन सुरंग
भूषण भवन विचित्र देखियत शोभित सुन्दर अंग
सुनत श्रवण घरियार घोर ध्वनि पाँयन नूपुर बाजत
अति संभ्रम अंचल चंचल प्रति धामन ध्वजा विराजत
ऊँच अटन पर छत्रन की छबि शीशन मानो फूली
कनक कलश-कुच प्रगट देखियत आनँद कंचुकि भूली
विद्रुम फटिक पची परदा छवि जालरंध्र की रेख
मानहु तुम्हरे दरशन कारण भूले नैन निमेख

मथुरा हरषित आजु भई
ज्यों युवती पति आवत सुनिकै पुलकिति अंग भई
नवसित सज सिंगार बनि सुंदरि आतुर पंथ निहारति
उड़त ध्वजा तनु सुरति बिसारे अंचल नहीं सँभारति
उरज प्रगट महलन पर कलसा लसति दारु-बन सारी
ऊँचे अटनि छाज की सोभा शीश उँचाइ निहारी
जालरंध्र इकटक मग जोवति किंकिणि कंचन दुर्ग
वेनी लसति कहौ छवि ऐसी महलन चित्रे उर्ग
बाजत नगर बाजने जह तहँ और बजत घरिआर
सूरश्याम बनिता ज्यों चंचल पग नूपुर झंकार

## २—रस

सूरसागर के विनयपदों में शांत रस और शेष में वात्सल्य और शृङ्गार रसों का प्राधान्य है। पहले हम कह चुके हैं कि सूर वास्तव में शांत, वात्सल्य और शृङ्गार रति का वर्णन कर रहे हैं। वे भक्त हैं परन्तु शुद्ध काव्य की दृष्टि से हम वात्सल्य और शृङ्गार रस ही कहेंगे। पिछले दो अध्यायों में हमने इन पर विशद रूप से विचार किया है। "विनयपदों" वाले शीर्षक में शांत रस का निरूपण है। शेष रह गए अद्भुत, वीर, रौद्र भयानक वीभत्स और करुण। नीचे हम इन्हीं पर विचार करेंगे।

सूर का काव्य ही कुछ ऐसे ढंग का था कि उसमें भयानक और वीभत्स रसों के लिये स्थान नहीं हो सकता था। वीर और रौद्र भी केवल प्रासंगिक रूप से कथा के साथ ही आ सकते थे। सूर की प्रतिभा इन रसों के निरूपण में नहीं लगी। वे मधुरभाव के भक्त थे। परुष रस उन्हें सधे नहीं, तो कोई आश्चर्य नहीं। वीर रस इन्द्र-गर्व-हरण और कंस-चाणूर-वध आदि प्रसंगों में मिलेगा। असुरवध में भी

कुछ वीर रस है, परन्तु उसका विशेष परिपाक नहीं हुआ। वास्तव में असुरवध की लीलायें आश्चर्य (अद्भुत रस) का प्रादुर्भाव करती है। सूर ने उनमें मौलिकता रखी है, परन्तु परिपाक की ओर उनका ध्यान नहीं। कथा के विस्तार की पर्वा नहीं की गई है। अद्भुत रस के अंतर्गत कितने ही प्रसंग आते हैं जैसे यशोदा को विराट-रूप-दर्शन, शकटवध, भगवान का अँगूठा चूसने पर प्रलय होने के चिह्न प्रगट हो जाना। वास्तव में, सूर भागवत की भाँति भगवान के अद्भुत कार्यकलाप को भी ध्यान में रखते हैं। भागवत में निर्गुण ब्रह्मरूप भगवान माता का स्तन पी रहे हैं, यह अद्भुत बात ही है? भागवतकार ऊखल से बँधे कृष्ण पर कहते हैं—"जिसका भीतर-बाहर नहीं है, पूर्व-पश्चात् नहीं है, इतने पर भी भीतर भी है, और बाहर भी, तथा आदि में भी है और अंत में भी, यहाँ तक कि जो स्वयम् जगत् रूप में भी विराजमान है, जो अतीन्द्रिय और अव्यक्त है—उसी भगवान के मनुष्याकार धारण करने से उसे अपना पुत्र मान कर यशोदा ने प्राकृत बालक की तरह रस्सी से ऊखल में बाँध रखा है।

(दशम स्कं० अध्याय ६ श्लोक १३-१४)"

इससे मधुर भक्तिभाव की पुष्टि ही होती है यद्यपि काव्य के वात्सल्य रस के परिपाक में बाधा पड़ती है। परन्तु हमें यह समझ लेना चाहिये कि काव्य का वात्सल्य रस भक्ति की वात्सल्य रति से भिन्न हो सकता है, जैसा है भी। वहाँ बालक की अलौकिकता और ईश्वरीय प्रतिभा ही भाव के विकास में सहायक है। ऐसा न समझ कर ही सूर पर वात्सल्य रस में अद्भुत रस का मिश्रण करने का दोष दिया जाता है जो अनुचित है। सूर बार-बार शिशु और बालकृष्ण को ही सूर के प्रभु इत्यादि कहकर वात्सल्यरति भावना को ही पष्ट कर रहे हैं। वात्सल्य

और वात्सल्यरति में अंतर है, भक्त उस रति का अनुभव चाहता है, रस का नहीं।

करूण रस विप्रलंभ का ही भाग बन गया है। नंद-यशोदा और राधा के विरह-दृश्य के चित्रण में इस रस का चित्रण हुआ है। कृष्ण के लौट कर न आने की निराशा ने करुण रस की सृष्टि की है। वास्तव में परिस्थिति निराशा-जनक है ही, यद्यपि बाद को राधाकृष्ण और यशोदा-कृष्ण का मिलन भी वर्णन है।

## ३—अलंकार

सूर की दृष्टि काव्योत्कृष्टता पर नहीं थी, भक्ति पर थी, अतः उन्होंने अलंकार के लिये अलंकार कूटपदों को छोड़ कर और नहीं लिखा। परन्तु उनके काव्य में अलंकारों का स्वाभाविक रूप से नियोजन हुआ है।

सूर ने विशेषतः तीन अलंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है—रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा। शेष अलंकार भी जहाँ-तहाँ मिल जाते हैं, परन्तु इन्हीं की प्रधानता है। अलंकारयोजना की विविधता और प्रचुरता के कारण ही सूरदास का काव्य पग-पग पर अभिनव और आकर्षक बन सका है। कूटपदों में श्लेष और यमक का प्राचुर्य है, परन्तु यहाँ कवि का ध्येय रसोद्रेक नहीं, चमत्कार है। परन्तु सूर का काव्य सादृश्यमूलक अलंकारों (उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि) से ही महान् हो सका है। सूर के उपमान तो परिचित और परंपरागत हैं परन्तु उन्होंने उनका अत्यन्त नवीन रूप से प्रयोग किया है—अनूठी उद्भावना के कारण उपमान भी अनूठे से लगते हैं—

फटिक भूमि पर कर-पग-छाया यह शोभा अति राजति
करि-करि प्रति-पग मानो वसुधा कमल-बैठकी साजति,

(स्फटिक के आँगन में बालक कृष्ण घुटनों के बल चल रहे हैं और उनके हाथ-पैर का प्रतिबिंब पड़ता चलता है) अलंकारों का अधिक प्रयोग राधाकृष्ण के रूप-वर्णन में ही है। उपमा-उत्प्रेक्षाएँ अनेक क्षेत्रों से ली गई हैं :

(१) परंपरा से (देखिये रूपवर्णन के पद)

(२) सामान्य प्राकृतिक व्यापारों से जैसे—

नील स्वेत पट पीत लाल मनि लटकन माल सराई
सनि, गुरु, असुर, देवसुरु मिलि मनो भौम सहित समुदाई

(३) पौराणिक प्रसंगों से, जैसे

हरि कर राजत माखन रोटी
मनौ वराह भूधर सह पृथिवी धरी दसनन की कोटी

अथवा

मथत दधि मथनी टेंटि रह्यो
आरि करत मटकी गहि मोहन वासुकि संभु डर्‌यो
मंदर डरत, सिंधु पुनि काँपत, फिरि जनि मथन करै
प्रलय होय जनि गहे मथानी प्रभु मर्याद टरै

परंपरागत उपमाओं को लेकर सूर किस अभिनव ढंग से काम करते हैं, यह बात इन पदों से प्रगट हो जायगी—

(१) ऊधो ! अब यह समुझि भई
नंदनंदन के अंग-अंग प्रति उपमा न्याय दई
कुंतल कुटिल भँवर भरि भाँवरि मालति मुरै लई
तजत न गहरु कियो कपटी जब जानी सिरस गई
आनन इंदु वरन सम्मुख तजि करखें तें न भई
निरमोही नहिं नेह, कुमुदिनी अंतहि हेम हई
तन घनश्याम सेइ निसिबासर, रटि रसना छिजई
सूर विवेकहीन चातक मुख बूँदौ तौ न सई

(२) उपमा एक न नैन गही

कविजन कहा कहत चलि आए, सुधि करि करि काहु न कही
कहे चकोर, मुखविधु बिनु जीवन, भँवर न, तहँ उड़ि जात
हरि मुख कमल बिछुड़े तें ठाले क्यों ठहरात
खंजन मनरंजन जन जौ पै, कबहुँ नाहिं सतरात
पंख पसारि न उड़त, मंद ह्वै, समर समीप बिकात
आये बधन ब्याध ह्वै ऊधौ, जौ मृग क्यों न पलाय
देखत भागि बसै घनबन में जहँ कोउ संत न धाय
ब्रजलोचन बिनु लोचन कैसे ? प्रति छिन अति दुख बाढ़त
सूरदास मीनता कछू इक जल भरि संग न छाँड़त

(३) तब तें इन सबहिन सुख पायो

जब तें हरि संदेस तिहारो सुनत ताँवरो आयो
फूले ब्याल दुरे तें प्रगट, पवन पेट भरि खायो
ऊँचे बैठि बिहंगसभा बिच कोकिल मङ्गल गायो
निकसि कंदरा तें केहरिहू भर्‌यो मूँछ हिलायो
बनगृह तें गजराज निकसि कै अँग-अँग गर्व जनायो

(४) अद्‌भुत एक अनूपम बाग (रूपकातिशयोक्ति)

रूपक भी सूर को प्रिय हैं। तुलसी और सूर दोनों रूपकों के बादशाह हैं। सूर के रूपक विनयपदों, वसन्त-वर्णन, चन्द्रोपालंभ आदि में ही अधिक मिलते हैं, परन्तु अन्य स्थलों पर भी रूपक की सुन्दर साङ्ग-योजना हुई है—

साँचो सो लिखवार कहावै
काया ग्राम मसाहत करिकै जमा बाँधि ठहरावै

यदि हम सूर की अलंकार-योजना का अध्ययन करें तो उनके वाग्वैदग्ध्य और अद्‌भुत पांडित्य पर चकित रह जाना पड़ेगा। कहीं-कहीं यह पांडित्य अस्वाभाविकता की हद तक बढ़ गया है जैसे इस पद में—

कर धनु लै किन चंदहि मारि
तू हरुवाय जाय मंदिर चढ़ि ससि सम्मुख दर्पण विस्तारि
याही भाँति बुलाय, मुकुट महि अति बल खंडखंड करि डारि

कल्पना को इतना खींचना ठीक नहीं। इन्हीं अलंकारों में अन्योक्तियाँ भी आती हैं जो उन्होंने हंस, चकई, भृंगी आदि को लेकर कही हैं। परन्तु सूर ने निरलंकारिक भाषा में मानव-स्वभाव ( और शिशुस्वभाव ) का अत्यंत सुन्दर वर्णन किया है जिससे उनकी प्रतिभा की दूसरी दिशा भी हमारे सामने आती है। शास्त्रग्रही इसे "स्वभावोक्ति" अलंकार के भीतर रखकर छुट्टी पा सकते हैं, परन्तु वास्तव में सूर अलंकार के वाहर भी महाकवि की भूमि पर प्रतिष्ठा पा रहे हैं

## ४—ध्वनि-काव्य या व्यंग-काव्य

नेत्रों और मुरली के प्रति कहे पद, भ्रमरगीत आदि में सूरदास का काव्य प्रकृति धरातल को छोड़ कर एकदम ऊपर आध्यात्मिक धरातल पर उठ गया है। वह श्रेष्ठ ध्वनिकाव्य है जहाँ व्यंजना की ही प्रधानता है। वैसे रूपक वाले प्रसङ्ग (दान-लीला आदि) भी ध्वन्यात्मक हैं, परन्तु यहाँ हम उनकी वात ही छोड़ देते हैं।

### नेत्रों के प्रति पद

सूर के कृष्ण-राधा शृङ्गार के आलंबन हैं, इस रूप में उनके नेत्रों का वर्णन हुआ ही है और विस्तार-पूर्वक हुआ है। सखियाँ (गोपियाँ) दोनों के नेत्रों पर रीझी हैं, यहाँ तक कि नेत्रों की सुरतांल छवि की प्रशंसा करते भी नहीं अघानीं। नेत्र से अधिक प्रेम प्रकट करने वाली वस्तु और क्या है ? इसीसे उच्च शृङ्गार काव्य में नेत्रों को महत्त्व अवश्य मिलेगा। परन्तु सूर नेत्रों को केवल आलंवन रूप या आश्रय रूप में वर्णन करके ही

नहीं रह जाते। वे उनका प्रयोग प्रेम के विस्तार एवं प्रेमी की विवशता दिखाने में भी करते हैं। इस प्रकार के पद सैकड़ों हैं जो ध्वनिकाव्य के अंतर्गत ही आयेंगे।

गोपियाँ आँखों को स्वार्थी बता कर उनकी निंदा करती हैं—

ऐसे अपस्वारथी नैन
सेवा इनकी वृथा करी

उनको प्रेम प्रगट कर निंदित करने वाला, सताने वाला कहती हैं—

इन नैननि मोहिं बहुत सतायो
नैननि तें यह नई बड़ाई

उनके द्वारा अपनी ही प्रेमदशा को समझती हैं—

इन बातनि सों कहुँ होति बड़ाई !

उनको धन्य कहती हैं, उनकी अनन्यता की प्रशंसा करती हैं—

धन्य धन्य अँखियाँ बड़भागिनि
अखियाँ हरि के हाथ बिकानी

उनसे ईर्ष्या करती हैं—

नैननि सौं झगरौ करिहौं री

उनकी विवशता का वर्णन करती है—

नैन भए बोहित के काग

इस प्रकार नेत्रों को लेकर सूर ने शतशः उद्भावनाएँ की हैं जिन्हें "मानसिक उधेड़बुन" कह कर सूर की भर्त्सना की जाती है। परन्तु वास्तव में इन्हें संयोग शृङ्गारान्तर्गत श्रेष्ठ ध्वनिकाव्य ही कहना होगा। इसे सूर का वाग्चातुर्य और कविप्रतिभा ही नहीं प्रगट होती, उनकी आध्यात्मिक भावना को गहराई भी जानी जाती है। नयन के प्रति कहे पद कई प्रकार की सामग्री हमारे सामने रखते हैं। उस सामग्री को हम इस प्रकार विश्लेष द्वारा उपस्थित कर सकते हैं—

(१) कृष्ण के नेत्र—यह गोपियों और राधा को आलंबन रूप हैं। बाललीला में नेत्रों का विशेप वर्णन नहीं है। गोपियों के प्रवेश के साथ नेत्रवर्णन आरम्भ होता है जब नेत्रों को पहली बार "सुलछलोचन" कहा जाता है। फिर माखनचोरी के बाद ऊखल-बंधन-प्रसंग में नेत्रों का विशद वर्णन है—

(१) नील नीरज दृग लसैं मनो ओसकन कृत लोल
(२) ललित श्रीगोपाल लोचन लोल आँसू ढरनि
मनहुँ वारिज विलखि विभ्रम परे परवश परनि
(३) जलज मंजुल लोल लोचन शरद चितवन दीन
मनहुँ खेलत हैं परस्पर मकरध्वज द्वै मीन
(४) त्रास ते अति चपल गोलक सजल शोभित छोर
मीन मानो वेधि वंशी करत जल झकझोर
(५) देखि जु आँसू गिरत नैन ते शोभित है ढार जात
मुक्ता मनौ युगल खग खजन चोंचिपुटी न समात

यहाँ उद्दीपन भाव इष्ट नहीं है। उपास्य की शोभा का सहज वर्णन मात्र है। इसके बाद उद्दीपन भाव से नयनों का वर्णन आरम्भ होता है जब कृष्ण गोचरण को जाते हैं—

(१) कुटिल अलक मुख चंचल लोचन निरखत अति आनन्दन
कमल मध्य मनो है खंग खजन बँधे आत उड़ि फंदन
(२) नैन कमलदल मीन
(३) खंजन मीन कुरंग भृंग वारिज पर अति रुचि पाई
(४) बने विशाल हरि लोचन लोल
चितै-चितै हरि चारु विलोकनि मानहुँ माँगत है मनमोल

जलक्रीड़ा के प्रसंग में भी इसी तरह अन्य अंगों के साथ नेत्रों का भी वर्णन है, स्वतंत्र पद नहीं है। परन्तु इसी प्रसंग के बाद नेत्रों पर पूरे पद मिलते हैं, जैसे

देखि री हरि के चंचल तारे
कमल मीन को कहाँ ऐसी छवि खंजनहू न जात अनुहारे
वे देखि निरखि नमित मुरली पर कर मुख नयन एक भए वारे
मनु सरोज विधु वैर विरचि करि करत नाद वाहन चुचुकारे
उपमा एक अनूपम उपजत कुञ्चित अलक मनो हमारे
विडरत विझुकि जानि रथ ते मृग जनु सशंकि शशि डगर हारे

यहीं से नेत्रों का दूसरे प्रकार का प्रयोग शुरू होता है। गोपियाँ अपने नेत्रों को सम्बोधन करती हैं—

(१) हरि मुख निरखत नैन भुलाने
ये मधुकर सुधि पंकज लोभी ताही ते न उड़ाने
(२) नैना माई भूले अनत न जात
(३) मनोहर है नैनन की पाँति
(४) देखि री हरि के चंचल नैन
(५) लोचन हरत अंबुज-मान
(६) मन तो हरि के हाथ विकानौ
नैननि सॉटि करी नैनिनि मिलि उन्हीं सों रुचि मानौ
(७) मन बिगर्‌यो ए नैन बिगारे
(८) आपुस्वारथी की गति नाहीं

इन पदों में अनेक भाव हैं :—

(१) लोचनों को कपटी कहकर उनकी उलहना की जाती है।
(२) उनकी परवशता पर गोपियाँ शोक करती हैं।
(३) उनकी विवशता का वर्णन है।
(४) वे कृष्ण की रूपमाधुरी लूटने में मस्त हैं, हमें दुःख दे रहे हैं।
(५) नेत्रों ने कहना नहीं माना। मान ही नहीं सके लाचार थे।

(६) नैन स्वार्थी, नौन हराम, भलाई न मानने वाले, हठी, ढीठ, विश्वास के अयोग्य, चवाव डालने वाले, लोभी, घर के चोर, हरि के रूप को चुराने जाकर पकड़े जाने वाले, अलकजाल में बँध जाने वाले पखेरू, बम्मारी, चुगलखोर, लंपट आदि आदि है।

(७) नेत्रों को लेकर खग, मृग, गयंद, चकोर, कुरंग, शिशु, नट के परा आदि रूपक खड़े किये गये हैं।

(८) रूप से छके नेत्र की मस्ती का वर्णन है (सुभट भए डोलत ऐ नैन, रोम-रोम ह्वै नैन रहे री, नैन भए बोहित के काग, मेरे नैन चकोर भुलाने, हरि छवि अंग नट के ख्याल, नैननि निरखि अजहुँ न फिरे री, तब तै नैन रहे इकटक ही, नैना नैनन माँझ समाने)।

(९) नेत्रों द्वारा कष्ट की व्यंजना (नैना मारेहु पर मारत)।

(१०) नेत्रों से झगड़ना (नैनन सों झगरौ करिहौं री, मोहू ते वे रीढ़ कहावत)।

(११) समझाती हूँ, अब भी कहना नहीं मानते।

(१२) कभी-कभी श्याम के कहने से बुलाने आते हैं।

(१३) नेत्र आकर झगड़ते हैं।

(१४) नेत्र नाचते हैं।

(१५) नेत्रों से गोपियाँ अपने को धन्य समझती हैं।

इस प्रकार नयनों के प्रति की गई उद्भावनाओं से एक नवीन साहित्य ही खड़ा हो जाता है। इस साहित्य का अर्थ है कृष्ण के रूप-माधुर्य की व्यंजना, प्रेमी की उत्कट प्रेमभावना की व्यंजना (यह दूसरी बात ही अधिक है) और प्रेमी के रूप-दर्शन से एक ही साथ कहीं सुख होना, कभी दुःख होना, क्योंकि प्रेमी का मन अतृप्त रहा है। सूरदास ने इस शैली का सूत्र कहाँ से पाया, यह

नहीं कहा जा सकता। उद्दीपन भाव से राधाकृष्ण के नेत्रों के सौन्दर्य की तो परंपरा साहित्य एवं रीतिशास्त्र में थी। परन्तु इस नए साहित्य की परंपरा लोकगीतों या कुछ फुटकर श्लोकों में ही थी। सूर ने इसको मौलिक रूप से खड़ा किया। परवर्ती कृष्ण-भक्ति-काव्य और रीति-काव्य में सूर को लेकर इस प्रकार के संबोधनों एवं लोचनों की भर्त्सना की परंपरा ही निश्चित हो गई। "कीर्तन पदों" में ये और इस प्रकार के पद "हिलग-पद" के शीर्षक से रखे गये हैं। यह वर्णन संयोग-शृङ्गार के अंतर्गत भी वियोग की व्यंजना करके रहस्यात्मकता की सृष्टि करता है। "नेत्रों के प्रति" वियोग में जो कहा गया है, उससे ये हिलग के पद भिन्न श्रेणी के हैं।

कृष्ण के मथुरागमन पर सूरदास फिर नेत्रों को सम्मुख लाते हैं। नेत्रों से निरंतर आँसू झरते हैं (१ सखि, इन नैनन ते घन हारे, २ नैना सावन भादों जीते), नेत्र दर्शन को तरसते हैं; गोपियाँ नेत्रों को उलहने देती हैं कि पहले रसलंपट होकर रस पिया, अब विरह में रोगी बन गये; चातक और विरह की बेलि जैसे रूपकों से नेत्रों की व्याकुलता प्रगट की जाती है; सैकड़ों प्रकार से नेत्रों को संबोधित किया जाता है और उनकी दुर्दशा कह कर कृष्ण से आने की प्रार्थना की जाती है।

इस प्रकार नेत्रों का वर्णन चार प्रकार से हुआ है। राधा और कृष्ण के नेत्र आलंबन के रूप में वर्णित हैं, नेत्रों के प्रति संयोग-समय में अनेक उपालंभों की सृष्टि की गई है जो प्रेम के रहस्यात्मकपक्ष को रूप देते हैं एवं वियोग में नेत्रों के प्रति बहुत कुछ कहा गया है। इनमें उपालंभ पद विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। प्रेम की तीव्रता, गहनता, विवशता, अतृप्ति, रहस्यात्मकता और आलंबन के सौन्दर्य का अद्भुत आकर्षण—ये व्यंग्य हैं। राधाकृष्ण के नेत्रों को जिन पदों में आलंबन बनाया गया है, उनकी शैली

आलंकारिक है—नेत्रों को लेकर उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं की अत्यन्त सुन्दर योजना है। अन्य पदों में कहीं-कहीं रूपक अवश्य हैं, परन्तु अधिकांश पद विवश प्रेमी का आत्मनिवेदन और आत्माभिव्यक्ति हैं, अतः उनमें अलंकारों का प्रयोग नहीं है। सीधी बात है सीधी भाषा में। उनकी मार्मिकता का कारण है (१) प्रेम और विरह की व्यंजना, (२) कृष्ण के सौन्दर्य और गोपियों के प्रेम की रहस्यात्मकता का निदर्शन, (३) असाधारण वाग्विभूति जो कहने को शेष कुछ भी नहीं छोड़ती।

## मन के प्रति पद

मन के प्रति कहे पदों के संबंध में भी वही कहा जा सकता है जो नयनों के प्रति कहे पदों के संबंध में कहा गया है। दृष्टिकोण वही है। लक्ष्य भी वही है। मन के प्रति कहे पद दो श्रेणी के हैं—

१—विनय-पदों के अंतर्गत। इनमें मन को प्रबोधन दिया गया है अथवा उलाहना और भर्त्सना। इनका विशद विवेचन 'विनयपद' शीर्षक अध्याय में हो चुका है।

२—लोचन के प्रति कहे गये पदों के साथ कुछ मन के प्रति कहे पद भी हैं। कुछ की सामग्री मिली-जुली है। ऐसे पद अधिक नहीं हैं यद्यपि बाद को "हिलग" के ऐसे पद पुष्टिमार्गीय कवियों ने इतने अधिक बनाये हैं कि इनका एक स्वतंत्र साहित्य ही खड़ा हो गया है। इन पदों में मन को उलाहना दिया गया है कि उन्होंने लोचनों को भड़काया और उन्हें कृष्ण को सौंप दिया।

## मुरली के प्रति कहे पद

गोपियाँ मुरली के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार के भाव प्रगट करती हैं। उससे भी ईर्ष्या प्रगट करती हैं। सूर उस अनन्य प्रेम को प्रगट करना चाहते हैं जो किसी भी दूसरे को प्रियपात्र के निकट देखना नहीं चाहता। नेत्रों के प्रति कहे पदों की तरह यहाँ भी उद्भावनाओं में मौलिकता है, गोपियाँ कहती हैं—

मुरली मोहे कुँवर कन्हाई
या मुरली तऊ गोपालहिं भावति
या सखी री मुरली लीजै चोरि

इसी भावना से तो भक्त कृष्ण की मुरली बनना चाहता है। मुरली के पदों के भीतर कई प्रकार की व्यंजनायें हैं :

१—अलौकिक प्रभाव दिखा कर कृष्ण और उनकी व्रजलीला की अलौकिकता दिखाना—

२—रूपक की सृष्टि ( योगमाया है मुरली )

३—विप्रलंभ का योजना—गोपियाँ मुरली से ईर्ष्या-द्वेष रखती हैं। साधारणतः इस प्रकार की बात को मानसिक विश्रंभण कहा जायगा, परन्तु इससे यहाँ आध्यात्मिक अर्थ की सिद्धि होती है। यह आध्यात्मिक अथ है आध्यात्मिक विरह।

४—शृङ्गार-काव्य की दृष्टि से मुरली उद्दीपन है।

भागवत के "वेणुगीत" और "युगलगीत" प्रकरणों में मुरली की प्रशंसा की गई है और उसकी अलौकिकता का उद्घाटन किया गया है। श्रीकृष्ण की वह वंशीध्वनि भगवान के प्रति प्रेमभाव को, उनके मिलन की आकांक्षा को जगाने वाली थी, उसे सुनकर गोपियों का हृदय प्रेम से पूर्ण हो गया। वे एकान्त में अपनी सखियों से उनके रूप, गुण और वंशीध्वनि के प्रभाव का वर्णन करने लगीं। व्रज की गोपियों ने वंशीध्वनि का माधुर्य आपस में वर्णन करना चाहा तो अवश्य, परन्तु वंशी का स्मरण होते ही उन्हें श्रीकृष्ण की मधुर चेष्टाओं की, प्रेमपूर्ण चितवन, भौंहों के इशारे और मधुर मुसकान आदि की याद हो आई। उनकी भगवान से मिलने की आकांक्षा और भी बढ़ गई। उनका मन हाथ से निकल गया। वे मन ही मन वहाँ पहुँच गईं, जहाँ श्रीकृष्ण थे। × × × परीक्षित, यह वंशीध्वनि जड़, चेतन—समस्त भूतों का मन चुरा लेती है × × यह बाँसुरी तो बड़ी ढीठ हो गई है।

इसने पूर्वजन्म में न जाने कौन-सी पुण्य-साधना की है, जिससे यह श्यामसुन्दर के अधरामृत का पान करती ही रहती है। श्रीकृष्ण तो गोपियों के अपने हैं। हमने उन्हें ऊखल तक में बाँधा है। वह हमारी सम्पत्ति पर इस प्रकार क्यों अपना अधिकार जमाये बैठी है। देखो तो सही, वह सब का सब अधरामृत पी जाती है, हम लोगों के लिये तनिक भी नहीं छोड़ती × ×" (वेणुगीत) इसके बाद बाँसुरी के प्रभाव का विस्तृत वर्णन है जिसके लिये सूर अवश्य ही भागवत के ऋणी हैं (श्लो० १०-२०) "उस समय की क्या बताऊँ सखि! उस मुनिजन-मोहन संगीत को सुनकर सरोवर में रहने वाले सारस-हंस आदि पक्षियों का भी चित्त उनके हाथ से निकल जाता है, छिन जाता है। वे विवश होकर प्यारे श्यामसुन्दर के पास आ बैठते हैं तथा आँखें मूँद, चुपचाप, चित्त एकाग्र करके उनकी आराधना करने लगते हैं × × जब वे अपने लाल-लाल अधरों पर बाँसुरी रख कर ऋषभ, निषाद आदि स्वरों की अनेक जातियाँ बजाने लगते हैं, उस समय वंशी की परम मोहिनी और नई तान सुनकर ब्रह्मा, शंकर और इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता भी उसे नहीं पहचान सकते। वे इतने मोहित हो जाते हैं कि उनका चित्त तो उनके रोकने पर भी उनके हाथ से निकल कर वंशीध्वनि में तल्लीन हो जाता है, सिर भी झुक जाता है, और वे अपनी सुध-बुध खोकर उसीमें तन्मय हो जाते हैं। × × × उनकी वह वंशीध्वनि × × हमारे हृदय में प्रेम का, मिलन की आकांक्षा का आवेग बढ़ा देती है। हम उस समय इतनी मुग्ध, इतनी मोहित हो जाती हैं कि हिल-डोल तक नहीं सकतीं, मानो हम जड़ वृक्ष हों × × हमें तो इस बात का भी पता नहीं चलता कि हमारा जूड़ा खुल गया है या बँधा है, हमारे शरीर पर का वस्त्र उतर गया है या है।

(युगलगीत)

## भ्रमरगीत

भ्रमरगीत जहाँ एक ओर प्रेमात्मक ध्वनिकाव्य है, वहाँ दूसरी ओर ज्ञान के ऊपर प्रेम (या भक्ति) की विजय भी घोषित करता है। इस प्रकार उसके दो पक्ष हैं। वह वास्तव में व्यंग काव्य है। "मधुकर" के श्याम रंग का अनुमेल कर गोपियाँ कभी कृष्ण पर व्यंग करती हैं, कभी उनके मित्र उद्धव पर। कितने ही पद इस प्रकार द्विर्थक हैं।

सूर ने तीन भ्रमरगीत लिखे हैं। एक भ्रमरगीत बहुत छोटा है। केवल पदों में है। इसमें भ्रमर का प्रवेश है, बहिर्गमन नहीं है। सूर ने इस छोटे से प्रसंग को सारे उद्धव-गोपी-प्रसंग में भर दिया है। भागवत में भ्रमर के प्रति संबोधन का प्रयोग शैली के रूप में हुआ है। सूर ने इस शैली को अपना लिया है, परन्तु वे मधुकर संबोधन और दो-चार रूपकों के बाद उस पर अधिक ध्यान नहीं देते—अपने विषय के प्रतिपादन में लग जाते हैं। दूसरा भ्रमरगीत गोपियों द्वारा साकार भक्ति का समर्थन तथा निर्गुण और योग का विरोध उपस्थित करता है। इसमें पूर्वपक्ष (उद्धव का संदेश) तो वही है जो भागवत में है, परन्तु उत्तरपक्ष एकदम नवीन और मौलिक है। इसमें गोपियों की प्रेममय सरल उक्तियाँ हैं जिनसे सगुण कृष्ण के प्रेम का प्रतिपादन होता है।

यदि सूर के भ्रमरगीत से भागवत के भ्रमरगीत की तुलना की जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि सूर ने कई परिवर्तन किये हैं—

१—ऊधो को गर्व था कि मैं ज्ञानी हूँ। इस गर्व को हरने के लिये ही भगवान कृष्ण ने उन्हें भेजा था क्योंकि "गर्व गोपालहिं भावत नाहीं"। भागवत में उद्धव को साधारण कुशल-क्षेम का संदेश देकर भेजते हैं।

२—गोपियों के लिये उद्धव उनके प्रेमी के दूत हैं, अतः उन्हें शकुन होता है, वे उत्कंठा से उनकी प्रतीक्षा करती हैं—इस तरह सूर ने अपने उद्धव को शृङ्गार रस पर खड़ा किया है।

३—शृङ्गार में पत्र का भी स्थान है। सूर ने इसे अपने काव्य में स्थान दिया है। भागवत में इसका नितांत अभाव है—कृष्ण उद्धव को कोई पत्र नहीं देते।

४—भागवत में मधुकर-प्रसंग में विरह की तीव्रता दिखाने के लिए लाया गया है। सूर में वह तो लक्ष्य है ही परन्तु और भी नवीनताएँ हैं। मधुकर को लेकर कृष्ण पर व्यंग किया गया है जो भागवत में है, परन्तु भागवत में उद्धव व्यंग के विषय नहीं बनाये गये हैं। ऊधो का पासा ही उलट गया है। भागवत में उद्धव ही बोलते हैं, सूर में गोपियों के सामने उद्धव मुँह ही नहीं खोलते, तर्क भी नहीं करते। यहाँ निर्गुण, योग और आत्मज्ञान (आतम ग्यान) का विस्तृत खंडन है परन्तु हृदय की उक्तियों से, व्यंग से, पांडित्यपूर्ण तर्क से नहीं। गोपियों के लक्ष्य तीन हैं—निर्गुण, आत्मज्ञान और योगपंथ। कहती हैं—अबलाओं से योग कैसे सधेगा। यह तो उलटी रीति है; जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ निर्गुण कैसे समायेगा? कृष्ण निर्गुण से सुन्दर हैं, निर्गुण के अंग कहाँ? इस स्थान पर योग नहीं चलेगा, और जगह ढूँढ़ो। उनका तो योग है प्रेमयोग।

भ्रमरगीत की उत्कृष्टता का रहस्य है—

(१) भक्ति की प्रतिष्ठा का अनुभूतिपूर्ण आग्रह।
(२) गोपियों का विरह-चित्रण।
(३) शैली—ध्वनि, व्यंग, प्रसादगुण-पूर्ण उत्कट आत्माभिव्यक्ति।
(४) स्वाभाविक भाषा और रूपक।

उसमें उच्च कोटि के दर्शन और प्रेमिकाओं की आत्माभिव्यक्ति का सुन्दरतम मेल है जिसका जोड़ हिंदी के साहित्य में नहीं, तुलसी के काव्य में भी नहीं। तुलसी ने भी निर्गुण ब्रह्म के स्थान पर सगुण राम और ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की महत्ता स्थिर की है, परन्तु वह दर्शन को हृदयग्राही और काव्योपयोगी नहीं बना सके हैं। लक्ष्य एक है, शैली भिन्न। जो हो, भ्रमरगीत के प्रसंग को इस तरह भागवत के विपरीत रूप में रखना सूर की मौलिकता है। नंददास ने भी भँवरगीत लिखा है—बात वही है, ढंग दूसरा है। परन्तु वास्तव में हिंदी भ्रमरगीतों की परम्परा सूर से ही चली जान पड़ती है।

वास्तव में भ्रमरगीत और मानस में सूर और तुलसी भिन्न भूमियों पर खड़े होकर एक ही बात कह रहे हैं—निर्गुण ब्रह्म का खंडन और ज्ञान के ऊपर भक्ति की प्रतिष्ठा। इसीसे सूर ने भागवत के भ्रमरगीत में यथोचित परिवर्तन करके ही उसे अपनाया है। कृष्ण द्विविध कारणों से उद्धव को गोपियों के पास भेजते हैं—

जदुपति जानि उद्धव रीति

जेहि प्रगट निज सखा कहियत करत भाव अनीति
विरह दुख जँह नाहिं जामत, नाहिं उपजत प्रेम
रेख, रूप न बरन जाके यह धर्यो वह नेम
त्रिगुन तन करि लखत हमको, ब्रह्म मानत और
बिना गुण क्यों पुहुमि उधारै, यह करत मन डौर
विरह रस के मंत्र कहिये क्यों चलै संसार
कछु कहत यह एक प्रगटत अति भर्यो हंकार
प्रेम भजन न नेकु याके, जाय क्यों समुझाय ?
सूर प्रभु मन यहै आनी, ब्रजहिं देहुँ पठाय !

इसके बाद सूर प्रेम-काव्य और भक्ति-काव्य के दो भिन्न क्षेत्रों को मिलाते हुए आगे बढ़ते हैं। प्रेम-काव्य के अंतर्गत गोपियों की अंतर्दशा आती है जिसका आश्चर्यजनक विस्तार सूरसागर में मिलेगा जैसे ऊधो में कृष्ण का भ्रम हो जाना, कृष्ण के सम्बन्ध से ऊधो का प्रिय लगना और पाती। पाती के सम्बन्ध में नीचे की उक्ति किसी भी प्रेम-काव्य पर भारी है—

निरखत अंक श्याम सुन्दर के बारबार लावति छाती
लोचन-जल कागद मसि मिलि कै ह्वै गइ श्याम श्याम की पाती

भ्रमर के व्याज से कृष्ण और ऊधो को उपालंभ—

यहि अंतर मधुकर इक आयो
निज स्वभाव अनुसार निकट होइ सुन्दर शब्द सुनायो

और संदेशों की बात—

संदेशनि मधुबन कूप भरे
जे कोउ पथिक गए हैं ह्याँ तें फिरि नहिं गवन करे
कै वै श्याम सिखाय समोधे, कै वै बीच मरे!

परन्तु इस प्रेम-काव्य से कुछ कम विशद नहीं है भक्ति-काव्य या भ्रमरगीत का आध्यात्मिक पक्ष जिसमें निर्गुण और ज्ञान का अत्यन्त तीव्र और मौलिक विरोध है—

(१) उद्धव ! जोग बिसरि जनि जाइ
बाँधहु गाँठ कहूँ जनि छूटै फिरि पाछे पछिताहु
(२) ऊधो ब्रज में पैठ करी
यह निर्गुन निर्मूल गाठरी, अब किन करहु खरी
(३) रहु रे मधुकर मधु मतवारे
कहा करौं निर्गुन लैकै हौं, जीवहु कान्ह हमारे
(४) निर्गुन कौन देस को बासी !

इस निर्गुण-सगुण के विरोध को सूर अत्यन्त स्पष्टता से रखते हैं—

बार-बार ये बचन निवारो
भक्ति-विरोधी ज्ञान तिहारो

सुनिहै कथा कौन निर्गुन की रचि-पचि बात बनावत
सगुन सुमेरु प्रगट देखियत, तुम तृन की ओट दुरावत
रेख न रूप, बरन जाके नहिं ताको हमैं बतावत
अपनी कहौ, दास वैसे को तुम कबहुँ हौं पावत ?
मुरली अधर धरत है सो पुनि गोधन बन-बन चारत
नैन बिसाल, भौंह बङ्कट करि, देख्यो कबहुँ निहारत
तन त्रिभंग करि, नटवर वपु धरि, पीताम्बर तेहि सोहत
सूरश्याम ज्यों देत हमैं सुख त्यों तुमको सोउ मोहत

इस सगुण का मार्ग भी सीधा है। इसीसे गोपियाँ चिढ़ कर कहती हैं—

काहे को रोकत मारग सूधो
सुनहु मधुप ! निर्गुन कंटक तें राजपंथ क्यों रूधो ?

यह मार्ग तो प्रेम ( भक्ति ) का मार्ग है, ज्ञान का नहीं। भ्रमरगीत प्रसंग के अंत में उद्धव की पराजय, भक्ति की ज्ञान पर विजय ही घोषित करती है—

सूर योग की कथा बहाई
शुद्ध भक्ति गोपीजन पाई

---

# परिशिष्ट

## जीवनी, व्यक्तित्व और रचनाएँ

सूरदास के जीवनी के संबंध में हम अभी निर्णयात्मक खोज नहीं कर पाये हैं। अब तक की खोजों के आधार पर हम उनके जीवन की रूपरेखा-भर बना सकते हैं। इन खोजों का आधार आत्मनिवेदन-संबंधी पद, कूट-पद, किंवदंतियाँ, वल्लभसंप्रदाय की मान्यताएँ सब इतिहासकारों और अन्य समकालीन लेखकों की रचनाओं के उल्लेख हैं। परन्तु वास्तव में सूर की सबसे सुन्दर जीवनी उनकी रचनाएँ ही हैं। उनके काव्य में सन्निहित अंतर्वृत्तियाँ उनके व्यक्तित्व का परिचय देने में अमूल्य हैं।

संक्षेप में हम सूर के जीवन-वृत्तांत को इस प्रकार रख सकते हैं। उनका जन्म सन् १५४० में व्रजप्रदेश में हुआ। वे जन्मांध नहीं थे। कदाचित् तरुणावस्था में वह विरक्त हो गये और गऊघाट पर स्थान बना कर रहने लगे। उस समय वे एक साधारण वैष्णव भक्त थे। किन्तु धीरे-धीरे वे प्रसिद्ध हो गये। सं० १५७६ वि० में महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पूर्णमल्ल के मन्दिर में श्रीनाथजी की पुनः स्थापना की। कदाचित् उसी समय के लगभग वे व्रजप्रदेश का परिभ्रमण करते हुए गऊघाट पर आ निकले। सूरदासजी ने आचार्य जी से भेंट की और उनकी आज्ञानुसार अपने विनय के पद सुनाये। आचार्य ने उन्हें पुष्टिमत में दीक्षित किया। उन्हें भागवत की कथा सुनाकर भगवत्लीला गाने के लिये कहा। अपनी मृत्यु तक सूरदास जी ने 'सहस्रावधि' पद गा लिये थे जिनमें कृष्णलीला ही प्रधान थी। कृष्ण-चरित्र में उन्होंने अनेक प्रकार के परिवर्द्धन किये और रूपकों के रूप में अनेक कथाएँ

गढ़ कर कृष्ण के चरित्र को आध्यात्मिक साधन का अंग बनाया। वृद्धावस्था में विट्ठलनाथ या किसी और के कहने से उन्होंने अपनी रचनाओं को भागवत के साँचे में ढाल दिया। कृष्ण-चरित्र को छोड़ कर 'सूरसागर' की अन्य अवतारों की कथा भागवत के उन अंशों का स्वतंत्र उलथा है। उन्होंने ६७ वर्ष की आयु में (सं० १६०१ वि०) अपनी रचनाओं का अधिकांश भाग पूरा कर लिया था। वृद्धावस्था के साथ वे कदाचित् नेत्रहीन हो गये। कदाचित् पौढ़ अवस्था में ही उनके नेत्र जाते रहे हों, उनकी प्रसिद्धि के समय में उन्हे नेत्रहीन पाकर ही उस प्रकार की कथायें चल पड़ी हों जो वास्तव में "विल्वमंगल सूरदास" से संबंधित हैं।

वृद्ध होते-होते उनकी कीर्ति चतुर्दिक फैली हुई थी और कदाचित् सम्राट् अकबर ने उनसे भेंट की। भेंट के काल और स्थान के संबंध में हम निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कह सकते। पुष्टिमार्ग के अन्य भक्त उनको बड़ी श्रद्धा से देखते थे। वल्लभाचार्य के निधन के बाद उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ गद्दी पर बैठे। उन्होंने सूरदास को "पुष्टिमार्ग का जहाज़" कहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि वल्लभाचार्य के निधन के बाद विट्ठलनाथ ने पुष्टिमार्ग के स्वरूप को स्थिर करने की जो महत्त चेष्टा की उसके पीछे वयोवृद्ध कवि सूर की प्रेरणा, शक्ति और उनके काव्य की लोकप्रियता का बल था। सूरदास की मृत्यु पारसौली ग्राम में गोस्वामी विट्ठलनाथ के सामने हुई। विट्ठलनाथ राजभोग का नित्यकर्म समाप्त करके सूरदास की मृत्यु-शय्या पर पहुँचे थे, ऐसा वार्ता से प्रगट है। राजभोग का समय दोपहर था। अतः सूर का निधन दोपहर को हुआ।

सूर की इतनी सी जीवनी का मुख्य आधार "८४ वैष्णवन की वार्ता" है। परन्तु अब भी हम सूर के सम्बन्ध में बडे गहरे अंध-

कार में पड़े हैं। पहली बात, उनका नाम क्या था ? सूरजदास सूरदास, सूरश्याम, सूरजचंद इत्यादि एक दर्जन नाम हमारे सामने हैं। दूसरी बात, उनकी जाति क्या थी ? उनके माता-पिता कौन थे ? उनके जातिगत और व्यक्तिगत संस्कार क्या थे ? हम इन प्रश्नों का कोई भी संतोषजनक उत्तर नहीं दे सकते। हमने यह अनुमान लगाया है कि उनका मौलिक नाम सूरजदास था परन्तु वे सूर, सूरदास आदि नाम छंद अथवा संदर्भ की आवश्यकता के कारण लाते थे। परन्तु जाति के सम्बन्ध में हम किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके हैं। उन्हें सारस्वत ब्राह्मण और भाट बताया जाता है।

जहाँ तक व्यक्तित्व का सम्बन्ध है, उसके विषय में हमें सूरदास के साहित्य से ही संतोष करना पड़ता है। उनका व्यक्तित्व अवश्य ही उनके काव्य की तरह मधुर रहा होगा। वे विनयशील हरि-प्रेम-विह्वल, सहृदय और अत्यंत भावुक रहे होंगे। उनका सूरसागर उनकी भावुकता का विशाल, अगाध अंबुधि है जिसके तल विरले ही पा सकते हैं।

सूरदास के ग्रंथों के सम्बन्ध में भी परिस्थिति इतनी ही अनिश्चित है जितनी उनकी जीवनी के सम्बन्ध में। नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में सूरदास के १६ ग्रंथों का उल्लेख है, १ गोवर्धनलीला बड़ी, २ दशमस्कन्ध टीका, ३ नागलीला, ४ पद-संग्रह, ५ प्राणप्यारी ( श्यामसगाई ), ६ व्याहलो, ७ भागवत, ८ सूरपचीसी, ९ सूरदासजी का पद १० सूरसागर, ११ सूरसागर सार, १२ एकादशी माहात्म्य, १३ रामजनम, १४ सूरसारावली, १५ साहित्यलहरी और १६ नलदम्यन्ति। इन सब ग्रन्थों की परीक्षा नहीं हुई है, परन्तु यह तो स्पष्ट है कि सूरसारावली और सूरसागर सब एक ही ग्रन्थ है। नलदम्यन्ती को डा० मोतीचन्द्र ने

सं० १८६५ में किसी अन्य सूरदास का लिखा सूफी प्रेमाख्यानक काव्य सिद्ध किया है ! गोवर्धनलीला बड़ी, नागलीला, प्राणप्यारी (श्यामसगाई), रामजनम—यह सब विषय सूरसागर के ही भाग होंगे, यह भी निश्चित है। यही बात पद्संग्रह, सूरदास जी का पद, सूरपचीसी के सम्बंध में कही जा सकती है। भागवत और सूरसागर में कोई भेद नहीं होगा क्योंकि सूरसागर को ही भागवत के ढाँचे पर खड़ा किया गया है। एकादशी माहात्म्य और ब्याहलो नाम से तो संदिग्ध ग्रन्थ लगते हैं। इसी प्रकार की स्थिति दशम स्कंध टीका के सम्बन्ध में है।

रह जाते हैं सूर के मुख्य ग्रन्थ—सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य लहरी। इनमें साहित्य लहरी सूरसागर के ही कूट पदों का संग्रह है जिसे १६०७ वि० में उपस्थित किया गया। सूरसारावली सूरसागर की सूची या सार बताई जाती है परन्तु यदि दोनों की वैज्ञानिक तुलना की जाय तो यह पता लगेगा कि यह धारणा भ्रम है। सूरसारावली स्वयं एक पूर्ण और स्वतंत्र रचना है और उसका सूरसागर से अधिक सम्बन्ध नहीं जान पड़ता। यद्यपि सूरसागर से उसमें सहारा लिया है, फिर भी उसका मूलाधार भागवत है। इस ग्रन्थ की रचना सूरदास ने नहीं की होगी, ऐसा दिखलाई पड़ता है। परन्तु अभी इस विषय में अधिक खोज की आवश्यकता है। निश्चित रूप से हम यही कह सकते हैं कि सूरसागर ही सूरदास का ग्रन्थ है। परन्तु सूरसागर की सामग्री भी तो निश्चित नहीं है। सूरदास के लिखे सवा लाख पदों में से हमें ८००० से अधिक पद प्राप्त नहीं हैं—परन्तु सवा लाख पदों की बात शायद अतिशयोक्ति है—कितने ही प्राप्त पद प्रक्षिप्त हैं, यह भी कहा जा सकता है। सूरसागर का प्रामाणिक संस्करण अभी कोई भी नहीं निकला है। हाँ, नागरी प्रचारिणी सभा ने ऐसे प्रामाणिक संस्करण की आवश्यकता

समझ कर काम शुरू किया था और पहले नौ स्कंध और दसवें स्कन्ध के कुछ अंश प्रकाशित भी हो चुके हैं। जब तक यह संस्करण पूरा नहीं हो जाता या कोई दूसरा वैज्ञानिक ढंग से संपादित नवीन संस्करण सामने नहीं आता, तब तक सूरदास और उनके काव्य का विशद अध्ययन नहीं हो सकता।